लक्ष्मीनारायण लाल

एकांकी रचनावली

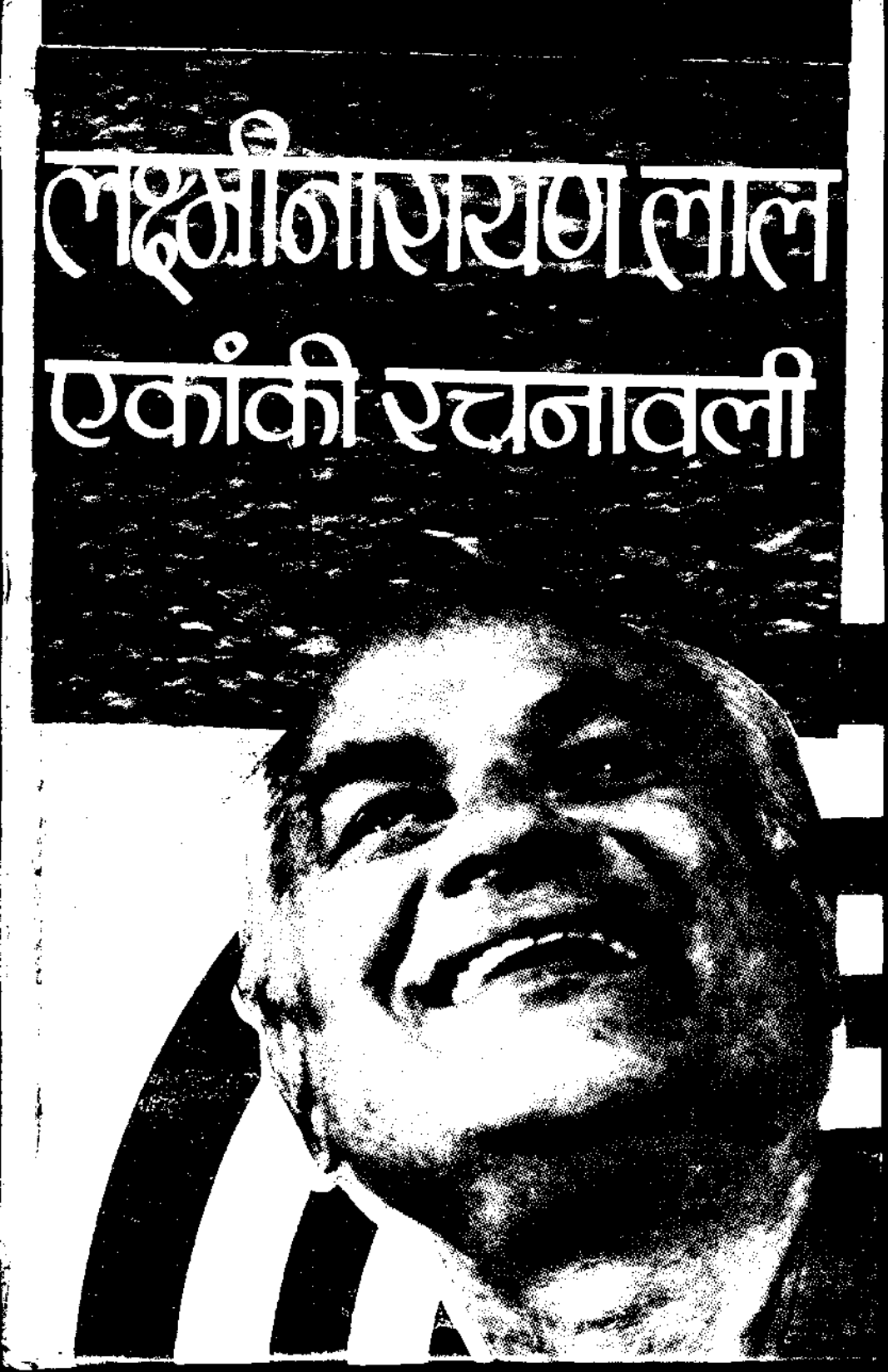

प्रस्तुति : आनन्द वर्धन

किताबघर

दरियागंज, नई दिल्ली

लक्ष्मीनाराय

एकांकी स

लक्ष्मीनारायण लाल
एकांकी रचनावली

खंड एक

इस रचनावली में संगृहीत एकांकियों के अभिनय-प्रदर्शन, प्रकाशन, प्रसारण, फिल्मीकरण आदि किसी भी प्रकार के व्यावसायिक, अव्यावसायिक उपयोग के लिए निम्नलिखित से पूर्व अनुमति अनिवार्य है :

श्रीमती आरती लाल, आनन्द वर्धन, 54-ए, पश्चिम विहार
ए-2 बी, डी० डी० ए० (एम० आई० जी० फ्लैट) नई दिल्ली-110063

ISBN-81-7016-063-4

© श्रीमती आरती लाल, आनन्द वर्धन

प्रकाशक
किताबघर
24/4866, शीलतारा हाउस, अंसारी रोड
दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण
1991

मूल्य
पाँच सौ रुपये (दो खण्ड)

आवरण
सुकुमार चटर्जी

मुद्रक
चोपड़ा प्रिंटर्स, मोहन पार्क
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

LAKSHMINARAIN LAL EKANKI RACHANAVALI
(A collection of One-act Plays in Hindi)
Price : Rs. 500.00 (Two Volumes)

एक बच्चा
एक चिड़िया
एक तितली
एक फूल—इसे अपने भीतर छिपाए रखो। यही कर रहे हैं
रचना। उन्हें दिखा दिया तो श्राप लग जायेगा।
इसे मार दिया तो बस सब खतम।
जो लाल है उसे देख कर क्या कोई अनुमान भी करेगा कि
इसके भीतर एक शिशु
तितली, एक चिड़िया, एक
पुष्प है
वही है मेरी रचना का रहस्य—प्रकट रहस्य पर इसे मैं किसी
कीमत पर आजन्म प्रकट नहीं होने दूँगा।

—लक्ष्मीनारायण लाल
(फरवरी 28, 1979)

क्रम

8 / निवेदन
17 / अपनी रंगभूमि की भूमिका
27 / उर्वशी
40 / महाकाल का मन्दिर
54 / नूरजहाँ की एक रात
68 / जहाँनारा का स्वप्न
80 / ताजमहल के आँसू
93 / पर्वत के पीछे
130 / सुबह होगी
147 / नई इमारतें
165 / मड़वे का भोर
190 / धुएँ के नीचे
204 / कैद से पहले
221 / मम्मी ठकुराइन
243 / दो मन चाँदनी
256 / सुबह से पहले
266 / औलादी का बेटा
274 / बाहर का आदमी
289 / शाकाहारी
305 / शरणागत

क्रम

गली की शान्ति / 321
चौथा आदमी / 334
कालपुरुष और अजन्ता की नर्तकी / 345
मैं आइना हूँ / 360
जादू बंगाल का / 374
गुड़िया / 388
वरुण वृक्ष का देवता / 400
बादल आ गए / 411
मीनार की बाँहें / 429
हम जागते रहे / 450
रावण / 466
हँसी की बात / 477
ठण्ठी छाया / 490
मोहिनी-कथा / 503
गदर / 517
वसन्त ऋतु का नाटक / 529
गाँव का ईश्वर / 542
नमक और पानी / 557
एक औसत आदमी / 576

निवेदन

20 नवम्बर, 1987 को प्रात: 10 बजे आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच के महान हस्ताक्षर डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का अचानक महाप्रयाण हो गया। मृत्यु शाश्वत तत्त्व है। पर यह इतनी शीघ्र अचानक बिना किसी पूर्वाभास के इतना बड़ा कुठाराघात हिन्दी साहित्य जगत पर करेगी, किसी को कल्पना तक नहीं थी। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का पूरा जीवन 'रंगभूमि' को समर्पित था। रंगमंच के प्रति उनकी प्रतिबद्धता दिखावा नहीं थी। उन्होंने जीवन भर 'रंगभूमि' के विभिन्न आयामों का बड़ी गम्भीरता से चिन्तन, अध्ययन, अन्वेषण किया एवं सतत जीवन हिन्दी रंगमंच को समृद्ध किए जाने के प्रति पूर्ण निष्ठा का परिचय दिया। वैसे तो डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने जीवन काल में अनेक विधाओं द्वारा महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हिन्दी साहित्य जगत को प्रदान कीं परन्तु इनका सृजनकारी व्यक्तित्व और प्रतिभा नाटकों के क्षेत्र में सबसे अधिक मुखरित होकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। इनकी सशक्त कलम से अनेक जीवन्त नाट्य कृतियों ने हिन्दी नाटक एवं रंगमंच को महत्त्वपूर्ण दिशा देकर हिन्दी नाट्य भण्डार को गौरवान्वित किया।

डॉ० लाल ने अपने लेखन से रंगमंच को जो दिया वह वैविध्यपूर्ण, बहुमुखी और नवीन रंगशिल्प से भरपूर था। उनके नाटकों के तथ्य समसामयिक समस्याओं, मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों से लेकर राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक मिथक तक रहे। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का रंगमंच भारतवर्ष से जुड़ी हुई 'भूमि' का 'रंग' था। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल जैसे समर्पित नाट्यकार के एकाएक दिवंगत हो जाने से हिन्दी नाट्य जगत अनेक सम्भावनाओं से वंचित हो गया है। डॉ० लाल का रंगमंच उनका शौक मात्र न होकर भारतीय मानस और संस्कारों के प्रति हम सबको 'देखने' एवं 'सोचने' की महत्त्वपूर्ण दिशा की पहचान कराने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ऐसे समय में रंग-प्रक्रिया से जुड़े जब आधुनिक हिन्दी रगमंच के विकास का प्रारम्भ हुआ था। उस समय ऐसे नाटकों की जरूरत थी जो नये कृत्य, शिल्प और आधुनिक चेतना से सम्बद्ध हों। डॉ० लाल ने इस ऐतिहासिक जिम्मेदारी को बखूबी निभाया और अन्तिम समय तक हिन्दी रंगमंच को नये-नये नाटकों से समृद्ध करते रहे। डॉ० लाल का रंगमंच से सम्बन्ध सिर्फ लेखक का ही नहीं रहा बल्कि वे रंगकर्म के विभिन्न क्षेत्रों में भी सक्रिय रहे। अनवरत लिखने की वजह से ही उन्होंने

विभिन्न शिल्प और प्रयोगधर्मिता के नाटक लिखकर हिन्दी नाट्य जगत को गरिमा प्रदान की। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल की प्रमुख शक्ति उनकी निष्ठा और संकल्पपूर्ण रचनाशीलता में है। नये नाटकों में बढ़ती हुई चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति और स्वतः ही आधुनिकता के बीच इनके नाटक भारतीय सामाजिक कला के स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रहे।

प्रस्तुत संकलन में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा लिखे गये लगभग समस्त उपलब्ध एकांकियों-लघु नाटकों को एक साथ संकलित करके कालबद्ध रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस संकलन में उनके द्वारा लिखे गए रेडियो और दूरदर्शन नाटकों को भी पहली बार पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। इस संकलन में काफी संख्या में ऐसे नाटक हैं जो पूर्व प्रकाशित एकांकी संकलनों में सम्मिलित नहीं थे। अतः प्रथम बार ही पाठकों के समक्ष पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत हो रहे हैं। इन लघु नाटकों की रचना उनके द्वारा विगत 30 वर्षों के अन्तराल में की गई जो इनकी रंगयात्रा का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इस संकलन का उद्देश्य डॉ० लाल पर शोध ग्रन्थ तैयार करके प्रस्तुत करने का नहीं वरन् उनके रचनात्मक आयामों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करके उनके उपलब्ध-अनुपलब्ध एकांकियों को सहजता से हिन्दी नाट्य जगत को उपलब्ध कराना है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल की मान्यता थी कि एकांकी नाट्य लेखन हिन्दी रंगमंच और उसके नाटक की वह बुनियाद है जहां वास्तव में रंगमंच की माँग के लिए लघु नाटकों की सृष्टि हुई। रंगमंच प्रदर्शन का उपर्युक्त साधन है और एकांकी उसका सर्वोत्कृष्ट माध्यम। इसीलिए डॉ० लाल ने अपने एकांकियों को रंगमंच का अंग बनाया और रंगमंच को जीवन से जोड़ दिया। जीवन का यथार्थपूर्ण चित्रण रंगमंच पर जीवन्त हो गया और ऐसा लगा मानो दर्शक पात्र के रूप में स्वयं मंच पर लीला कर रहे हों।

डॉ० लाल के एकांकियों एवं लघु नाटकों में कला और तकनीक के स्तर पर प्रयोगशीलता, यथार्थ जीवन-बोध और उत्तरोत्तर कला को गतिशीलता देने का आग्रह स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। डॉ० लाल के हिन्दी एकांकी रंगयात्रा में जितने प्रमुख प्रयोग हुए हैं उनका आधार मूलतः युग का यथार्थ-बोध ही है। नाट्य लेखन के प्रारम्भिक काल में ही डॉ०लक्ष्मीनारायण लाल ने परिवेशगत नीतियों, समस्याओं और जटिलताओं को ठीक-ठीक समझने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उन्होंने अपने द्वितीय एकांकी संग्रह 'पर्वत के पीछे' की भूमिका में जो 1952 में प्रकाशित हुई थी लिखा है, "मैं ऐसे नाटक लिखना चाहता हूं जिनमें कोई बन्द सूरत बेनकाब कर दी गई हो, कोई घिनौना नासूर-घाव साफ करके दिखा दिया गया हो, स्वप्न में रोते हुए इन्सान के आँसुओं को मूर्त कर दिया गया हो, उदास ओंठों पर न जाने कब की सूखी हुई मुस्कुराहट प्यार देकर या थप्पड़ मारकर जगा दी गई हो।" डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने समय की समस्याओं को लघु नाटकों में प्रमुखता दी। वे न तो आदमी की सामाजिक वैयक्तिक जटिलताओं के प्रति उदासीन रहे और न ही उसके आन्तरिक संघर्ष और भाषा के प्रति। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के बाद भारत के जीवन की पीड़ा मानव स्वतन्त्रता बनाम सत्ता और

व्यवस्था के संघर्षों को अनेक कोणों से कथ्य में ढालने पर भी उन्होंने मानवीय आस्था कोक भी नहीं त्यागा। जीवन और नाटक दोनों में आस्था की यही शक्ति उन्हें निर्देशक, अभिनेता, रंगकर्मी, नाटककार, नाट्य समीक्षक सभी कुछ एक साथ बनाती है।

प्रसिद्ध समालोचक डॉ० प्रभाकर माचवे के अनुसार "नाटककार रंगकर्मी लक्ष्मीनारायण लाल के व्यक्तित्व में पहली बार ऐसा परम संयोग हुआ जहाँ अपनी रंग मिट्टी अपनी नाट्य परम्पराओं के भीतर से रचना और सौंदर्य-बोध से स्वयं स्थापित हुई जिस पर न कोई किसी का आग्रह है न प्रभाव।" डॉ० लाल ने अपनी रंगयात्रा अपने आप पर निर्भर रहकर निर्भय रूप से बिना अपने उद्देश्य से विमुख हुए, चाहे कितना ही अकेले रहना पड़ा हो, जूझते हुए तय की और पा करके रहे अपना रंगमंच। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार नाटक लिखा नहीं जाता बल्कि रंगमंच में उसकी रचना होती है। इसीलिए इन्होंने अपने नाटकों में समय-समय पर रंगमंचीय आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए अपने नाट्य आलेखों में आवश्यकतानुसार परिमार्जित करते हुए संशोधन भी किये ताकि नाटक अपने मूल उद्देश्य अर्थात् रंगमंच हेतु प्रस्तुतीकरण के उद्देश्य में सफल रहे और यह केवल पाठ्यक्रम हेतु ही सीमित न रह जाय। लाल के नाटकों में सब कुछ प्रत्यक्ष तथ्य के रूप में हमारे सामने प्रकट होता है। जितना नाटक में दिखाया जाता है उससे वहीं अधिक दर्शक के अंतस में घटित होने लगता है। अंतस के पीछे और नाटक के बाहर मानो एक और नाटक चरितार्थ हो उठता है। यह अभिव्यंजना शक्ति लाल के नाट्य का अतिरिक्त आयाम है। डॉ० लाल के स्वयं के अनुसार भी नाटक में जो भी लिखा होता है, जितने जीवन संदर्भ इसमें उभरे होते हैं और उनके अनुसार जितना कुछ रंगमंच में उभर कर आता है वह सब समुद्र की सतह पर दिखते हुए उस पहाड़ की चोटी की तरह है जिसका नौवाँ हिस्सा पानी के गर्भ में अदृश्य है और सिर्फ एक भाग दृश्य है। वही अदृश्य, वही अप्रकट, वही अनाहद रंगमंच की वह मोहिनी है जो सारी कलाओं के जादू और सारत्व को समेट कर हमारे आवेगों और उद्वेगों का प्रतिनिधित्व करता है इसीलिए नाटक में जो कहा गया है उससे अर्थवान वह है जो छोड़ दिया गया है।

डॉ० लाल द्वारा भारतीय, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का चिन्तन-मनन इस संग्रह में संकलित लघु एकांकियों को पढ़ने से परिलक्षित होता है। उनमें विभिन्न विचारधाराओं को गहराई से समझने की अनवरत प्रक्रिया स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। संवेदनशील चित्त और देश व समाज से जुड़ने की इसी प्रवृत्ति के कारण ही उनके एकांकी और लघु नाटकों की विषयवस्तु बहुरूपी और बहुरंगी है। उनके द्वारा रचित प्रत्येक एकांकी अपने में भिन्न एवं प्रस्तुतीकरण के विभिन्न रंग-संयोजन के कारण अनूठा है। डॉ० लाल के एकांकियों के चिन्तन का मूल विषय है—वर्तमान जीवन की स्थिति और उसकी परिणति—डॉ० लाल के विभिन्न एकांकियों के पात्र ठोस चारित्र्य आवरण में कैद नहीं हैं जिसके कारण ही अभिनेता अपनी सीमा एवं क्षमता के अनुरूप उन्हें जीवन्तता व सम्पूर्णता प्रदान करता है। इसी कारण ही निर्देशक एवं अभिनेता की कल्पनात्मक एवं सृजनात्मक प्रतिभा को उद्वेलित करके

अपनी ओर आकृष्ट करता है जिससे कि नाट्य चरित्रों, प्रेक्षकों के साथ-साथ वे भी आत्मसाक्षात्कार कर सके। तभी यह आकर्षण महानगरों से लेकर छोटे-छोटे कस्बों तक प्रतिष्ठित और प्रशिक्षित निर्देशकों-अभिनेताओं से लेकर स्कूलों, कालिजों के अव्यावसायिक कलाकारों तक और प्रशिक्षण नाट्य संस्थाओं से लेकर साधनहीन नाट्य दलों तक डॉ० लाल के एकांकी समान उत्साह एवं रुचि के साथ खेले और देखे जाते हैं। डॉ० लाल का मानना है कि मानव ही मानव के लिए सबसे कौतुक का विषय रहा है। मानव अपने और अपने परिवेश के साथ निरन्तर संघर्ष करता है क्योंकि हर मनुष्य में कहीं-न-कहीं एक प्रेरक शक्ति होती है जो उसे हमेशा क्रियाशील रखती है और उसमें कहीं-न-कहीं एक आदर्श होता है जो उसे मन्त्र की तरह बेधे रहता है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का रंगमंच इसी बिन्दु से प्रारम्भ होता है।

'मेरा अपना रंगमंच' में लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है, "मेरे लिए रंगमंच उस यौवन की तरह है जो एक गहरे अनुराग के साथ प्रत्येक सुन्दर वस्तु की छाप ग्रहण करने के लिए ललकता है। इतना ही नहीं, मेरे लिए यह रंगमंच मेरी निजी चेतना-सा बन गया है। मैं इसे उस तरह नहीं देख पाता जैसे रंग-समीक्षक या कला-पारखी इसे देखता है। इसके विषय में विचार-विवेचन कर कुछ निष्कर्ष निकाल कर, कुछ स्थापनाएँ कर वह जिस तरह मुक्त हो जाता है मैं नहीं हो पाता। यह हर क्षण मुझ में बसा रहता है—फूल में सुगन्धि की तरह, योग में अनुभव की तरह और रूप में मादकता की तरह। मैं बारहा इससे मुक्ति चाहता हूँ—एक क्षण के लिए छुटकारा, पर मैं इससे निस्संग तक नहीं हो पाता। यह मेरे लिए नरक है। यही मेरे लिए स्वर्ग है। यह पग-पग पर मेरा स्वाभिमान खण्ड-खण्ड करता है। यह हर क्षण मुझे महिमा-मण्डित करता है।"

डॉ० लाल के एकांकी एवं पात्र मूलतः मनोरंजक हैं क्योंकि वे दर्शक के स्तर पर उतर कर उससे संवाद के आकांक्षी हैं। डॉ० लाल ने एकांकी को रंगशाला की दीवारों से आजाद कर इसको व्यापकता प्रदान की है क्योंकि वे एकांकी को रंगशाला प्रयोग की वस्तु न मानकर आम आदमी के आस्वाद से जोड़कर देखते हैं। इनके अधिकांश एकांकियों में नाट्यगृह की दीवार, दृश्यबन्ध की सीमा नहीं मिलती। उनका मुख्य उद्देश्य है अपने नाटकों द्वारा दर्शकों को अपनी रंगलीला का सहभागी बनाना। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के एकांकी यहाँ की भूमि, यहाँ की मिट्टी से जुड़े हुए हैं, साथ लिए हुए हैं, यहाँ की मिट्टी की सौंधी महक। वे स्वयं को कदापि आधुनिक कहलाने के इच्छुक नहीं रहे। क्योंकि उनकी मान्यता थी आधुनिकता की अंधी दौड़ में केवल पश्चिम की मात्र नकल करके उधार ली हुई विरासत को ओढ़ने की प्रवृत्ति जिसका उन्होंने जीवन-पर्यन्त वैचारिक विरोध किया। उनका सदैव प्रयास रहा भारतवर्ष की पारम्परिक मर्यादाओं को पाश्चात्य संस्कृति से बिना प्रभावित हुए सम्प्रेषण करके दर्शकों से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना। उन्हीं के अनुसार "कृतित्व संभव है अपनी जड़, अपनी मिट्टी से उगने में। अपनी हवा, अपने परिवेश, अपनी परिस्थितियों में ही उसका विकास है, फूल और फल है। खासकर नाटक और रंगमंच के संदर्भ में अपनी परम्परा से जुड़ने में

ही कृतित्व की सारी संभावनाएँ हैं। परम्परा से जुड़ने का मतलब वर्तमान से पलायन नहीं। इसका अर्थ है अपनी दृष्टि प्राप्त करना। अपनी दृष्टि हर मनुष्य और प्रकृति को, प्राचीन और वर्तमान को पूरे काल को दो टुकड़ों में बाँट कर देखना नहीं। बाहर जो सूर्य का प्रकाश है वही भीतर हमारी बुद्धि का प्रकाश है। बाहर जो अंधकार है वही हमारे भीतर का भय है। बाहर प्रकृति में ऊपर उठने की जो प्रक्रिया है वही हमारे भीतर की उमंग है। इसीलिए हमारे नाटकों में रंगमंच शैलियों में प्रकृति और पुरुष का युद्ध नहीं है। मनुष्य और देवता में स्पर्धा नहीं है। राजा, प्रजा में विषमूलक बैर नहीं है। इसी जीवन दृष्टि का साक्ष्य है कि हमारे यहाँ ज्ञान, विज्ञान, कला और आनन्द का पहला बुनियादी केन्द्र यज्ञ है, पूजा है। इसी से निकला और विकसित हुआ है अपना नाट्य। नाट्य हमारे यहाँ कभी यथार्थ नहीं रहा, लीला रहा।"

प्रसिद्ध नाट्य चिन्तक डा० दशरथ ओझा के अनुसार डा० लाल की कृतियों पर जितनी आलोचनाएँ हुई, जितने शोध प्रबन्ध तैयार हुए, जितने स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे गए उसका मूल कारण यह है कि उनकी नाट्य कृतियों में इतना वैविध्य है, प्रयोगों की इतनी बहुलता है, विचारों का इतना विस्तार है, प्रश्नों की इतनी भरमार है कि जो भी इनके नाटक पढ़ता अथवा रंगमंच पर देखता है वह विचारों, समस्याओं, प्रश्नों की एक लम्बी कतार साथ लेकर घर लौटता है। लक्ष्मीनारायण लाल में जहाँ साहित्यिकता और रंगमंचीयता का, ग्रामीणता और नागरिकता का, कलात्मकता और व्यावसायिकता का, फक्कड़पन और अक्खड़पन का, विनम्रता और दृढ़धर्मिता का, भारतीय मुमूर्षा, और पाश्चात्य मुमूर्षा, सनातन निष्ठा और पुरातन अप्रतिष्ठा का विस्मयकारी सम्मिश्रण पाया जाता है।

इस संकलन में डा० लाल के कुल 94 एकांकी-लघु नाटक संकलित करके प्रस्तुत किए जा रहे हैं। संकलन में प्रस्तुत प्रत्येक एकांकी इनकी रंग साधना व प्रतिबद्धता का परिचायक है, जो इनकी रंगदृष्टि का महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक की बड़ी संख्या में अभिनीत होकर मंचित होते रहे हैं। जो इनकी लोकप्रियता की पुष्टि करता है। क्योंकि अन्ततोगत्वा नाट्य रसिक ही किसी नाटक या नाटककार की सफलता-असफलता के सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णायक हुआ करते हैं। डा० लाल ने अपने जीवनकाल में इलाहाबाद प्रवास के दौरान 'नाट्य केन्द्र' की स्थापना की। दिल्ली आने पर 'संवाद' नामक नाट्य संस्था के संस्थापक रहे। इन दोनों नाट्य संस्थाओं द्वारा नियमित नाट्य प्रदर्शन किए गए और अनेक प्रतिभाशाली निर्देशक एवं अभिनेता नाट्य जगत में स्थापित हुए। अन्य क्षेत्रों में कार्यरत महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों एवं सामान्य जन को इन संस्थाओं में जोड़ कर लाल ने अपने रंग आन्दोलन को बेहतर बनाकर ठोस रंग आन्दोलन का सूत्रपात किया।

डा० लाल द्वारा लिखे गए एकांकी रंगमंच एवं दर्शकों की माँग के अनुरूप ही गढ़े गए। उन्होंने अपने एकांकी नाटकों की तरह यथा आवश्यकतानुसार मंच की सीमाओं और माँग के अनुरूप परिवर्धित एवं संशोधित करके नाट्य आलेख को मंचोपयोगी बनाने का प्रयास किया।

अब तक डा० लक्ष्मीनारायण लाल के प्रकाशित एकांकी संग्रह हैं : ताजमहल के आँसू, पर्वत के पीछे, नाटक बहुरंगी, नाटक बहुरूपी, सिरा दरवाजा, खेल नहीं नाटक, मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी, नया तमाशा, शुरू हो गया नाटक।

'ताजमहल के आँसू' व 'पर्वत के पीछे' एकांकी संग्रह डा० लाल के विद्यार्थी काल में ही प्रकाशित होकर मंचन के साथ-साथ विभिन्न रेडियो स्टेशनों से प्रसारित भी किए गए। डा० लाल का सर्वप्रथम मंच पर मंचित किए जाने वाला एकांकी 'ताजमहल के आँसू' था जिसके विषय में वे स्वयं लिखते हैं, "वह मेरे लिए बड़े सौभाग्य का दिन था जिस दिन दीक्षान्त समारोह के सिलसिले में म्योर हौस्टिल में मेरा पहला एकांकी 'ताजमहल के आँसू' वहाँ के छात्रों द्वारा अभिनीत होने को था। वह एकांकी यूनिवर्सिटी मैगजीन में छपा था। परम्परा को तोड़ते हुए नये एकांकीकार के एकांकी को मंचित किया गया था। दर्शकों को सम्मानित अतिथियों के बीच यह नाटक खूब सराहा गया।" यह उसे रंगयात्रा की शुरुआत थी। उस महत्त्वपूर्ण नाटककार की जो अपने अथक प्रयास से आगामी तीस वर्षों तक हिन्दी नाट्य सम्पदा को समृद्ध करता रहा। 'ताजमहल के आँसू' एकांकी संग्रह के अन्य एकांकी थे 'उर्वशी', 'महाकाल का मन्दिर', 'जहांआरा का स्वप्न', 'नूरजहाँ की एक रात'।" प्रथम प्रकाशन के पश्चात यह समस्त नाटक पर्याप्त चर्चा के विषय रहे जो मंचित होने के साथ-साथ विभिन्न रेडियो केन्द्रों द्वारा प्रसारित भी किए गए। डा० लाल का दूसरा एकांकी संग्रह 'पर्वत के पीछे' नाम में निकला जिनसे संगृहीत एकांकी इस प्रकार थे : 'पर्वत के पीछे', 'सुबह होगी', 'नयी इमारतें', 'मंडवे का भोर', 'धुएँ के नीचे', 'कैद से पहले'। अपनी विविधता के कारण समस्त एकांकी नाट्य जगत में अपना स्थान बनाने में सफल रहे। डा० लाल का अगला एकांकी संग्रह 'नाटक बहुरंगी' के नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें—'मम्मी ठकुराईन', 'दो मन चाँदनी', 'सुबह से पहले', 'औलादी का बेटा', 'बाहर का आदमी', 'शाकाहारी', 'शरणागत', 'गली की शान्ति', 'चौथा आदमी', 'काल पुरुष' और 'अजन्ता की नर्तकी', 'मैं आईना हूँ', 'जादू बंगाल का' सम्मिलित हैं। पूर्व के एकांकियों की तुलना में डा० लाल के इस संग्रह में और अधिक परिपक्वता का परिचय मिलता है जो मंच की दृष्टि से अत्यन्त सशक्त सिद्ध हुए। 'मम्मी ठकुराईन', 'शरणागत', 'काल पुरुष' और 'अजन्ता की नर्तकी', 'दो मन चाँदनी' प्रयाग एवं दिल्ली विश्वविद्यालयों के विभिन्न कालिजों में सफलता के साथ मंचित हुए। 'चौथा आदमी' का दृश्यबन्ध नितान्त मुक्ता काशी शैली का ठीक लोक-नाट्यों की तरह है। कहीं भी किसी भी खुली जगह में मंच की परिकल्पना करके सहजता से मंचन किया जा सकता है। इस एकांकी का हर चरित्र लोकनाट्यों के स्वांगधारियों-बहुरूपियों की तरह अपने संवाद उछाल जाता है। 'जादू बंगाल का' में यह रंगधर्मिता कुछ और गहरी हो गई है। यह एकांकी मंच की अनिवार्यता को अस्वीकार कर देता है। वस्तुतः इस एकांकी के संग्रह 'बन्द कमरे' के पूर्वाग्रह को तोड़ते हैं क्योंकि उनके रंगमंच का विस्तार गली-कूचे, हाट-बाजार, पार्क-मैदान, नुक्कड़-चौराहा तक है। 'रंग-भूमि' यह सम्पूर्ण दृश्य जगत है। इसीलिए अधिकांश एकांकियों का गठन मुक्ता काशी

शिल्प पर आधारित है। 'काल पुरुष और अजन्ता की नर्तकी' में कमरे की दीवारें मौजूद हैं क्योंकि इस एकांकी में पारम्परिक मंच परिकल्पना को दृष्टिगत रखते हुए नाट्य दलों की आवश्यकता के अनुसार रूपबन्ध किया गया है। 'शरणागत' मूलत: ध्वनि नाट्य है जो यहाँ मंच नाट्य की तर्ज पर प्रस्तुत हुआ है। 'नाटक बहुरूपी' नाट्य संग्रह में ही 'वरुण वृक्ष का देवता', 'मीनार की बाँहें', 'रावण', 'ठण्डी छाया', 'गदर', 'वसन्त ऋतु का नाटक' बिल्कुल खुले रंगमंच मुक्ता काशी रंगमंच की चीज है। 'नाटक बहुरूपी' के एकांकियों में नाटककार का आग्रह निश्चित अर्थ, विचार, उद्देश्य और वास्तविक जीवन के तत्त्वों से अपनी नाट्य रचना में रंगमंच का एक निश्चित स्वरूप उतारने की ओर रहा है। डा० लाल के इन एकांकियों में पारम्परिक और शास्त्रीय विधानों के अनुसार एक घटना अवश्य ली गई है। उस घटना का अर्थापन करना केवल व्याख्याकारों-टीकाकारों के लिए ही नहीं छोड़ दिया गया है। नाटककार अपनी नाट्य कृति के माध्यम से स्वयं उसकी व्याख्या प्रस्तुत करता है। 'गुड़िया', 'वरुण वृक्ष का देवता', 'रावण' यद्यपि इतिहास पुराण पर आधारित एकांकी हैं तथापि इनमें जीवन की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

'नमक और पानी', 'एक औसत आदमी', 'पीढ़ियों का संघर्ष', 'भाषा और संस्कार', 'कुछ और कुछ', 'आन्टी और आन्टी', 'हाय अंकल', 'चोर-चोर बहन-भाई', 'क्यू में', 'गुप्त धन', 'अब और नहीं', 'बाहर का रास्ता', 'आईना देख अपना' और 'खुशबू' लाल द्वारा समय-समय पर रेडियो अथवा टेलीविजन हेतु लिखे गए नाट्य आलेख हैं जिन्हें इस उद्देश्य से इस संग्रह में ज्यों का त्यों स्थान दिया गया है ताकि सुधी पाठक डा० लाल द्वारा इन माध्यमों के लिए लिखे गए कृतियों से भी दो-चार हो लें।

'दूसरा दरवाजा' एकांकी संग्रह में 'केवल तुम और हम', 'दूसरा दरवाजा', 'फिर बताऊँगी', 'धीरे बहो गंगा', 'हाथी घोड़ा चूहा' और 'कॉफी हाउस में इन्तजार' नामक एकांकी संगृहीत हैं। यह डा० लाल का अत्यन्त विशिष्ट संग्रह है क्योंकि इसमें सम्मिलित एकांकियों ने अपने मंचन काल से ही अत्यन्त ख्याति पाई और लगभग पूरे देश में इनका मंचन किया गया। रंगमंच पर कई संस्थाओं द्वारा केवल स्त्री चरित्रों को लेकर एकांकी की माँग की गई। उसकी पूर्ति हेतु डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने एकांकी 'केवल तुम और हम' लिखा। दिल्ली विश्वविद्यालय के जानकी देवी कालिज द्वारा सर्वप्रथम इसका मंचन किया गया। स्त्री पात्रों वाले इस एकांकी को रच कर लाल ने स्त्रियों को रंगमंच की भागीदारी दी है। 'दूसरा दरवाजा' एकांकी वर्तमान के धरातल पर जुड़ा हुआ है—बेकारी की स्थिति, बेकारी से उत्पन्न कुण्ठाएँ, बेकारी की यन्त्रणा, कुर्सी पाने के लिए दूसरे दरवाजे, पैरवी, रिश्तेदारी का प्रयोग। यह एकांकी नाट्य संस्थाओं द्वारा अनेक बार मंचित किया गया है। 'फिर बताऊँगी' दफ्तरी बाबुओं का जीता-जागता चित्रण करता है। और कार्यालयों में पुरुष के साथ काम करने वाली महिलाओं की समस्या का निरूपण भी 'धीरे बहो गंगा', 'नारों के व्यंग से', 'हाथी घोड़ा चूहा' दफ्तरी साहबों के भीतर मौजूद पशुपन के कीटाणुओं के अधिवेशन से जुड़ा

है। 'कॉफी हाउस में इन्तजार' नेशनल स्कूल आफ ड्रामा के स्नातकों द्वारा अभिनीत किए जाने के अतिरिक्त अन्य सुरुचिपूर्ण संस्थाओं द्वारा बार-बार मंचित किया जाता रहा है। वस्तुतः 'दूसरा दरवाजा' का हर एकांकी जीवन और जगत के किसी न किसी ऐसे धरातल पर टिका है जहाँ जीवन की जीवन्तता समाप्त होने को है—नाटककार की छुअन उनमें नवजीवन का संचार कर देती है। डा० लाल के सभी एकांकी कहीं न कहीं समसामयिकता को स्पर्श कर ही खड़े होते हैं। इन एकांकियों की ख्याति का कारण इन कृतियों की अपनी रचनात्मक सशक्तता है जो शिल्प और शैली के धरातल पर पारम्परिक नाट्य शिल्प और रूपों में स्वायत्त किए गए हैं और जो सीधे वर्तमान से जुड़े हैं। इसीलिए इनमें समसामयिकता भी है और लोक-नाट्यों का लचीलापन भी है। इसलिए ये परिष्कृत पारम्परिक शिल्प के नमूने भी हैं और शैली शिल्प के नये प्रयोग भी।

'खेल नहीं नाटक' में संगृहीत एकांकी—'अखबार', 'परिचय', 'शहर', 'अप्रासंगिक', 'खेल', 'एक घण्टा', 'नहीं', 'क्रिकेट' वस्तुतः आपातकाल के दौरान लिखे गए एकांकी हैं। जिनमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं राजनीतिक-सामाजिक विसंगतियों को बखूबी चित्रित किया गया है। यह समस्त एकांकी आपातकाल के दौरान विभिन्न स्थानों पर अत्यन्त उत्साह से मंचित किए गए। प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत एकांकी 'भगवती जागरण', 'एक शून्य की हत्या', 'डिनर पार्टी', 'हत्या की राजनीति', 'पोलिटिक्स आफ ह्यूमन ट्रेजेडी', 'ड्रिल', 'वापस घर आना', 'शादी', 'दो व्यक्ति', 'इतिहास की कथा' और 'बीरबल की खिचड़ी' वस्तुतः दृश्य बन्धों में बँधे हुए छोटे-बड़े एकांकी हैं। जो एक साथ भी मंचित किए जा सकते हैं और अलग-अलग दृश्यों के तहत भी।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के एकांकी संग्रह 'नया तमाशा' में 'हेमु का बलिदान', 'लड़कियाँ', 'मैं और मैं', 'सबरंग मोहभंग', 'माता', 'फुटबाल और नया तमाशा' एकांकी हैं। 'सबरंग मोहभग' डा० लाल का पहले पूर्णकालिक नाटक के रूप में मंचित हुआ। परन्तु बाद में उन्होंने इसे एकांकी के रूप में मंच हेतु प्रस्तुत किया। 'शुरू हो गया नाटक' डा० लाल का अन्तिम प्रकाशित एकांकी संग्रह है। जिसमें 'बूढ़े पुत्रों की जवान माँ', 'शुरू हो गया नाटक', 'आँखों देखा तमाशा', 'वह मेरा पति', 'तुम चन्दन हम पानी' संगृहीत हैं। 'तुम चन्दन हम पानी' एवं 'खाक एक सूरत बहुतेरी' मूलतः नृत्य नाटिकाएँ हैं। जो शुद्ध रंगमंचीय माँग को देखते हुए ही की गई। 'इनविजी-लेटर', 'बिल्ली का खेल', 'बन्दर का खेल', 'झील में चन्द्रमा' एवं 'राजा लम्बोदर बालकों हेतु उनकी सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुए रखे गए हैं। स्पष्ट है कि डा० लाल ने अपने एकांकियों को मात्र पढ़ने के लिए नहीं लिखा वरन् रंगमंच पर अभिनीत करने के लिए उनकी रचना की सच्चाइयों से ऐसा जोड़ दिया कि उनके एकांकी खेल अथवा नाटक न होकर मानव जीवन के शुद्ध कर्म लगने लगे। लाल के अनुसार ही "मैंने अनुभव किया है कि नाटक लिखना नहीं रचना है और इस रचना में देखना और जीना दोनों एकसाथ हैं।" डा० लाल रंगमंच के जादूगर थे। उनके निर्देश अंशों में उनका रंगमंचीय अनुभव दृष्टिगत होता है।

किसी भी देश का जीवित रंगमंच वहाँ की मिट्टी, वहीं के रागरंग से उपजता है जिसमें हमारी रंग परम्परा हो, जिसमें हमारी सांस्कृतिक दृष्टि और कलात्मक दृष्टि हो। यह इस तरह जितना 'हमारा होगा' उतना ही अधिक इसमें हमारा चतुरंगी जीवन अपना सहज प्रतिनिधित्व पाएगा और वह उतना ही अधिक विकासमान और व्यावहारिक होगा। लाल के अनुसार जब तक आदमी अपने यथार्थ से जुड़ा न रहेगा और जिन्दगी में से कोई मौज-मस्ती, मनोरंजन और कोई खास रंग निकाल करके मंच पर प्रस्तुत न कर पाएगा—जो जीवन की परम अनिवार्यता है तब तक हमारे यहाँ हिन्दी क्षेत्र में अपना नया रंगमंच अपने मूल से नहीं जुड़ पाएगा। यह रंग संकल्प है—इन्द्रिय विलास नहीं। श्रेष्ठ रंगकर्मी वही हो सकता है जो प्रतिपल इस आत्मबोध में रहे कि मैं हूँ क्योंकि सब हैं। मैं हूँ क्योंकि मेरा समाज है। मेरा देश है तभी मैं हूँ। प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत समस्त एकांकी लघु नाटक वस्तुतः डा० लक्ष्मीनारायण लाल की इसी विचारधारा के सबल परिचायक हैं। प्रस्तुत संग्रह को प्रामाणिक बनाने का भरसक प्रयास किया गया है और एकांकियों का क्रम उनके रचनाकाल के अनुसार ही रखा गया है। इस संग्रह को पाठकों तक पहुँचाने में श्री सत्यव्रत शर्मा ने गहरी दिलचस्पी ली है और इस संग्रह को तैयार करने में महती भूमिका निभाई है। श्रीमती अनुपमा वर्धन ने भी इस ग्रन्थ को तैयार करने में सहयोग दिया है। श्री सी० पी० वर्मा ने रचनाओं को व्यवस्थित करने और पाण्डुलिपि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन समस्त के प्रति मैं आभारी हूँ।

आशा है डा० लक्ष्मीनारायण लाल के प्रस्तुत सम्पूर्ण एकांकियों के इस ग्रन्थ को पाठकगण उपयोगी पाएँगे।

अपनी रंगभूमि की भूमिका

अपनी इस भूमिका का संबंध अपने ही कितने भूले-बिसरे रंगसूत्रों से है, जो हमारी चेतना-भूमि पर बिखरे पड़े हैं। उस बिखराव के बीच खड़े रहकर उन्नीस सौ सत्तर के आसपास एक बिसरी याद आई इलाहाबाद की, जहां हमने 'नाट्य-केन्द्र' से यह स्वप्न देखा था कि एक दिन अपना नाट्य, हिन्दी नाट्य, भारतीय नाट्य होगा। वही बिसरी याद नई दिल्ली में आई, लज्जित हो गया। उदासी से भर गया। तभी, दूसरे ही क्षण मुझे अपने किसी पुरखे की याद आई, जिसने कहा, सुना, भूली-बिसरी याद से ही पूर्वाभास होता है। अपनी स्मृति की कालातीत प्रक्रिया का जब वर्तमान में मंथन होता है तो भावी आकांक्षाओं की सोच, किसी नई रचना-दृष्टि का हेतु बनता है।

स्मृतियों के उसी खिंचाव में पहली बार मूल संस्कृत में 'हनुमन नाटक' पढ़ा। रावण और कुम्भकरण के इस दृश्य और संवाद पर रुक गया। रावण कहता है—कुम्भकरण उठो, दिन निकल आया है। देखो, राम की पत्नी को मैं ले आया हूँ। कुम्भकरण पूछता है—उसका भोग किया? रावण जवाब देता है—वह तो किसी तरह काबू में ही नहीं आती। राम के सिवा और कुछ सोचती ही नहीं। इस पर कुम्भकरण सलाह देता है कि रावण, तुम राम क्यों नहीं बन जाते? रावण बोलता है, सुनो प्यारे!

बालाघन श्यामलं रामागं भजतः
ममापि कुटिलो भावोपि न जायते।

जैसे ही मैं राम की वेशभूषा धारण करने चलता हूँ मेरे बुरे भाव ही पैदा नहीं होते।

किसी की वेशभूषा धारण करने मात्र से उसकी पात्रता में चरित्रबल-परिवर्तन आ जाए, यह किस रूपक और नाट्य का संकेत है, आश्चर्यचकित रह गया।

जैसे-जैसे अपने भारतीय नाट्य और शास्त्र का अध्ययन-मनन करता गया, वैसे-वैसे एक बुनियादी बात स्पष्ट होती चली गई कि हमारी नाट्य दृष्टि पश्चिम की तरह निरपेक्ष नहीं है। हमारी अपनी दृष्टि यह है कि कोई भी कला मूलतः एक कृति है। वह कृति किसी भी तरह जीवन से अलग नहीं है। उसमें सब कुछ सन्निहित है, समाया हुआ है सब—कृतिकार, दर्शक, श्रोता, समय, काल और अवस्था पूरी।

सन् सत्तर के आसपास, मैं अपनी जाँच-पड़ताल करने लगा कि देखूं मैं क्या काम कर रहा हूँ। क्यों कर रहा हूँ? किस प्रेरणा और उत्साह से कर रहा हूँ? जो नाट्य-कर्म कर रहा हूँ, उसमें मेरी अपनी भूमिका क्या है?

देखा और पाया कि नाट्य क्षेत्र में एक अजीब विडम्बनापूर्ण स्थिति है। शास्त्र या दृष्टि के नाम पर यहाँ सब कुछ आरोपित है। थोपा हुआ है—चाहे वह संस्कृत नाट्यशास्त्र हो, चाहे पश्चिमी नाट्यशास्त्र। सब कुछ ऊबड़-खाबड़, छिन्न-विच्छिन्न। सब कुछ इस क्षेत्र में एक-दूसरे से अलग-थलग।

इससे बढ़कर और क्या अज्ञानता हो सकती है कि भारत में जन्म लेकर, यहाँ जीकर नाट्यकर्म तो कर रहा हूँ पर भारतीय नाट्य दृष्टि से अपरिचित हूँ।

जरा सोचिए, विचार कीजिए, ऐसा कृतिकार क्या रचना-सृजन कर सकता है, जिसे ज्ञान का वर्तमान (पश्चिमी) सिरा तो दिख रहा है, लेकिन उसे अपना पहला सिरा ही न मिला हो? चाहे वह कितना ही सोच-विचार करे और कितना ही तलाश और खोज में सिर खपाए, उसको अपने नाट्य और रंग ज्ञान का सीधा और यथार्थ मार्ग न मिलेगा, क्योंकि उसे आरम्भ में ही (आधुनिक काल) 'ओडियस ड्रामा' का आँखफोड़ अँधेरा दिख गया है। फलतः उसे अंधकार के सिवा और कुछ न दिखेगा।

पर जिस व्यक्ति को अपनी सत्ता का ज्ञान हो और अपने गुणों की पहचान हो, दरअसल वही अपने ज्ञान के आदि सिरे को जान सकता है और उसकी वर्तमान अवस्था को। वही अपने समय में बखूबी यह अनुभव कर देख सकता है कि जिस ड्रामा-थियेटर के पैमाने पर वह अपने नाट्य को गरीब, विपन्न पा रहा है या अपने औपनिवेशिक मानस के कारण जिसको अपनी सम्पन्नता का पैमाना बनाए हुए है, जिसके कारण वह अपनी जड़ों से कटकर दिखावटी नाट्य प्रगति की लालसा का शिकार हुआ है, वही उसकी असली दरिद्रता है। और जो अपनी रंगभूमि की सम्पन्नता, नाट्य-सौन्दर्य-दृष्टि, आत्मविश्वास उसके पास है, और जिसकी तरफ उसका ध्यान नहीं है वही उसकी वास्तविक दरिद्रता है।

अपने जीवन नाट्य के प्रसंग में उनके ड्रामा-थियेटर ज्ञान से मुझे स्पष्ट हुआ कि वे योजनापूर्ण ढंग से हमें आधुनिकता की जो दीक्षा देते हैं, उससे इस तरह हमारा मन बनाते हैं कि जो तुम्हारा था, वह तो प्राचीन था, उससे अब तुम्हारा क्या मतलब? तुम्हारी मुक्ति प्राचीन से कटकर परम्परा-त्याग से आधुनिक बनने में ही है। अर्थात् वे हमें आधुनिक करने के लिए आधुनिक नहीं बनाते, इसलिए बनाते हैं कि तुम आधुनिकता के नशे में पश्चिम पर अवलम्बित रहो।

इस प्रकाश में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध वर्तमान समय तक, अपना पूरा नाटक और रंग देखें तो स्पष्ट होगा कि तथाकथित ऐतिहासिक, वैज्ञानिकता, तर्कबुद्धि की जो एक प्रवृत्ति है, वह निश्चित ढंग से रूपक-तत्व के स्थान पर वस्तु को, नाटकत्व के स्थान पर गति को ही महत्त्व देता है। ठीक इसके विपरीत अपने रूपक का जो नाटकत्व है, उसका मूल तत्त्व है प्रज्ञात्मक अनुभव। इसीलिए तो कुमार स्वामी के शब्दों में पश्चिम में विज्ञान है, पूर्व में प्रज्ञा।[1]

जब तक मुझे अपनी रंगभूमि, अपने नाट्य, अपनी रंगदृष्टि का आभास न था, तब तक नाटक और रंगमंच के नाम पर भारत में जितना कुछ राष्ट्रीय स्तर पर ड्रामा-

1. नालेज आफ द वेस्ट एंड विजडम आफ द ईस्ट।

थियेटर का प्रदर्शन हो रहा था, उसका मैं एक गूँगा दर्शक था। मेरे लिए वह एक ऐसा औपनिवेशिक-ऐतिहासिक नाटक था, जो खेला तो जा रहा था भारत देश में, पर जिसका आलेख लंदन में बैठे किसी अंग्रेज ने लिखा था।

मैंने देखा और अनुभव किया है कि सुनियोजित ढंग से आजादी के आसपास सम्पूर्ण रंगधर्मिता हम पर लादी जा रही थी। नेहरू-काल का स्वतंत्र भारत बड़े उत्साह और गौरव के साथ पश्चिम के आधुनिक थियेटर-ड्रामा और उसके शास्त्र का आज्ञाकारी ढंग से अनुकरण कर रहा था। उसमें मुझ जैसे लोग भी थे। उस दौर में बुजुर्ग रंगकर्मियों के साथ नकली पश्चिमी ऐसी बहुत सारी चीजें हमने सीख लीं, जो हमारी जीवन प्रकृति और नाट्य प्रकृति के बिल्कुल खिलाफ थीं। इस पर तुर्रा ये कि हमारी यह सोच बन चुकी थी कि हमारे भारतीय नाट्य की शुद्धता उसी नकल में है। हम जब हिन्दी नाटक लिखते थे तो हमारे जेहन में पश्चिम के रंग-निर्देशक, पंचशिल्पी और उनका शास्त्र होता था। हमने जहाँ कहीं प्रशिक्षण केन्द्र देखा, वहाँ अंग्रेजी थियेटर, मंच, प्रकाश, अभिनय, निर्देशन के ही आधार पर प्रशिक्षण पाते लोगों को देखा। चाहे हिन्दी नाटक हो, चाहे संस्कृत, चाहे शास्त्रीय चाहे लोकधर्मी, सब का निर्देशन और प्रस्तुतीकरण उसी अंग्रेजी की किताबों में दिए गए आदेशों के हिसाब से। इतना पतन हो चुका था हमारा।

अंग्रेजी नाट्य प्रदर्शनों में, निर्देशनों में गुस्सा-प्रदर्शन, चीखने-चिल्लाने, एकाएक दृश्य तोड़ने, तनाव और गति को खींचकर चरम सीमा पर ले जाकर झन्न से तोड़ने और लम्बा शून्य पैदा कर फिर 'तार सप्तक' पर बोलने पर अधिक बल है। कैसा ड्रामा, जिसके प्रदर्शन-निर्देशन के सारे तत्त्व नकली, दिखाऊ, खोखले, निकृष्ट जो विधिवत पारसी थियेटर के रास्ते हमारे तथाकथित आधुनिक रंगमंच में आए।

जब अपने भारतीय नाट्य को पढ़ा और ईश्वर कृपा से अपनी रंगभूमि को जाना तो यह अनुभव कर दंग रह गया कि अपने नाट्य और रंगभूमि में कहीं कोई ऐसी स्थिति नहीं, जिसके तहत समय, स्थान, कार्य और अभिनय की इकाई में, कहीं कोई तोड़ है, झटका है, अर्थात् बेसुरापन है। सर्वत्र एकलयता, सांगीतिकता, छन्दता और अबाध दृश्यता है—जिसे रूपकत्व कहते हैं। इसीलिए चाहे युद्ध हो, यहाँ तक कि बीभत्स हो, सबमें कला-आस्वादन है। सौन्दर्य है।

तभी तो जाना, अपना रंग क्या है। उसमें कितनी ऊर्जा और आत्मविश्वास और आत्मसम्मान है। देखने में रंग है तो एकआयामी, पर उस एक रंग को दर्शकों की इतनी आँखें एकसाथ देख रही हैं तो दर्शकों की इतनी आँखों के इतने रंग मिलकर उस एक रंग को बहुआयामी, बहुरंगी, बहुरूपी बनाते हैं।

कैसे ?

क्यों ?

अपनी 'भूमि' के कारण। अपने चित्त की बनावट के कारण, स्मृति और अनुकृति स्वभाव के कारण।

लेकिन 'रंगभूमि' पर दो घटनाएँ घटीं। पहली घटना है, इस भूमि पर सात सौ

वर्षों का मुसलमानी राज्य। जिसके कारण प्रत्यक्षतः रंगभूमि पर पटाक्षेप रहा। पर नेपथ्य में एक ओर यह संगीत के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति देती रही। दूसरी ओर नगर केन्द्रों से दूर, भारतवर्ष के सुदूर अंचलों, जनपदों और उनकी बोलियों में, देश की परिधि पर असंख्य लोकधर्मी नाट्य रूपों में जीवित रही। कहीं धर्म के सहारे, कहीं अंधविश्वास, कहीं पूजापाठ के रूप में तो कहीं खेलकूद, व्यायाम और कहीं शुद्ध-अशुद्ध मनोरंजन के रूप में। पर अपने रूप में लोकधर्मी रहे हैं, जिन्हें स्वर्गीय श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने परम्पराशील नाट्य मानने का प्रयत्न किया है। जिसमें 'लोक' और 'परम्परा' में बुनियादी अंतर और समझ में भ्रान्ति पैदा हुई है। ऐसी तमाम भ्रान्तियाँ उन्नीसवीं सदी के अन्त में अंग्रेजीदां संस्कृत प्रोफेसरों से कराई गईं।

दूसरी घटना है, भारत में अंग्रेजी राज्य। एक ऐसा अभूतपूर्व राज्य, जो अपने देश और दूसरे देश के बीच एक अनिवार्य विरोध और बैर मानता है तथा अपनी ताकत से दूसरे देश-राष्ट्र को नष्ट करने में खुद अपने भीतर वास्तविक राष्ट्रीय सत्व का विनाश है, बिल्कुल नहीं मानता।

सृष्टि में एक अखण्ड तत्त्व की सत्ता मानने वाले भारतवर्ष के लिए यह एक अकल्पनीय अनुभव था और उस स्तर पर एक अभूतपूर्व मानसिक-बौद्धिक आघात भी। उस अनुभव को हम बौद्धिक रूप से तनिक समझें-बूझें कि इसके पहले हमें सिर से दबोच कर हमीं से हल्ला करा दिया कि लो आ गया नवजागरण। फलस्वरूप हम अंग्रेज कम्पनी राज के शुरू से ही अंग्रेज विजित मनोवृत्ति के तहत पराई, पश्चिमी विचार, जीवन-संरचना, कला दृष्टि को अपनाने के लिए विवश हो गए।

उसी प्रक्रिया में भारतवर्ष में औपनिवेशिक दबाव के नीचे हिन्दी, भारतीय नाट्य की अपने मूल से कटी, उखड़ी हुई एक अभूतपूर्व शुरुआत हुई। स्वभावतः वह नई शुरुआत बिल्कुल योरोपीय ढाँचे पर हुई। भारतीय समाज को मानसिक धक्का न लगे, लोग अंग्रेजी चाल को समझ न जाएँ, इसलिए यह काम पारसी थियेटर के पर्दों के पीछे से योजनापूर्ण ढंग से बड़े ठाटबाट, पूजापाठी ढंग से किया गया। उसमें राष्ट्रीयता, अतीत गौरव, भारत-नवोत्थान, पुनर्जागरण आदि के तमाम लड्डू बाँटे गए। सनातन धर्म, आर्य समाज, गांधीजी आदि के अनेक पताका परचम फहराए गए और पूरे देश को अंग्रेज राजनीतिक चाल से अनभिज्ञ रखने के लिए शत-शत कंठों में भारतमाता की जै-जैकार कराते रहे।

इसके खिलाफ अगर अकेले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भारतीय रूपक, भारतीय नाट्य की आवाज और लहर उठी तो उसे किस तरह सुनियोजित ढंग से, नये अंग्रेजी पढ़कर निकले हुए गुलाम बुद्धिजीवियों द्वारा दबा दिया गया—इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। और यही आज तक हो रहा है—कहीं ज्यादा बड़े पैमाने पर।

तो हुआ यह कि भारत और पश्चिम की दो परस्पर अलग नाट्य परम्पराओं की कभी कोई मुठभेड़ ही नहीं हुई। दोनों के बीच में पारसी थियेटर के बिचौलिएपन से एक घुटना टेक समन्वय का रास्ता जरूर ढूंढ़ा गया। क्योंकि बीसवीं सदी आते-आते केवल रवीन्द्रनाथ ठाकुर को छोड़ देश की किसी भी भाषा में, खासकर, हिन्दी में, कोई

एक भी नाट्यकार नहीं हुआ जो कोई सर्जनात्मक सार्थक समन्वय का रास्ता ढूंढ़ सके। इसका मुख्य कारण, पराजित मनोवृत्ति और अपनी रंगभूमि के मूल से उच्छिन्न हो हमने अपने रूपक, अपने नाट्य को पश्चिम से हीन और अविकसित मानकर अंग्रेज राजा के ड्रामा-थियेटर की सपाट नकल की कोशिश की। और उसे अपने नाम दे दिए—ड्रामा को नाटक नाम, थियेटर को रंगमंच नाम।

इसमें मेरे काल में आधुनिकता को लेकर जिस तरह के विचार, जिस तरह की धारणाएँ और बहाने हमारे यहाँ पनपीं, उससे कई तरह की गड़बड़ियाँ पैदा हुईं। आधुनिक नाट्य कलाधारा में हमारे यहाँ एक झोंके के साथ पश्चिम से जो चीजें आईं, वह हमारी नहीं, थीं, हमारे बोध से मेल नहीं खाती थीं। पश्चिम की रंगकला को ही आधुनिक और प्रासंगिक मान लेने के कारण जैसे हमने अपने चारों तरफ, अपनी धरोहर की तरफ देखना छोड़ दिया या बहुत कुछ अनदेखा कर गए। हमारी दृष्टि धुंधली हुई। इससे रचनात्मकता के सवालों को भी चोट पहुँची। नाट्यकला की रचना के संदर्भ में देश समय (स्पेस) में बदल गया है। और इस प्रकार हम एक ऐसे संसार में विचरे जहाँ सब कुछ वर्तमान में है। यहीं आकर ऐतिहासिक दायित्व से जनित रंगकला तथा कथित तात्कालिक सार्थकता या प्रयोजन का भ्रम टूट गया। और मानव जीवन के प्रति मूल दायित्व की बात उजागर होने लगी, जो हमसे बाहर थी।

इस स्थिति से दबकर और काफी हद तक अज्ञानवश हमें लगने लगा कि भारतीय नाट्य, भारतीय रूपक, भारतीय नाट्यशास्त्र हमारे लिए एक ऐतिहासिक बोझ है। जबकि जैविक रूप से पश्चिम का ड्रामा-थियेटर हमें बोझ लगना चाहिए था। जो वास्तव में बोझ है, गुलामी है, सीमा है, उसकी जगह अपना स्वातंत्र्य, अपना सौन्दर्य, अपनी अस्मिता बोझ और गुलामी लगने लगे, यही तो है गुलाम मन, औपनिवेशिक बुद्धि जो अंग्रेजी की देन है। जो अपनी आन्तरिक दुर्बलता को इतिहास पर आरोपित कर हमें अपने भारतीय मूल से विच्छिन्न करने का सतत प्रयत्न करती रहती है। क्योंकि उसे मालूम है, दो सौ वर्षों के अंग्रेज कटान के बावजूद भारतीय रंगवृक्ष कहीं न कहीं अब भी हरा है। रंगभूमि अब तक बंजर क्यों नहीं हुई—यह पश्चिमी देशों की खासकर अमरीका की बड़ी चिंता है।

उन्नीसवीं सदी में पश्चिमी ड्रामा और थियेटर का जो रूप उस समय भारत में ले आकर आरोपित किया गया, वह योरोप का जड़ और पतनशील थियेटर था। वह कहीं आज भी हमारे अपनेपन से शून्य खाली मानस में टिका बैठा हुआ है। लेकिन इस बीच हमारी अपनी सांस्कृतिक जरूरतों के मुताबिक स्वभावतः उस परदेसी, आयातित ड्रामा-थियेटर की गुलामी तोड़कर उसकी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पा रहे हैं। कारण जो अपना है ही नहीं, उसे केवल अपने कंधे से उतार फेंका ही जा सकता है। उसे कंधे पर बोझ की तरह उठाए हुए उसमें स्वभावतः न कोई परिवर्तन लाया जा सकता है, न उसमें कोई प्रयोग किया जा सकता है।

उस बोझ को न उतार फेंकने के पीछे एक गहरा कारण है। हमारा तथाकथित आधुनिक नाट्य, अपने भारतीय नाट्य के उस 'लोक' से कटा-टूटा हुआ है, जिसके

एक भी नाट्यकार नहीं हुआ जो कोई सर्जनात्मक सार्थक समन्वय का रास्ता ढूंढ़ सके। इसका मुख्य कारण, पराजित मनोवृत्ति और अपनी रंगभूमि के मूल से उच्छिन्न हो हमने अपने रूपक, अपने नाट्य को पश्चिम से हीन और अविकसित मानकर अंग्रेज राजा के ड्रामा-थियेटर की सपाट नकल की कोशिश की। और उसे अपने नाम दे दिए—ड्रामा को नाटक नाम, थियेटर को रंगमंच नाम।

इसमें मेरे काल में आधुनिकता को लेकर जिस तरह के विचार, जिस तरह की धारणाएँ और बहाने हमारे यहाँ पनपीं, उससे कई तरह की गड़बड़ियाँ पैदा हुईं। आधुनिक नाट्य कलाधारा में हमारे यहाँ एक झोंके के साथ पश्चिम से जो चीजें आईं, वह हमारी नहीं थीं, हमारे बोध से मेल नहीं खाती थीं। पश्चिम की रंगकला को ही आधुनिक और प्रासंगिक मान लेने के कारण जैसे हमने अपने चारों तरफ, अपनी धरोहर की तरफ देखना छोड़ दिया या बहुत कुछ अनदेखा कर गए। हमारी दृष्टि धुंधली हुई। इससे रचनात्मकता के सवालों को भी चोट पहुँची। नाट्यकला की रचना के संदर्भ में देश समय (स्पेस) में बदल गया है। और इस प्रकार हम एक ऐसे संसार में विचरे जहाँ सब कुछ वर्तमान में है। यहीं आकर ऐतिहासिक दायित्व से जनित रंगकला तथा कथित तात्कालिक सार्थकता या प्रयोजन का भ्रम टूट गया। और मानव जीवन के प्रति मूल दायित्व की बात उजागर होने लगी, जो हमसे बाहर थी।

इस स्थिति से दबकर और काफी हद तक अज्ञानवश हमें लगने लगा कि भारतीय नाट्य, भारतीय रूपक, भारतीय नाट्यशास्त्र हमारे लिए एक ऐतिहासिक बोझ है। जबकि जैविक रूप से पश्चिम का ड्रामा-थियेटर हमें बोझ लगना चाहिए था। जो वास्तव में बोझ है, गुलामी है, सीमा है, उसकी जगह अपना स्वातंत्र्य, अपना सौन्दर्य, अपनी अस्मिता बोझ और गुलामी लगने लगे, यही तो है गुलाम मन, औपनिवेशिक बुद्धि जो अंग्रेजी की देन है। जो अपनी आन्तरिक दुर्बलता को इतिहास पर आरोपित कर हमें अपने भारतीय मूल से विच्छिन्न करने का सतत प्रयत्न करती रहती है। क्योंकि उसे मालूम है, दो सौ वर्षों के अंग्रेज कटान के बावजूद भारतीय रंगवृक्ष कहीं न कहीं अब भी हरा है। रंगभूमि अब तक बंजर क्यों नहीं हुई—यह पश्चिमी देशों की खासकर अमरीका की बड़ी चिंता है।

उन्नीसवीं सदी में पश्चिमी ड्रामा और थियेटर का जो रूप उस समय भारत में ले आकर आरोपित किया गया, वह योरोप का जड़ और पतनशील थियेटर था। वह कहीं आज भी हमारे अपनेपन से शून्य खाली मानस में टिका बैठा हुआ है। लेकिन इस बीच हमारी अपनी सांस्कृतिक जरूरतों के मुताबिक स्वभावतः उस परदेसी, आयातित ड्रामा-थियेटर की गुलामी तोड़कर उसकी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पा रहे हैं। कारण जो अपना है ही नहीं, उसे केवल अपने कंधे से उतार फेंका ही जा सकता है। उसे कंधे पर बोझ की तरह उठाए हुए उसमें स्वभावतः न कोई परिवर्तन लाया जा सकता है, न उसमें कोई प्रयोग किया जा सकता है।

उस बोझ को न उतार फेंकने के पीछे एक गहरा कारण है। हमारा तथाकथित आधुनिक नाट्य, अपने भारतीय नाट्य के उस 'लोक' से कटा-टूटा हुआ है, जिसके

अनुभव के सामने कोई भी काल-बोध और जीवन-बोध दोनों एक भूमि पर आकर हमें जाग्रत और आलोकित कर जाते हैं। इसी का गुणनफल है कि हमने किसी भी सीमा और संकीर्ण क्षेत्र का अतिक्रमण करके देखना अपना लक्ष्य माना है। वर्तमान में रहते हुए, उसकी प्रवाहशीलता का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी उसका अतिक्रमण करना, यही हमारी परम्परा की पहचान रही है।

पर आधुनिक भारत, स्वतंत्र भारत में भी अपने बोझ को उतार फेंकने, उसका अतिक्रमण करने की क्षमता नहीं रही। पर ठीक इसके विपरीत बीसवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान समय तक, योरोपीय नाट्य में अपनी सांस्कृतिक जरूरतों और जीवन से सरोकार के कारण तथा उनके मुताबिक कलात्मक संरचनात्मक, वैचारिक, सौंदर्यात्मक दृष्टि से लगातार परिवर्तन और अपनी सीमाओं का अतिक्रमण होता रहा है। योरोप ऐसी तमाम नाट्य अवधारणाओं, तत्त्वों को सफलतापूर्वक आत्मविश्वास के साथ अपनाता गया है, जो उससे काफी दूर (भारत, चीन, जापान, अफ्रीका आदि) के हैं। ऐसा योरोप इसलिए कर सका और लगातार करता जाएगा, क्योंकि वह अपने ड्रामा, थियेटर के मूल से अबाध ढंग से आदि से वर्तमान तक, विचार, कर्म और आत्मविश्वास के साथ सर्जनात्मक ढंग से जुड़ा हुआ है, उसका आत्म है, तभी उसमें आत्मविश्वास है।

उसी आत्म अभाव के कारण भारतवर्ष वैसा कुछ नहीं कर सका। भारत अपने ही जनपदों, अपने लोक, अपने ज्यादा करीब पूर्वी देशों के नाट्य तत्त्वों और अवधारणाओं को नहीं अपना सका। जबकि भारतवर्ष के लिए औपनिवेशिक बोझ उतार फेंकने और अपनी 'भूमि' पर स्वतन्त्रतापूर्वक खड़े होने के लिए यह अनिवार्य था।

बल्कि उल्टा हुआ। आजादी मिलने के बाद हम लोगों की नजर योरोपीय ड्रामा थियेटर की नई समृद्धि, प्रयोगों, परिवर्तनों की ओर उठी और हम नये सिरे से एक दोहरी गुलामी के रंगजाल में फँसे। कुछ अपवादों को छोड़कर ऐसी सारी कोशिशों में भी वही अजनबीपन बरकरार रहा और जल्दी ही लोगों को इस बात का पूरी तरह अहसास हो गया कि भारतीय नाट्य को सार्थक बनाने के लिए उसे अपनी परम्परा से जोड़ना होगा। लेकिन इनमें भी ज्यादातर कोई आंतरिक सर्जनात्मक संगति स्थापित न हो सकी। और यह भारतीयपन विदेशी प्रेक्षकों के लिए चाहे जो हो, भारतीय दर्शकों को उतना ही अजनबी और ओढ़ा हुआ लगा।

अपनी भारतीय नाट्य दृष्टि क्या है, शोधन कर उसको देखने, अनुभव करने की इसी अनिवार्यता ने मुझे इस ओर प्रेरित किया। अपने पुरखों से मुझे यह विश्वास मिला है कि अपनेपन की, आत्म की स्मृति, मनुष्य को बंधनमुक्त हो स्वतन्त्रतापूर्वक आगे बढ़ने में बड़ी सहायक होती है। जो अपने मूल को भूल जाता है, अपने आदि स्रोत से कट जाता है, उसका कोई भविष्य नहीं होता, क्योंकि उसे अपने वर्तमान से जुड़े रहने का कोई आत्मानुशासन नहीं प्राप्त होता।

इसे मनोविज्ञान और तत्वज्ञान भी मानता है कि मनुष्य में ऐसे कुछ सूत्र हैं जो अतीत से चले आते हैं। परम्परा जो है, वृक्ष में जड़ जो है, हम कितना भी गहरे जाएँ, जड़ की समाप्ति दिखाई नहीं देती। परन्तु हर फूल में उसका मधु है, हर फूल में उसकी गन्ध, उसका रूप है। दिखाई न देने पर भी हर पल्ल
उतना मधु नहीं हो सकता था अगर वह जड़ न होत
चाहे सोने में मढ़ दें, चाहे हम संगमरमर के प्याले मे
ऐसा ही कुछ स्थिति मनुष्य की है, जातियों की है, र

भारतीय नाट्य के मूल का अभिज्ञान,
साधारण कार्य नहीं है। बड़ा ही संश्लिष्ट और संकट
का सहज अबाध विकास, जैसा कि पश्चिमी ड्रामा
ही सहज और अबाधित है। पर किन्हीं ऐतिहासिक
की कड़ी टूट जाने से जैसा कि भारतीय नाट्य का र
बाद उसे पुनः खोजकर शोधन कर उसके साथ अपने
आप को उसके भीतर से प्राप्त करना, कितनी कठिन
तभी तो पिछले दो सौ वर्षों से इससे मुँह मोड़
गुजारा करना चाहा, जो पश्चिम के इस अन्धविश
और तत्सम्बन्धी विचार, अपने इतिहास-क्रम में ह
पीछे छोड़ता हुआ लगातार विकास करता चला गया
ही है। सारा पिछला वर्तमान आधुनिक के सामने
भयंकर प्रभाव-आघात भारत की रगचेतना और नाट्
विश्वास के दूरगामी दुष्प्रभाव से स्वयं पश्चिम का अ

आज वर्तमान भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में
बाजी छाई हुई है, उसकी बुनियाद में वही पूरब-पश्चि
जीवनदृष्टि है।

उदाहरण के लिए नाट्य बनाम ड्रामा-थियेट
परस्पर विरोध लें।

दास संस्था पर उत्पादन करने वाली यूनानी
की जरूरत थी, जो गरीब, गुलाम, मजदूरों की विशा
स्वामियों से निर्मित झूठे प्रजातंत्र के प्रति निष्ठा बे
रख सके। उन दास-स्वामियों के त्रासद और नियतिब
वाले (जभी तो पश्चिम के ड्रामा के पहले अंक का
नाटककार, आगे चलकर इसी क्रम में अपने बद
एलिजाबीथन नाटककार अपने नागरिकों को यह विश्व
साधारण नागरिक बने रहना ही बेहतर है। क्यों
राजतंत्र के लिए खतरनाक हैं, बल्कि वे स्वयं तमाम अ
हैं और परिणामतः उन्हें 'पाप', 'दंड' और यहाँ तक कि
हैं। इसी से पश्चिम के ड्रामों में यूनानी काल से लेकर
के केन्द्र में वही संघर्ष और त्रासदी ही है—चाहे वह 'प

इसलिए चरित्रों के बीच शक्ति हथियाने के

भी काल-बोध और जीवन-बोध दोनों एक भूमि पर आकर हमें
कर जाते हैं। इसी का गुणनफल है कि हमने किसी भी सीमा
अतिक्रमण करके देखना अपना लक्ष्य माना है। वर्तमान में रहते
ा का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी उसका अतिक्रमण करना, यही
चान रही है।
भारत, स्वतंत्र भारत में भी अपने बोझ को उतार फेंकने, उसका
मता नहीं रही। पर ठीक इसके विपरीत बीसवीं सदी के प्रारम्भ
तक, योरोपीय नाट्य में अपनी सांस्कृतिक जरूरतों और जीवन
था उनके मुताबिक कलात्मक संरचनात्मक, वैचारिक, सौंदर्यात्मक
र्तन और अपनी सीमाओं का अतिक्रमण होता रहा है। योरोप
ारणाओं, तत्त्वों को सफलतापूर्वक आत्मविश्वास के साथ अपनाता
फी दूर (भारत, चीन, जापान, अफ्रीका आदि) के हैं। ऐसा
ा और लगातार करता जाएगा, क्योंकि वह अपने ड्रामा, थियेटर
से आदि से वर्तमान तक, विचार, कर्म और आत्मविश्वास के
जुड़ा हुआ है, उसका आत्म है, तभी उसमें आत्मविश्वास है।
भाव के कारण भारतवर्ष वैसा कुछ नहीं कर सका। भारत अपने
ोक, अपने ज्यादा करीब पूर्वी देशों के नाट्य तत्त्वों और अव-
ना सका। जबकि भारतवर्ष के लिए औपनिवेशिक बोझ उतार
में' पर स्वतन्त्रतापूर्वक खड़े होने के लिए यह अनिवार्य था।
हुआ। आजादी मिलने के बाद हम लोगों की नजर योरोपीय ड्रामा
द्धि, प्रयोगों, परिवर्तनों की ओर उठी और हम नये सिरे से एक
ाल में फँसे। कुछ अपवादों को छोड़कर ऐसी सारी कोशिशों में
रकरार रहा और जल्दी ही लोगों को इस बात का पूरी तरह
भारतीय नाट्य को सार्थक बनाने के लिए उसे अपनी परम्परा से
इनमें भी ज्यादातर कोई आंतरिक सर्जनात्मक संगति स्थापित
भारतीयपन विदेशी प्रेक्षकों के लिए चाहे जो हो, भारतीय दर्शकों
और ओढ़ा हुआ लगा।
य नाट्य दृष्टि क्या है, शोधन कर उसको देखने, अनुभव करने
ने मुझे इस ओर प्रेरित किया। अपने पुरखों से मुझे यह विश्वास
की, आत्म की स्मृति, मनुष्य को बंधनमुक्त हो स्वतन्त्रतापूर्वक
यक होती है। जो अपने मूल को भूल जाता है, अपने आदि स्रोत
कोई भविष्य नहीं होता, क्योंकि उसे अपने वर्तमान से जुड़े
शासन नहीं प्राप्त होता।
न और तत्वज्ञान भी मानता है कि मनुष्य में ऐसे कुछ सूत्र हैं जो
परम्परा जो है, वृक्ष में जड़ जो है, हम कितना भी गहरे जाएँ,
ई नहीं देती। परन्तु हर फूल में उसका मधु है, हर फूल में उसकी

गन्ध, उसका रूप है। दिखाई न देने पर भी हर पल्लव में, हर फूल में वह है। उतना रस, उतना मधु नहीं हो सकता था अगर वह जड़ न होती। और उस जड़ को काटकर हम चाहे सोने में मढ़ दें, चाहे हम संगमरमर के प्याले में रख दें, लेकिन वृक्ष सूख जाएगा। ऐसा ही कुछ स्थिति मनुष्य की है, जातियों की है, राष्ट्र की है।

भारतीय नाट्य के मूल का अभिज्ञान, अपने रंग-स्रोत से जुड़े रहना, कोई साधारण कार्य नहीं है। बड़ा ही संश्लिष्ट और संकटों से भरा है। अपनी नाट्य परंपरा का सहज अबाध विकास, जैसा कि पश्चिमी ड्रामा का रहा है, उससे जुड़े रहना उतना ही सहज और अबाधित है। पर किन्हीं ऐतिहासिक कारणों से अपनी नाट्य परम्परा की कड़ी टूट जाने से जैसा कि भारतीय नाट्य का रहा है, उससे एक भारी अन्तराल के बाद उसे पुनः खोजकर शोधन कर उसके साथ अपने को नये सिरे से जोड़ना और अपने आप को उसके भीतर से प्राप्त करना, कितनी कठिन बात है! एक तरह से तपस्या है। तभी तो पिछले दो सौ वर्षों से इससे मुँह मोड़कर हमने उस पराई चीज से अपना गुजारा करना चाहा, जो पश्चिम के इस अन्धविश्वास पर टिका है कि ड्रामा-थियेटर और तत्सम्बन्धी विचार, अपने इतिहास-क्रम में हर प्राचीन मध्ययुग की मंजिलों को पीछे छोड़ता हुआ लगातार विकास करता चला गया है। जो है वह आधुनिक काल में ही है। सारा पिछला वर्तमान आधुनिक के सामने अप्रासंगिक, अर्थविहीन है। इसका भयंकर प्रभाव-आघात भारत की रंगचेतना और नाट्यकर्म पर तो पड़ा ही है, इस अन्ध-विश्वास के दूरगामी दुष्प्रभाव से स्वयं पश्चिम का आधुनिक थियेटर भी नहीं बच सका।

आज वर्तमान भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में जो भ्रम, भ्रांति-धोखा और घपला-बाजी छाई हुई है, उसकी बुनियाद में वही पूरब-पश्चिम की परस्पर विरोधी अन्तर्विरोधी जीवनदृष्टि है।

उदाहरण के लिए नाट्य बनाम ड्रामा-थियेटर का बुनियादी अन्तर्विरोध—परस्पर विरोध लें।

दास संस्था पर उत्पादन करने वाली यूनानी समाज व्यवस्था को ऐसे ड्रामा की जरूरत थी, जो गरीब, गुलाम, मजदूरों की विशाल भीड़ को नियतिवाद और दास स्वामियों से निर्मित झूठे प्रजातंत्र के प्रति निष्ठा के कठोर बन्धनों में जकड़कर बाँधे रख सके। उन दास-स्वामियों के त्रासद और नियतिवादी जीवन-दर्शन को प्रकट करने वाले (जभी तो पश्चिम के ड्रामा के पहले अंक का नाम है—'एक्सपोजीशन') यूनानी नाटककार, आगे चलकर इसी क्रम में अपने बदले हुए समय की माँग के अनुसार एलिजाबीथन नाटककार अपने नागरिकों को यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि आम, साधारण नागरिक बने रहना ही बेहतर है। क्योंकि ऊँचे लोग, स्वामी वर्ग न सिर्फ राजतंत्र के लिए खतरनाक हैं, बल्कि वे स्वयं तमाम अनैतिक संकट के शिकार हो जाते हैं और परिणामतः उन्हें 'पाप', 'दंड' और यहाँ तक कि भूत-प्रेतों की सजाएँ भोगनी पड़ती हैं। इसी से पश्चिम के ड्रामों में यूनानी काल से लेकर वर्तमान समय तक उनकी चेतना के केन्द्र में वही संघर्ष और त्रासदी ही है—चाहे वह 'फार्स', 'कामेडी' ही क्यों न हो।

इसलिए चरित्रों के बीच शक्ति हथियाने के लिए परस्पर सतत संघर्ष, उनके

सम्बन्धों में प्रतिस्पर्धा, उनके जीवन-व्यापार में मारकाट, विश्वासघात, मृत्यु, विनाश-भाव की धुरी पर स्वभावतः पश्चिमी ड्रामा थियेटर की रंगरूप संरचना हुई। और उन्हें अपनी विशेष पहचान और शक्ति-प्रतिष्ठा मिली। उसी के अनुसार उनके थियेटर हाल बने, एरिना थियेटर, आधुनिक थियेटर। उसी के अनुसार उनकी एक्टिंग, निर्देशन और प्रस्तुतीकरण कलाएँ विकसित हुईं और लगातार हो रही हैं।

और हम विवशतः अनिवार्यतः उनके ड्रामा-थियेटर के प्रत्येक अंग की नकल करने में लगे हुए हैं।

यह दासता, यह मजबूरी तभी खत्म होगी जब हमें अपनी रंगभूमि की चेतना प्राप्त होगी। वह अपनी चेतना देखेगी और अनुभव करेगी कि भारतवर्ष में नाट्य की मूल प्रतिष्ठा और उसका विकास पश्चिम के उस यूनानी, एलिजाबीथन थियेटर से सर्वथा भिन्न, किसी दास स्वामी राजा के द्वारा नहीं, बल्कि स्वतंत्र कलाविलासी समाज द्वारा हुआ, जिसमें सुशिक्षित-संस्कारित राजन्य वर्ग के लोग, कलागुरु, पुरोहित, श्रेष्ठी-वर्ग और तमाम उत्सव धर्मों पर आत्मनुशासित लोग शामिल थे। यह नाट्य मूलतः अपने समुदाय, समाज और अपने ही लोगों के लिए था, इसलिए उतने ही थोड़े लोगों को दर्शक नहीं, प्रेक्षक की संज्ञा मिली। इसमें धर्मसमर्थित काम-सौन्दर्य का स्वरचित लोक-स्थापित (प्रकट नहीं) होता था। हमारा नाट्य पशु रुचियाँ नहीं, अभिजात रुचियाँ और मानवीय संस्कार देने वाला रूपक था। इसमें कथा, काव्य, संगीत की ऐसी रसधर्मी अवधारणा थी जो नाट्यकार, अभिनेता, प्रेक्षक इन तीन अंगों को एक ही सृजनात्मक प्रक्रिया से प्रेक्षणीयता की एक इकाई में सहज जोड़ देती थी।

जिस दिन मुझे अपनी रंगभूमि का तनिक-सा ही आभास मिला, उसी दिन अनुभव किया कि संसार का सबसे अधिक सुन्दर, प्रभावशाली शब्द मैंने सुना। लगा कि मैं भारतवर्ष की नाट्यात्मा देख और सुन रहा हूँ। वर्षों बाद उसका प्रेक्षक, सुमनस, भावक, रसिक, बोधक हुआ हूँ। मुझे मेरा खोया हुआ आत्मविश्वास मिला है कि हिन्दी क्षेत्रों में किसी नाट्य परम्परा का अभाव एक तरह से अनुकूल परिस्थितियाँ हैं, जिनमें अपनी 'भूमि' पर अपना 'रंग' रोपा, उगाया जा सकता है। अपने इस रंगकर्म में हमारा यह चैतन्य कभी शिथिल नहीं होगा कि ड्रामा-थियेटर अस्तित्व-केन्द्रित है। रंगभूमि मूल्य-केन्द्रित।

रंगभूमि, वर्तमान में अतीत की वापसी का कोई दुःस्वप्न नहीं है। वापसी संभव ही नहीं है। वापसी जीवन के बाहर का अहसास है, जो ज्यादा से ज्यादा प्रार्थना या कविता का रूप धारण करता है।

यह वास्तविक यथार्थ है कि रंगकर्म देश और काल सापेक्ष होता है। जैसा देश-समाज होगा, जैसी उसकी अर्थव्यवस्था होगी, उसी के अनुरूप उसका रंग-बोध होगा। इस वास्तविक, यथार्थ की चुनौती को हम जानते हैं। पर 'विकास' के नाम पर वास्तविक यथार्थ के साथ उसके अनिवार्य भविष्य को भी उसमें जोड़ने का जो प्रयत्न हो रहा है, वह कुटिलतापूर्ण है, क्योंकि वह राजनीतिक है।

जिन अंग्रेजीदां लोगों ने अपनी पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा से आधुनिक भारतीय चेतना को अपने विकासवाद के दर्शन से परिभ
भारतीय रंगक्षेत्र में पराई दृष्टि और संसाधन से 'वि
में लगे हैं।

इन परिस्थितियों में अपने रंगकर्म के लिए
अनिवार्य हो जाता है। वे नये रास्ते ऐसे होने चाहि
लोगों की रचनात्मकता और वैचारिक तथा क्रियात्म
फूलने का मौका मिल सके। ऐसी स्थितियाँ बना
क्षेत्रों के लोग अपनी परम्परागत रंगभूमि की जान
और राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने के प्रयास में लग
के ज्ञान-विज्ञान को इस तरह विकसित करना होगा
विश्वास हमें फिर से प्राप्त हो। उसी आत्मविश्वास के
के स्तर पर बर्ताव कर सकेंगे। किन्तु हमें इस व
रखना होगा कि रंग-क्षेत्र के किसी भी ऐसे ज्ञान-वि
पास पहले से उपलब्ध ज्ञान और अनुभव के अन्तर्गत
क्षमताओं की ही भूमि पर हम कोई नया रंग विकास

हमें ऐसी व्यवस्था भी इस क्षेत्र में करनी होगी
लोग एक-दूसरे के करीब आएँ और हम पर ड्रामा औ
लादा है, उसे अपने सिर से उठाकर फेंक दें और
ताकि ड्रामा-थियेटर से हो रहे अपमान के अहसास की

अपनी रंगभूमि की पुनर्प्रतिष्ठा का अर्थ यह न
जाएँ। रंगभूमि-प्रतिष्ठा का अर्थ यह है कि आत्मसम्
भाईचारे के भाव को अपनी जगह जीवित रखते हुए
अभिव्यक्तियों को उभरने का मौका दिया जाएगा।

यह तभी सम्भव हो सकेगा जब भारत अप
खड़ा हो सकेगा। और अपनी देखभाल स्वयं कर सके
केवल अपनी अस्मिता के आधार पर।

अपनी रंगभूमि···

अपनी वही अस्मिता है।

अगर अपनी अस्मिता में हम जाएँगे तो जितन
उसी अनुपात में दूसरे देशों के भी रंग-क्षेत्र में हम काम

भारतेन्दु काल के दौरान भारतीय समाज के इ
के हुआ करते थे। फिर हम जयशंकर प्रसाद के समय
गए। भारत और पश्चिम का समन्वयवाद इस भटकन
गिरने से पहले हम उसका अन्दाज ही नहीं लगा सकते
से अपनी भारतीय यात्रा पर निकले तब भी उसी स
अपनी रंग दुनिया का कोई खास अनुभव नहीं था। आ

चेतना को अपने विकासवाद के दर्शन से परिभाषित किया है, उन्हीं के चेले-चाँटे भारतीय रंगक्षेत्र में पराई दृष्टि और संसाधन से 'विकास' और 'प्रयोग' की अन्धी पूजा में लगे हैं।

इन परिस्थितियों में अपने रंगकर्म के लिए नये रास्तों को खोजना हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है। वे नये रास्ते ऐसे होने चाहिए कि उस पर चलते हुए भारत के लोगों की रचनात्मकता और वैचारिक तथा क्रियात्मक पहल को नाट्य क्षेत्र में फलने-फूलने का मौका मिल सके। ऐसी स्थितियाँ बनानी होंगी जिनमें भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लोग अपनी परम्परागत रंगभूमि की जानकारी और क्षमताओं को स्थानीय और राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने के प्रयास में लगा सकें। अपनी भूमि पर अपने रंग के ज्ञान-विज्ञान को इस तरह विकसित करना होगा जिससे हमारा खोया हुआ आत्म-विश्वास हमें फिर से प्राप्त हो। उसी आत्मविश्वास के साथ हम दुनिया के साथ बराबरी के स्तर पर बर्ताव कर सकेंगे। किन्तु हमें इस वास्तविक यथार्थ को सदा ध्यान में रखना होगा कि रंग-क्षेत्र के किसी भी ऐसे ज्ञान-विज्ञान की नींव भारत के लोगों के पास पहले से उपलब्ध ज्ञान और अनुभव के अन्तर्गत डाली जाए। अपनी जानकारी और क्षमताओं की ही भूमि पर हम कोई नया रंग विकास कर सकते हैं।

हमें ऐसी व्यवस्था भी इस क्षेत्र में करनी होगी कि भारत के सभी रंगभूमियों के लोग एक-दूसरे के करीब आएँ और हम पर ड्रामा और थियेटर ने जो अपमान का बोझ लादा है, उसे अपने सिर से उठाकर फेंक दें और ऐसे रंगकर्म की सृष्टि में जुट जाएँ ताकि ड्रामा-थियेटर से हो रहे अपमान के अहसास की स्मृति तक मिट जाए।

अपनी रंगभूमि की पुनर्प्रतिष्ठा का अर्थ यह नहीं है कि हम शेष दुनिया से कट जाएँ। रंगभूमि-प्रतिष्ठा का अर्थ यह है कि आत्मसम्मान के साथ दुनिया के रंगकर्म से भाईचारे के भाव को अपनी जगह जीवित रखते हुए भारतीयता और उसकी विभिन्न अभिव्यक्तियों को उभरने का मौका दिया जाएगा।

यह तभी सम्भव हो सकेगा जब भारत अपनी रंगभूमि पर अपने ही पैरों से खड़ा हो सकेगा। और अपनी देखभाल स्वयं कर सकेगा। अगर ऐसा कर सकेगा तो केवल अपनी अस्मिता के आधार पर।

अपनी रंगभूमि···

अपनी वही अस्मिता है।

अगर अपनी अस्मिता में हम जाएंगे तो जितना हम देश के लिए काम आएंगे उसी अनुपात में दूसरे देशों के भी रंग-क्षेत्र में हम काम आ सकेंगे।

भारतेन्दु काल के दौरान भारतीय समाज के इरादे और उद्देश्य कुछ इसी तरह के हुआ करते थे। फिर हम जयशंकर प्रसाद के समय के आस-पास बुरी तरह से भटक गए। भारत और पश्चिम का समन्वयवाद इस भटकन की वह गहरी खाई थी जिसमें गिरने से पहले हम उसका अन्दाज ही नहीं लगा सकते। जब हम आजादी के बाद फिर से अपनी भारतीय यात्रा पर निकले तब भी उसी समन्वयवाद के कारण हमारे पास अपनी रंग दुनिया का कोई खास अनुभव नहीं था। आज मैं अपने आप से प्रश्न करता

हूँ कि क्या हम इसी अनुभवहीनता से रंग पथभ्रष्ट हो गए या कि हमारे सम्पूर्ण जीवन चिन्तन में ही कहीं कोई ऐसा विकास आ गया था जिसे हम समझ ही नहीं पाए, और हम अपने सोच-विचार को प्राचीन नाट्य-शास्त्र व वर्तमान ड्रामा-थियेटर की वास्तविकता से किसी तरह से जोड़ ही नहीं सके। या कि गुलामी की लम्बी रात और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उत्साह-भरे दिनों के बाद अचानक आधुनिकवाद के तूफान में इस तरह पथभ्रष्ट हो जाना ही हमारे लिए स्वाभाविक था? इन प्रश्नों का शायद एक ही उत्तर है कि इस तरह के अस्वाभाविक ऐतिहासिक दौरों के गुजर जाने के बाद किसी भी समाज के लिए दुबारा अपने सहज जीवन को ठीक से पकड़ पाने में कुछ समय लगा ही करता है।

वही समय मेरे जीवन में लगा—थियेटर से अपनी रंगभूमि पर आने में। इसी प्रक्रिया में मुझे भारत और पश्चिम—इनकी विभिन्न नहीं, परस्पर विरोधी सभ्यताओं को समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसी प्रक्रिया से गुजरकर मुझे 'माडर्न थियेटर' और उसमें उपजी सारी प्रस्तुतीकरण कलाएँ, निर्देशन, अभिनय और दर्शकों को एक निश्चित लक्ष्य में बाँध रखने की तकनीक के पीछे की मूल प्रवृत्ति की भी जानकारी मिली। मुझे अनुभव हुआ कि सब चीजों की तरह रंग और नाट्य, उसकी पूरी शिल्प-विधि, तकनीकी और विज्ञान, देश और काल सापेक्ष होते हैं। कोई देश, कोई सभ्यता चाहे जितनी निरपेक्षता की बात क्यों न कहे। यह वास्तविक यथार्थ है कि जिस तरह भारतीय रंगदृष्टि का मूल उद्भव और विकास भारत की विशेष सभ्यता के साथ जुड़ा है, ठीक उसी तरह भारतीय रंगदृष्टि से बिल्कुल अलग, सर्वथा विभिन्न पश्चिम की थियेटर-ड्रामा दृष्टि उनकी अपनी विशेष सभ्यता के साथ जुड़ी है।

अपनी रंगभूमि की जड़ें कहीं गहरी हैं और रंगभूमि के विषय में हमारी जानकारी उतनी ही कम है।

नये सिरे से उसकी जानकारी के साथ-साथ हमें इसके प्रति भारतीय मानस और विवेक को जगाना होगा। पर वह जागरण अपनी रंगभूमि की एक खुशफहमी मात्र से सम्भव नहीं। ऐसी खुशफहमी गांधी ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के दिनों में चरखा, छप्पर, चक्की, कोल्हू, बकरी आदि भारतीय जीवन के अपने उपकरणों से पैदा की थी, और उससे एक बड़े उद्देश्य की पूर्ति हुई थी। पर स्वतन्त्रता मिलते ही अपने उन देशी उपकरणों की कोई गति नहीं रही।

रंगभूमि ऐसी कोई खुशफहमी नहीं। यह आत्मचेतना है जिसे निरन्तर सजगता और सर्जनात्मक स्वतंत्रता से हर क्षण मुक्त होना है। जिसके द्वारा आज हम अपनी जर्जरित संस्कृति के धागों को समेट कर एक मानवीय और स्वतन्त्र विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं, जो हमारी संस्कृति की सनातन और मूल मर्यादाओं में पहले से ही मौजूद है।

नई दिल्ली
18 मई, 1987

—लक्ष्मीनारायण लाल

उर्वशी

पात्र

अर्जुन	:	पाण्डुपुत्र
उर्वशी	:	स्वर्ग की अप्सरा
वृहन्नला	:	उर्वशी से शापित अ
उत्तरा	:	विराट की राजकुमा
चित्रसेन	:	गन्धर्वराज
उत्तर	:	विराट के राजकुमार

भवहीनता से रंग पथभ्रष्ट हो गए या कि हमारे सम्पूर्ण जीवन
ऐसा विकास आ गया था जिसे हम समझ ही नहीं पाए, और
को प्राचीन नाट्य-शास्त्र व वर्तमान ड्रामा-थियेटर की
रह से जोड़ ही नहीं सके। या कि गुलामी की लम्बी रात और
ाह-भरे दिनों के बाद अचानक आधुनिकवाद के तूफान में
ना ही हमारे लिए स्वाभाविक था? इन प्रश्नों का शायद एक
के अस्वाभाविक ऐतिहासिक दौरों के गुजर जाने के बाद किसी
रा अपने सहज जीवन को ठीक से पकड़ पाने में कुछ समय लगा

जीवन में लगा—थियेटर से अपनी रंगभूमि पर आने में। इसी
ौर पश्चिम—इनकी विभिन्न नहीं, परस्पर विरोधी सभ्यताओं
र प्राप्त हुआ। इसी प्रक्रिया से गुजरकर मुझे 'माडर्न थियेटर'
ी प्रस्तुतीकरण कलाएँ, निर्देशन, अभिनय और दर्शकों को एक
रखने की तकनीक के पीछे की मूल प्रवृत्ति की भी जानकारी
ा कि सब चीजों की तरह रंग और नाट्य, उसकी पूरी शिल्प-
ज्ञान, देश और काल सापेक्ष होते हैं। कोई देश, कोई सभ्यता
की बात क्यों न कहे। यह वास्तविक यथार्थ है कि जिस तरह
ल उद्भव और विकास भारत की विशेष सभ्यता के साथ जुड़ा
तीय रंगदृष्टि से बिल्कुल अलग, सर्वथा विभिन्न पश्चिम की
ी अपनी विशेष सभ्यता के साथ जुड़ी है।
की जड़ें कहीं गहरी हैं और रंगभूमि के विषय में हमारी जान-

सकी जानकारी के साथ-साथ हमें इसके प्रति भारतीय मानस
होगा। पर वह जागरण अपनी रंगभूमि की एक खुशफहमी मात्र
वफहमी गांधी ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के दिनों में चरखा, छप्पर,
ादि भारतीय जीवन के अपने उपकरणों से पैदा की थी, और
पूर्ति हुई थी। पर स्वतन्त्रता मिलते ही अपने उन देशी उप-
ों रही।
ई खुशफहमी नहीं। यह आत्मचेतना है जिसे निरन्तर सजगता
ा से हर क्षण मुक्त होना है। जिसके द्वारा आज हम अपनी
को समेट कर एक मानवीय और स्वतन्त्र विकल्प प्रस्तुत कर
ति की सनातन और मूल मर्यादाओं में पहले से ही मौजूद है।

—लक्ष्मीनारायण लाल

उर्वशी

पात्र

अर्जुन	:	पाण्डुपुत्र
उर्वशी	:	स्वर्ग की अप्सरा
वृहन्नला	:	उर्वशी से शापित अर्जुन स्त्री-रूप में
उत्तरा	:	विराट की राजकुमारी
चित्रसेन	:	गन्धर्वराज
उत्तर	:	विराट के राजकुमार

प्रथम दृश्य

युग—द्वापर, स्थान—स्वर्गलोक में इन्द्र का केलिगृह

[रत्नजड़ित ऊँचे सिंहासन पर इन्द्र प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। पार्श्व में देवासन पर मनस्वी अर्जुन बैठे हैं। उनके समीप उनका गाण्डीव, पाशुपतास्त्र रखा हुआ है। संगीत विद्या और सामगान के कुशल गायक तुम्बरु चित्रसेन मनोहर मुद्रा में बैठे हुए हैं। अन्तःकरण और बुद्धि को लुभानेवाली घृताक्षी, मेनका, रंभा, पूर्वाचिति, मिश्रकेशी, दण्डगौरी, चित्रलेखा शृंगारयुक्त मध्य में बैठी हुई हैं। उर्वशी मेनका के साथ इन्द्र के ठीक सामने बैठी है। उर्वशी के वेश-विन्यास एवं प्रसाधन में विशेषता है। मुक्ता-लड़ियों द्वारा विविध प्रकार से गूँथे गए उसके केशों पर पुष्पों के अर्ध-चन्द्र-किरीट शोभायमान हैं। स्निग्धवर्ण ग्रीवा से एक मुक्तावली, और नये स्फुटित मालती कुसुमों की मालाएँ गुलाबी कौशेय पर पीछे झूल रही हैं। निरावरण क्षीणोदर की त्रिवली से कटि की ओर उठता हुआ वर्तुल उभार, कटि पर पीत कौशेय मुक्तावली की मेखला से सँभला हुआ है। कोमल बाहुओं पर मुक्तावली के अंगद वलय हैं। समयानुकूल उर्वशी ने स्वर्णकलश पर आरती सँभाली, मेनका पारिजात के दो हारों को लेकर नृत्य की मुद्रा में पीछे खड़ी हो गई। आरती-नृत्य आरम्भ हो गया। नृत्य-थकित उर्वशी ने पलक-सम्पुट में सौन्दर्य एवं शृंगार की अर्चना लेकर अर्जुन की आरती ली और पारिजात के दोनों हारों को पहनाया। फिर समस्त अप्सराओं का अन्तःपुर द्वार से प्रस्थान।]

इन्द्र : (**देव-सुलभ मुस्कान से, अर्जुन की ओर मुड़कर**) प्रिय अर्जुन ! आज तुम्हें स्वर्ग कैसा लगा ?

अर्जुन : बहुत ही मनोहर देव !

इन्द्र : बहुत ही मनोहर ! कल संध्या समय सुमेरु पर उस नीले प्रस्तर पर गन्धर्वों की मानवी लीला एवं परिहास से भी मनोहर ?

अर्जुन : हाँ देव···।

इन्द्र : इतने मंत्रमुग्ध हो गए कि इसकी शोभा मनोहरता की समता नहीं दे सकते। (**हँसकर**)···मेरा अपना अनुभव है कि इससे कहीं उत्तम तुमने कई बार अप्सराओं के साथ नृत्य किया है। मुझे कितने शृंगार-स्निग्ध नृत्य और उनकी मुद्राएँ याद आ रही हैं।

अर्जुन : पर देव ! मुझे तो ऐसा नहीं याद है, मैं तो अ
विद्यार्थी मात्र था।

इन्द्र : भूल गए ! इतनी देर में भूल गए नन्दन वन क
सघन छाया तले वह मधुमयी क्रीड़ा ! स्मर
उपत्यका में, अपना-उर्वशी का कथाकली नृत्य
तुम्हारी स्वर्ग की उपस्थिति कभी नहीं भूलेगी।

अर्जुन : देव ! इतनी प्रशंसा ?···इस शिष्टाचार से

[इन्द्र मन्दस्मित—अर्जुन नीचे देखते हुए क्षण भ

इन्द्र : अर्जुन ! मैं इसी केलि-गृह में तुम्हारा परम
पिता की आज्ञा न सोच लेना···यह पिता की
विश्वास है इस नृत्य में तुम उर्वशी-समेत समस
करोगे।

अर्जुन : क्षमा देवराज ! अब मुझे निज लोक जाने की
नहीं, सम्पूर्ण मर्त्यलोक मुझे यहाँ से खींच रहा है
पलकें अब मेरी प्रतीक्षा में लगी होंगी।

इन्द्र : (**प्यार से अर्जुन की पीठ पर हाथ फेरकर**) पा
अभी तो स्वर्ग की कुछ निधियों, केलि-विहारों
नहीं मिल सका है, पुत्र ! कुछ काल और रुको

अर्जुन : देव ! स्वर्ग में आजकल मुझे पृथ्वीतल की बहु
छल-कपट का लोक; वह मरने-जीने का संसा
देव ! वस्तुतः जिस कार्य के लिए मैं यहाँ आया
ज्ञान के अतिरिक्त मुझे यहाँ, आपके शब्दों में दे
मिल चुकी।···अब तो कर्मलोक में भेजकर
अमूल्य आशीर्वाद दीजिए।

इन्द्र : यशस्वी ! मेरी मंगल कामनाएँ सदैव तुम्हारे
पुत्र को पाकर, सरलता से विदा देना नहीं चा
लोक···अलकापुरी···पीयूष-कुण्ड की यात्रा क
पड़ी···!

अर्जुन : कौन-सी योजना ?

इन्द्र : हम लोग कल ध्रुवलोक की यात्रा करेंगे—सम
के पहले पृथ्वी से अनन्त की ओर—स्वर्ग से
चलेंगे, अपने नवीन विमान से। आकाश मार्ग मे
लेंगी। देव, किन्नर-गंधर्व उस कौतुक में साथ

अर्जुन : क्षमा देव ! और के लिए क्षमा !! अमरा
बहुत कौतुक रचाए। स्वर्ग के कण-कण ने मुझे

प्रथम दृश्य

पर, **स्थान**—स्वर्गलोक में इन्द्र का केलिगृह

हासन पर इन्द्र प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। पार्श्व में देवासन पर
। उनके समीप उनका गाण्डीव, पाशुपतास्त्र रखा हुआ है।
ामगान के कुशल गायक तुम्बरु चित्रसेन मनोहर मुद्रा में बैठे
और बुद्धि को लुभानेवाली घृताक्षी, मेनका, रंभा, पूर्वाचिति,
, चित्रलेखा शृंगारयुक्त मध्य में बैठी हुई हैं। उर्वशी मेनका के
ामने बैठी है। उर्वशी के वेश-विन्यास एवं प्रसाधन में विशेषता
द्वारा विविध प्रकार से गूँथे गए उसके केशों पर पुष्पों के अर्ध-
मान हैं। स्निग्धवर्ण ग्रीवा से एक मुक्तावली, और नये स्फुटित
ालाएँ गुलाबी कौशेय पर पीछे झूल रही हैं। निरावरण क्षीणोदर
ट की ओर उठता हुआ वर्तुल उभार, कटि पर पीत कौशेय
ा से सँभला हुआ है। कोमल बाहुओं पर मुक्तावली के अंगद
ूल उर्वशी ने स्वर्णकलश पर आरती सँभाली, मेनका पारिजात
र नृत्य की मुद्रा में पीछे खड़ी हो गई। आरती-नृत्य आरम्भ
कित उर्वशी ने पलक-सम्पुट में सौन्दर्य एवं शृंगार की अर्चना
रती ली और पारिजात के दोनों हारों को पहनाया। फिर समस्त
पुर द्वार से प्रस्थान।]

न से, **अर्जुन** की ओर मुड़कर) प्रिय अर्जुन ! आज तुम्हें स्वर्ग

देव !

कल संध्या समय सुमेरु पर उस नीले प्रस्तर पर गन्धर्वों की
रिहास से भी मनोहर ?

गए कि इसकी शोभा मनोहरता की समता नहीं दे सकते।
पना अनुभव है कि इससे कहीं उत्तम तुमने कई बार अप्सराओं
है। मुझे कितने शृंगार-स्निग्ध नृत्य और उनकी मुद्राएँ याद आ

अर्जुन : पर देव ! मुझे तो ऐसा नहीं याद है, मैं तो अभी तक स्वर्ग में, इस कला का एक विद्यार्थी मात्र था।

इन्द्र : भूल गए ! इतनी देर में भूल गए नन्दन वन का रास ! याद नहीं है कल्पवृक्ष की सघन छाया तले वह मधुमयी क्रीड़ा ! स्मरण क्यों नहीं करते, स्वर्ण-मेरु की उपत्यका में, अपना-उर्वशी का कथाकली नृत्य···लास्य नृत्य। अर्जुन ! मुझे तो तुम्हारी स्वर्ग की उपस्थिति कभी नहीं भूलेगी। इसके प्रत्येक क्षण···।

अर्जुन : देव ! इतनी प्रशंसा ?···इस शिष्टाचार से मुझे लजा आ रही है।

[इन्द्र मन्दस्मित—अर्जुन नीचे देखते हुए क्षण भर मौन)

इन्द्र : अर्जुन ! मैं इसी केलि-गृह में तुम्हारा परम नूतन नृत्य देखना चाहता हूँ। इसे पिता की आज्ञा न सोच लेना···यह पिता की इच्छा है इच्छा।···पुत्र ! मुझे विश्वास है इस नृत्य में तुम उर्वशी-समेत समस्त अप्सराओं, गंधर्वों को पराजित करोगे।

अर्जुन : क्षमा देवराज ! अब मुझे निज लोक जाने की आज्ञा दीजिए। पांचाली···नहीं-नहीं, सम्पूर्ण मर्त्यलोक मुझे यहाँ से खींच रहा है। मेरे वनवासी बन्धुओं की उन्मुक्त पलकें अब मेरी प्रतीक्षा में लगी होंगी।

इन्द्र : (**प्यार से अर्जुन की पीठ पर हाथ फेरकर**) पांचाली बहुत याद आ रही है ?··· अभी तो स्वर्ग की कुछ निधियों, केलि-विहारों को देखने तथा सुनने का अवसर ही नहीं मिल सका है, पुत्र ! कुछ काल और रुको···।

अर्जुन : देव ! स्वर्ग में आजकल मुझे पृथ्वीतल की बहुत याद आ रही है—वह कलहपूर्ण, छल-कपट का लोक; वह मरने-जीने का संसार, प्यार-घृणा की दुनिया···। और देव ! वस्तुतः जिस कार्य के लिए मैं यहाँ आया था, अर्थात् समस्त अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञान के अतिरिक्त मुझे यहाँ, आपके शब्दों में देव ! नृत्य-गान की सफल शिक्षा भी मिल चुकी।···अब तो कर्मलोक में भेजकर देव, मेरी सफलता के लिए अपना अमूल्य आशीर्वाद दीजिए।

इन्द्र : यशस्वी ! मेरी मंगल कामनाएँ सदैव तुम्हारे साथ रहेंगी···हाँ, पिता का हृदय पुत्र को पाकर, सरलता से विदा देना नहीं चाहता···अभी तो मैं तुम्हें सप्तऋषि-लोक···अलकापुरी···पीयूष-कुण्ड की यात्रा कराऊँगा···हाँ, सुन्दर योजना याद पड़ी···!

अर्जुन : कौन-सी योजना ?

इन्द्र : हम लोग कल ध्रुवलोक की यात्रा करेंगे—समस्त लोकों से दूर···पृथ्वी पर भेजने के पहले पृथ्वी से अनन्त की ओर—स्वर्ग से भी ऊपर, हम लोग कल ध्रुवलोक चलेंगे, अपने नवीन विमान से। आकाश मार्ग में ही शत-शत उर्वशी तुम्हारी आरती लेंगी। देव, किन्नर-गंधर्व उस कौतुक में साथ दे भाग्यशाली होंगे।

अर्जुन : क्षमा देव ! और के लिए क्षमा !! अमरावती में मैंने बहुत आनन्द किया है, बहुत कौतुक रचाए। स्वर्ग के कण-कण ने मुझे अपूर्व स्थान दिया। देव ! अब

अधिक आनन्द···अधिक भावनाओं में विचरण करने की बेला नहीं। मैं वनवासी हूँ, शत्रु-उपेक्षित हूँ। कठोर कर्म-भूमि···कटु सत्य, अब मुझे यहाँ पल-पल में विह्वल कर देता है।···देव ! अब आज्ञा···!

इन्द्र : महाबाहु ! तुम इन्द्र के पुत्र हो, यथार्थ कर्मलोक को सोचते हुए इसे कदापि न भूलना।···ओह ! स्वर्ग में रहकर चिन्ता के क्षण ? (**बाईं ओर घूमकर**)··· चित्रसेन !

चित्रसेन : (**अभिवादन से**) आज्ञा देव !

इन्द्र : (**दाईं ओर इंगित कर**) नृत्य-कक्ष के मणि और मुक्ता द्वार पर कह दो, रंभा और मेनका अच्छुरित मुद्रा में खड़ी रहें···हम लोग नृत्य-कक्ष में अभी आ रहे हैं।

चित्रसेन : जो आज्ञा देव !

[इन्द्र, अर्जुन का नृत्य-कक्ष में प्रवेश। कक्ष के सामने से तीन उन्मुक्त वातायन जिस पर केशकीय पर्दे एक ओर खिचे हुए हैं। मध्य के वातायन से 'नन्दन वन' बहुत ही समीप प्रतीत हो रहा है। इसके मध्य से स्वर्णमेरु दीप्तमान हो रहा है, जिसकी मनोहर उपत्यका में कल्पवृक्ष का ऊपरी हरित भाग स्पष्ट दिखाई दे रहा है।]

अर्जुन : देव ! इस नृत्य-मंदिर को मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा। शिक्षादात्री उर्वशी ने बहुत ही आत्मीयता से मुझे यहाँ वर्षों तक नृत्य-गान सिखाया है।

इन्द्र : (**हँसकर**)तभी बिना उर्वशी से मिले, गुरुदक्षिणा दिए, अपने लोक जाने की तैयारी कर रहे हो न ! पुत्र ! अन्तिम बार उर्वशी के साथ नृत्य तो कर लो। वह भी तुम्हें बहुत याद करेगी। (**द्वार की ओर मुड़कर पुकारते हुए**)—चित्रसेन !

चित्रसेन : (**प्रवेश कर**) आज्ञा देव !

इन्द्र : उर्वशी को सूचना दो कि नृत्य-कक्ष में अर्जुन अन्तिम बार पधारे हैं।

चित्रसेन : जो आज्ञा, देव !

[चित्रसेन का प्रस्थान]

अर्जुन : देव ! स्वर्ग की भी तुलना किसी लोक से की जा सकती है ?

इन्द्र : क्यों नहीं, सर्वत्र ! सबसे !!···जहाँ दो हृदयों में प्रेम है, वह विशिष्ट प्रदेश-लोक, इस स्वर्ग से कई गुना सुन्दर है। उस प्रेमज्योति में स्वर्ग की समस्त आशा दीपक के समान है।

[सहसा कलामूर्ति उर्वशी कक्ष में नृत्य करने लगती है। क्षण-भर में सम्पूर्ण वातावरण नृत्य की अलौकिक लहरियों एवं ताल-गति से अभिभूत हो गया। केशराशि पर पारिजात पुष्पों की पतली मेखला, मध्य में अर्धचन्द्र-सा स्वर्ण कमल का किरीट। मस्तक, कान, ग्रीवा, बाहुमूल, कलाई अँगुलियाँ—चन्द्रिका, भृंगमूल, कुंडल, हार-अंगद वलय और मुद्रिका से प्रकाशमान थे। कंधे पर अनेक बल खाए झीने उत्तरीय के पीछे मेरुदंड पर कसी हुई कंचुकी वक्ष की ओर उभर आई है। मृणाल बाहुओं से पारिजात कलिका-हार उत्तरी बन्ध पर झूल रहा है। आलक्त रंजित तथा आ गति मानो अंगड़ाई ले रही है। अंग-अंग से ला छूट रहा है। आँखों में मादकता के डोरे···। इन अन्तःपुर चले जाते हैं। उर्वशी अर्जुन को अकेले मुद्रा में गुंफित करके शंकित, दृग खचित भौं से नमस्कार करती हुई।]

उर्वशी : देव ! उर्वशी का आपको नमस्कार।

अर्जुन : (**दाईं ओर देखकर**) अरे ! देव ने कब यहाँ

उर्वशी : अभी, अभी, क्यों ?···आज यहाँ देव की क्य कहना था···दो हृदयों में जहाँ प्रेम होता है, वहाँ है।···कितनी सुन्दर उक्ति है ! देव ! उर्वशी व

अर्जुन : (**शिष्टता से**) देवि ! मैं तुम्हें नतशिर नमस्व

उर्वशी : (**बीच के वातायन से इंगित करती हुई**) मह से देखिए, स्वर्गंगा में कितनी स्वाभाविक गति प्रेरणा है, जीवन है। मेरा नमस्कार स्वीका नहीं !

अर्जुन : नहीं, यह तो अत्यन्त स्वाभाविक है। मैं तुम्हा हूँ।

उर्वशी : क्षमा देव ! अब तक आप मेरे शिष्य थे, चुपके से मृत्युलोक जा रहे थे···देव ! बिना मेर

अर्जुन : नहीं तो देवि ! बिना तुमसे मिले···नहीं, नहीं तुम्हारा ही स्थान है। तुम माता···।

उर्वशी : (**जल्दी से बात काटकर**) क्षमा देव ! कोई की भूखी नहीं, इसे कृपया संसार की अन्य स्त्रियों इन मादक नयनों में मातृत्व की गरिमा !

अर्जुन : क्यों ?

उर्वशी : क्षमा ! आज आप मुझसे अन्तिम बार मिल रखकर मेरे व्यक्तित्व की इतनी उपेक्षा !··· दीजिए। उर्वशी कभी माँ नहीं बन सकती···केव

अर्जुन : इतनी घृणा ! यह कैसे ?···यह नहीं हो सक

उर्वशी : हो सकता है।···कृपया आज, निर्बल धर्म, थो मुझे केवल ऐसे प्रश्नों का उत्तर दीजिए···मेरे नयनों में ? आपको मेरे कारण, अंगहार प्रिय थे

अर्जुन : स्मिते ! इन प्रश्नों को मेरे सामने न रक्खो अंगहार और नृत्य···

धिक भावनाओं में विचरण करने की बेला नहीं। मैं बनवासी
ूँ। कठोर कर्म-भूमि···कटु सत्य, अब मुझे यहाँ पल-पल में
।···देव ! अब आज्ञा···!
न्द्र के पुत्र हो, यथार्थ कर्मलोक को सोचते हुए इसे कदापि न
स्वर्ग में रहकर चिन्ता के क्षण? (**बाईं ओर घूमकर**)···

से) आज्ञा देव !
कर) नृत्य-कक्ष के मणि और मुक्ता द्वार पर कह दो, रंभा
रत मुद्रा में खड़ी रहें···हम लोग नृत्य-कक्ष में अभी आ रहे हैं।
!

त्य-कक्ष में प्रवेश। कक्ष के सामने से तीन उन्मुक्त वातायन जिस
क ओर खिंचे हुए हैं। मध्य के वातायन से 'नन्दन वन' बहुत
ो रहा है। इसके मध्य से स्वर्णमेरु दीप्तमान हो रहा है,
त्यका में कल्पवृक्ष का ऊपरी हरित भाग स्पष्ट दिखाई दे

-मंदिर को मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा। शिक्षादात्री उर्वशी ने
ा से मुझे यहाँ वर्षों तक नृत्य-गान सिखाया है।
ता उर्वशी से मिले, गुरुदक्षिणा दिए, अपने लोक जाने की तैयारी
! अन्तिम बार उर्वशी के साथ नृत्य तो कर लो। वह भी
गी। (**द्वार की ओर मुड़कर पुकारते हुए**)—चित्रसेन !
आज्ञा देव !
दो कि नृत्य-कक्ष में अर्जुन अन्तिम बार पधारे हैं।
!
न]
ी तुलना किसी लोक से की जा सकती है ?
सबसे !!···जहाँ दो हृदयों में प्रेम है, वह विशिष्ट प्रदेश-लोक,
ा सुन्दर है। उस प्रेमज्योति में स्वर्ग की समस्त आशा दीपक के

उर्वशी कक्ष में नृत्य करने लगती है। क्षण-भर में सम्पूर्ण वाता-
किक लहरियों एवं ताल-गति से अभिभूत हो गया। केशराशि
ं की पतली मेखला, मध्य में अर्धचन्द्र-सा स्वर्ण कमल का
न, ग्रीवा, बाहुमूल, कलाई अँगुलियाँ—चन्द्रिका, भृंगमूल,
लय और मुद्रिका से प्रकाशमान थे। कंधे पर अनेक बल खाए
छे मेरुदंड पर कसी हुई कंचुकी वक्ष की ओर उभर आई है।

मृणाल बाहुओं से पारिजात कलिका-हार उत्तरीय पट पर बल खाता हुआ मेखला-बन्ध पर झूल रहा है। आलक्त रंजित तथा आभूषणों से वेष्टित चरणों पर नृत्य-गति मानो अंगड़ाई ले रही है। अंग-अंग से लावण्य की ज्योति, यौवन का स्फुलिंग छूट रहा है। आँखों में मादकता के डोरे···। इन्द्र, अर्जुन से आँखें बचाकर धीरे से अन्तःपुर चले जाते हैं। उर्वशी अर्जुन को अकेले पा नृत्य की समस्त गति को वक्र-मुद्रा में गुंफित करके शंकित, दृग खचित भौं से रुक गई और भाव-भंगिमा में नमस्कार करती हुई।]

उर्वशी : देव ! उर्वशी का आपको नमस्कार।

अर्जुन : (**दाईं ओर देखकर**) अरे ! देव ने कब यहाँ से प्रस्थान कर दिया ?

उर्वशी : अभी, अभी, क्यों ?···आज यहाँ देव की क्या अपेक्षा ?···उन्हें तो केवल यही कहना था···दो हृदयों में जहाँ प्रेम होता है, वहाँ स्वर्ग से भी बढ़कर ज्योति रहती है।···कितनी सुन्दर उक्ति है ! देव ! उर्वशी का नमस्कार स्वीकार···

अर्जुन : (**शिष्टता से**) देवि ! मैं तुम्हें नतशिर नमस्कार करता हूँ।

उर्वशी : (**बीच के वातायन से इंगित करती हुई**) महाबाहो ! स्वर्णमेरु के उत्तुंग शिखर से देखिए, स्वर्गंगा में कितनी स्वाभाविक गति है। समस्त वस्तुओं में स्वाभाविक प्रेरणा है, जीवन है। मेरा नमस्कार स्वीकार···यह स्वाभाविक है···आपका नहीं !

अर्जुन : नहीं, यह तो अत्यन्त स्वाभाविक है। मैं तुम्हारा शिष्य हूँ—मैं अभिवादन करता हूँ।

उर्वशी : क्षमा देव ! अब तक आप मेरे शिष्य थे, आज नहीं···और मैंने सुना है आप चुपके से मृत्युलोक जा रहे थे···देव ! बिना मेरा अपराध बताए !

अर्जुन : नहीं तो देवि ! बिना तुमसे मिले···नहीं, नहीं, अमरावती में माता शची के बाद तुम्हारा ही स्थान है। तुम माता···।

उर्वशी : (**जल्दी से बात काटकर**) क्षमा देव ! कोई अप्सरा विशेष उर्वशी मातृत्व पद की भूखी नहीं, इसे कृपया संसार की अन्य स्त्रियों के लिए सुरक्षित रखिए···देव ! इन मादक नयनों में मातृत्व की गरिमा !

अर्जुन : क्यों ?

उर्वशी : क्षमा ! आज आप मुझसे अन्तिम बार मिल रहे है। मुझे माता शची के बाद रखकर मेरे व्यक्तित्व की इतनी उपेक्षा !···कृपया उर्वशी को अप्सरा रहने दीजिए। उर्वशी कभी माँ नहीं बन सकती···केवल प्रिया। और आज तो···।

अर्जुन : इतनी घृणा ! यह कैसे ?···यह नहीं हो सकता।

उर्वशी : हो सकता है।···कृपया आज, निर्बल धर्म, थोथी नैतिकता की बात रहने दीजिए मुझे केवल ऐसे प्रश्नों का उत्तर दीजिए···मेरे अधरों में अधिक राग थे कि मेरे नयनों में ? आपको मेरे कारण, अंगहार प्रिय थे कि मेरे नृत्य ?

अर्जुन : स्मिते ! इन प्रश्नों को मेरे सामने न रक्खो···देवि ! तुम्हारे पवित्र करण, अंगहार और नृत्य···

उर्वशी : भूल गए महाबाहु ! सत्य कहती हूँ···आज चाहे जो हो, मैं हृदय खोलकर आपके सामने रखूंगी—मेरे स्वस्तिका रचित, भुजंग त्रसित, करुण-मद विलसित, परिवृत्त चित्त, सम्भ्रान्त अंगहार कथकली, गर्बा नृत्य, मेरी ओर से आपके हृदय के कोमलतम प्रवेश में पैठा लेने के लिए स्पष्ट निमंत्रण थे। महाबाहु ··।

अर्जुन : आज, देवि ! तुम किस लोक से बातें कर रही हो ? क्या आज भूल गईं···? मैं तुम्हारे सामने पुत्रवत् अर्जुन···खड़ा हूँ।

उर्वशी : महाबाहु ! मैं दृढ़चेतना की आधार-भूमि पर अपने···नहीं, नहीं आपके नृत्य-कक्ष में खड़ी होकर आपसे बातें कर रही हूँ।···काश, आप मेरे हृदय के वर्षों का मूक निमंत्रण सुनते होते !

अर्जुन : देवि ! आज क्या आसव अधिक पान कर लिया है ? मैं अर्जुन हूँ, अर्जुन—तुम्हारा शिष्य !

उर्वशी : आह ! आसव से कई गुना मादक वह रूप ! जिस मदिरा को वर्षों से घूंट-घूंट पीती आ रही थी; आज आरती-नृत्य में न जाने किस मानिक ने अपने कंपित करों से सम्पूर्ण छलकते हुए घट को मेरे मुख में उड़ेल दिया।···आज मेरी मादक आँखें केवल पहचान रही हैं···अपने देव ! परमदेव !!···स्वामी···

अर्जुन : (**पुकारते हुए**) चित्रसेन ! चित्रसेन !!

[कोई प्रत्युत्तर नहीं]

अर्जुन : (रुककर) द्वार पर कोई है ?

आवाज : (**दाहिनी ओर से**) आज्ञा देव !

उर्वशी : (**चौंककर**) ओह ! यह रंभा का स्वर है ! सावधान रंभा ! तुम इस समय भीतर नहीं आ सकती !···देव ! मैं स्वस्थ हूँ; कहिए, कोई आज्ञा ?

अर्जुन : पर देवि ! आज कैसी बातें कर रही हो ? कभी भी तुमने मुझसे ऐसी बातें नहीं की थीं !

उर्वशी : देव ! बोलते हुए हृदय पर मूक वाणी की अर्गला लगा देना—यही तो नारी का महान् अभिशाप और वरदान दोनों है, महाबाहु ! जिस अमृत घूंट को पीकर मैं वर्षों से घुल रही थी, आज मरणासन्न हो, मिलन के इन अन्तिम क्षणों में वाणी के सहारे प्रकट कर जीवन पाने का प्रयत्न कर रही हूँ।···आह ! स्वर्णमेरु की उपत्यका में आपके साथ मेरा कथकली नृत्य···आह ! कितने मधुर थे कल्पवृक्ष की सघन छाया में वे क्षण। मधुमय अतीत ! तुम्हें शत, शत प्रणाम···।

[भावावेश में फिर अर्जुन की ओर लड़खड़ाती है, अर्जुन सँभालकर फिर द्वार पर आवाज देते हैं।]

अर्जुन : पश्चिम द्वार पर कोई है ?

आवाज : आज्ञा देव !

उर्वशी : (**चौंककर**)···अरे···यह मेनका का स्वर है। सावधान मेनका ! मैं उर्वशी अप्सरा हूँ—इसमें संदेह नहीं; परन्तु द्वार न
महाबाहु की प्रणय-प्रेयसी।···सावधान ! वहीं

अर्जुन : देवि ! आज तुम्हारे इन विक्षिप्त कथनों से
दया करना, मैं वनवासी हूँ।···पाशुपतास्त्र की
बेचारा समझकर इस समय आशीर्वाद दो।···
परम पुनीत पिता-लोक की अप्सरा।

उर्वशी : देव ! एक समय इतनी उक्तियाँ ! मैं वि
इस समय वाणी में बल नहीं है देव ! मेरे लि
महाबाहु ! अपने मधुर कंपन में मेरी कंपित
स्त्रीत्व की सौगन्ध खाकर कहती हूँ, मैं आपसे
देव !

अर्जुन : देवि ! शिष्य से इतनी कठिन परीक्षा उचित
मुझे बल दो। कर्मलोक में जाने के पहले अप
प्रकार से दया-पात्र हूँ।

उर्वशी : अपने देव को कर्मलोक में भेजने के पहले सर्व
से महाबलिष्ठ बना रही हूँ। याद रखिएगा, मेर
एक क्षीण रेखा असंख्य पाशुपतास्त्र, वज्र चक्रा
उर्वशी को अपनी शीतल छाया देकर उसे जी
स्वामी बनिए।

अर्जुन : हे ईश्वर ! मैं आज क्या सुन रहा हूँ ?

उर्वशी : महाबाहु ! जिस आशाबेलि को संतोष के
आज उसे एक बार प्रसून बनकर खिलने दीजिए
की रिक्त मधुकरी देखिए।

अर्जुन : (**बैठकर सिर थाम लेते हैं**) ईश्वर ! आज
कर) उर्वशी, तुम मेरी शिक्षिका ही नहीं, तुम
मेरे पूर्वजों की आदि जननी हो। पवित्र उर्वशी
स्नेह दे···!

उर्वशी : और प्रेम क्यों नहीं ?···देव ! इन अनर्गल
···मैं अपने को भी उसी क्षण···उस प्रथम द
आपकी वह आकृति···मृणालबाहु···उन्नत वक्ष
गहराई में स्थिर, मादकता का सिन्धु···आह !
···मेरे स्वामी ! आज मैं आपकी माँ नहीं, शिक्षि
केवल एक नारी···प्रणय-भिखारिन ! आपसे प्रण

अर्जुन : ·····

उर्वशी : चुप क्यों ?···आह ! एक बार 'हाँ' क्यों नहीं
वाणी का तात्पर्य···देव !···स्वीकार है न !

ाबाहु ! सत्य कहती हूँ···आज चाहे जो हो, मैं हृदय खोलकर
ूँगी—मेरे स्वस्तिका रचित, भुजंग त्रसित, करुण-मद विलसित,
म्भ्रान्त अंगहार कथकली, गर्बा नृत्य, मेरी ओर से आपके हृदय के
में पैठा लेने के लिए स्पष्ट निमंत्रण थे। महाबाहु ··।
तुम किस लोक से बातें कर रही हो ? क्या आज भूल गई···? मैं
वत् अर्जुन···खड़ा हूँ।
दृढ़चेतना की आधार-भूमि पर अपने···नहीं, नहीं आपके नृत्य-
र आपसे बातें कर रही हूँ।···काश, आप मेरे हृदय के वर्षों का
ते होते !
क्या आसव अधिक पान कर लिया है ? मैं अर्जुन हूँ, अर्जुन—

से कई गुना मादक वह रूप ! जिस मदिरा को वर्षों से घूंट-
थी; आज आरती-नृत्य में न जाने किस मानिक ने अपने कंपित
लकते हुए घट को मेरे मुख में उड़ेल दिया।···आज मेरी मादक
न रही है···अपने देव ! परमदेव !!···स्वामी···
चित्रसेन ! चित्रसेन !!

हीं]

पर कोई है ?
ोर से) आज्ञा देव !
ओह ! यह रंभा का स्वर है ! सावधान रंभा ! तुम इस समय
कती !···देव ! मैं स्वस्थ हूँ; कहिए, कोई आज्ञा ?
ज कैसी बातें कर रही हो ? कभी भी तुमने मुझसे ऐसी बातें नहीं

हुए हृदय पर मूक वाणी की अर्गला लगा देना—यही तो नारी
प और वरदान दोनों है, महाबाहु ! जिस अमृत घूंट को पीकर मैं
थी, आज मरणासन्न हो, मिलन के इन अन्तिम क्षणों में वाणी के
ीवन पाने का प्रयत्न कर रही हूँ।···आह ! स्वर्णमेरु की उपत्यका
रा कथकली नृत्य···आह ! कितने मधुर थे कल्पवृक्ष की सघन
मधुमय अतीत ! तुम्हें शत, शत प्रणाम···।

अर्जुन की ओर लड़खड़ाती है, अर्जुन सँभालकर फिर द्वार पर

र कोई है ?

अरे···यह मेनका का स्वर है। सावधान मेनका ! मैं उर्वशी

अप्सरा हूँ—इसमें संदेह नहीं; परन्तु द्वार नर्तकी-परिचारिका नहीं···विश्वविश्रुत महाबाहु की प्रणय-प्रेयसी।···सावधान ! वहीं द्वार पर स्थिर रहना।

अर्जुन : देवि ! आज तुम्हारे इन विक्षिप्त कथनों से मैं काँप रहा हूँ···उर्वशी ! मुझ पर दया करना, मैं बनवासी हूँ।···पाशुपतास्त्र की सौगन्ध···खाकर कहता हूँ तुम मुझे बेचारा समझकर इस समय आशीर्वाद दो।···उर्वशी ! तुम केवल नर्त्तकी नहीं··· परम पुनीत पिता-लोक की अप्सरा।

उर्वशी : देव ! एक समय इतनी उक्तियाँ ! मैं किसका-किसका उत्तर दूं ?···आह ! इस समय वाणी में बल नहीं है देव ! मेरे लिए तो समस्त भूमंडल काँप रहा है। महाबाहु ! अपने मधुर कंपन में मेरी कंपित तरी को सँभालना। देव ! मैं अपने स्त्रीत्व की सौगन्ध खाकर कहती हूँ, मैं आपसे प्रेम करती हूँ, प्रेम। मुझ पर दया··· देव !

अर्जुन : देवि ! शिष्य से इतनी कठिन परीक्षा उचित नहीं। अपनी मंगल कामनाओं से मुझे बल दो। कर्मलोक में जाने के पहले अपना शुभ आशीर्वाद, देवि ! मैं सब प्रकार से दया-पात्र हूँ।

उर्वशी : अपने देव को कर्मलोक में भेजने के पहले सर्वस्व देकर···अमूल्य निधि के उत्सर्ग से महाबलिष्ठ बना रही हूँ। याद रखिएगा, मेरा प्रणय ! नहीं, नहीं, वक्र-भृकुटि की एक क्षीण रेखा असंख्य पाशुपतास्त्र, वज्र चक्रादि को कुंठित करती है। देव ! तप्त उर्वशी को अपनी शीतल छाया देकर उसे जीवन दीजिए और सम्पूर्ण भूतल के स्वामी बनिए।

अर्जुन : हे ईश्वर ! मैं आज क्या सुन रहा हूँ ?

उर्वशी : महाबाहु ! जिस आशाबेलि को संतोष के छींटे से वर्षों से सींचती आ रही हूँ, आज उसे एक बार प्रसून बनकर खिलने दीजिए।···मेरे देव ! प्रणय-भिखारिन की रिक्त मधुकरी देखिए।

अर्जुन : (**बैठकर सिर थाम लेते हैं**) ईश्वर ! आज आप क्या करने जा रहे हैं ? (उठकर) उर्वशी, तुम मेरी शिक्षिका ही नहीं, तुम पुरुवंश की आनन्दमयी माता हो। मेरे पूर्वजों की आदि जननी हो। पवित्र उर्वशी ! मुझे मुक्ति दे···कल्याण दे··· स्नेह दे···!

उर्वशी : और प्रेम क्यों नहीं ?···देव ! इन अनर्गल प्रलापों को मैं उसी क्षण भूल गई। ···मैं अपने को भी उसी क्षण···उस प्रथम दर्शन में भूल गई।···रूपसागर ! आपकी वह आकृति···मृणालबाहु···उन्नत वक्षस्थल···गम्भीर विशाल नयनों की गहराई में स्थिर, मादकता का सिन्धु···आह ! आपकी भरत-नृत्य की अमर मुद्राएँ ···मेरे स्वामी ! आज मैं आपकी माँ नहीं, शिक्षिका नहीं, अप्सरा नहीं, कुछ नहीं; केवल एक नारी···प्रणय-भिखारिन ! आपसे प्रणय-दान माँगती है।

अर्जुन : ·····

उर्वशी : चुप क्यों ?···आह ! एक बार 'हाँ' क्यों नहीं कह देते ?···पर समझी; मूक वाणी का तात्पर्य···देव !···स्वीकार है न !

अर्जुन : (याचना से) क्षमा देवि, क्षमा !

उर्वशी : (गम्भीरता से) तो आप नारी की बार-बार उपेक्षा करेंगे ?

अर्जुन : देवि ! देवि ! !···

उर्वशी : (क्रोध से) अब उर्वशी अन्य बातों के लिए वधिर है ! हो चुके वार्तालाप। मुझे विश्वास था, पत्थर में तरलता होती है।

अर्जुन : रुको देवि !···देवि !

उर्वशी : शरीर के प्रत्येक अणु-अणु से केवल एक प्रेम का अनाहद नाद सुनने वाली, विलम्ब और मृत्यु दोनों एक साथ नहीं चाहती।

अर्जुन : (विह्वल हो हाथ जोड़) ईश्वर ! धर्म-पालक ! मेरी रक्षा आपके हाथ में है; अन्तर्यामी !

उर्वशी : (स्थिर हो कड़े स्वर में) धर्मात्मा !···सुनिए ! ! यदि आपको इन बातों की दुहाई देनी है, तो मुझे विवश हो कहना पड़ रहा है—आज उर्वशी, आपके प्रणय को गुरु-दक्षिणा के रूप में माँगती है···बोलिए, बोलिए। स्वीकार है ? देखिए इधर !—आह ! नारी का प्रणय-सिन्धु अपने पूर्ण शशिदेव को देखकर आज उफन आया है।

अर्जुन : (काँपकर) पृथ्वी ! मुझे शक्ति दे···इस स्वर्ग में धरातल नहीं···कुरुवंश की आदि जननी मेरी विकट परीक्षा ले रही है।···यदि मैंने जीवन भर में कोई पुण्य किया हो···वह मेरा सहायक हो···। देवि ! मैं मृत्यु का आवाहन करता हूँ···मेरी यह परीक्षा न लो. मुझे सुमेरु के उत्तुंग शिखर से गिरा सकती हो, मैं हलाहल पीने को तैयार हूँ। देवि ! संसार में इसके अतिरिक्त अर्जुन द्वारा कोई भी बात हो सकती है···पर क्षमा देवि !···क्षमा !

उर्वशी : (कटुता से) स्वयं कंठ तक हलाहल पिलाकर मुझसे क्षमा माँगते हो ! (घूरने लगती है) हाँ, मरने के पहले, ओह !···हाँ···किन्तु एक प्रश्न करती हूँ स्मरण रखिए, इसी नृत्य-कक्ष में वह पूनम की रात ! मुझे याद है, अपने गर्वा नृत्य में मुझे अंक में भरकर, स्फुट स्वर में आपने क्या कहा था ? समस्त कथाकली नृत्यों में—समस्त रास-रचनाओं के पीछे आपकी ओर से कितना नैतिक समर्थन था !···मुझे यदि लेशमात्र पता होता कि इस ऐश्वर्य-तेज-प्रताप सौन्दर्य से निर्मित व्यक्तित्व में इतनी हृदय-हीनता है, कटुता है, प्रवंचना है; तो उर्वशी का पथ···उर्वशी अप्सरा ···आह ! निर्मम पुरुष !

अर्जुन : किन्तु देवि ! मैं सत्य कहता हूँ—दिशा-विदिशाएँ अपने अधिदेवताओं के साथ मेरी बात सुन लें। जैसे कुन्ती, माद्री, शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी मेरे समस्त शिक्षा-काल में पूजनीय माता-तुल्य थीं। मैं सत्य कहता हूँ, इस पवित्र अंक में तुम्हें भरकर, मैंने मातृत्व-गरिमा का आनन्द लिया था···यौवन की मादकता का नहीं···।

उर्वशी : आह ! यौवन की मादकता !···धर्म का दम्भ भरकर निर्बल पुरुष अपने हृदय पर पत्थर रखता है; स्वयं अपने से चोरी करता है। पर मैं मृत्यु के पहले एक

निःश्वास छोड़कर पूछती हूँ, क्या मुझसे प्रणय स

अर्जुन : क्षमा देवि !

उर्वशी : (क्रोधित स्वर में) यह उपेक्षा ! मैं दग्ध नारी ठुकराई हुई अप्सरा, वंक भृकुटि से समस्त इन्द्रा

अर्जुन : नहीं पूज्या ! मैं पुत्रवत् रक्षणीय हूँ !

उर्वशी : (आँखों में रक्त घोलकर) तो आज समस्त भ गई। प्रथम बार एक पुरुष ने उर्वशी, अप्सरा पराजित किया। पर याद है न, कुचली हुई न आँखों में अब अमृत के स्थान पर केवल विष है, धर्म के पाखंडी ! मर्यादा के दीवाने ! ! नैतिकता के

अर्जुन : क्षमा ! क्षमा !

उर्वशी : (पैर पटककर) छिः पौरुषहीन ! कहाँ तक क्षमा किया ? पर जाओ, स्त्रीत्व के उपेक्षक ! (श नर्त्तकी होकर रहना पड़ेगा···सम्मान-रहित···मु पौरुष का गर्व है···कृपण! उस निधि से विहीन ! जीवन-दान देती है।

[आवेश में उर्वशी का प्रस्थान, शापित अर्जुन मंच प

अर्जुन : आह ! स्वर्ग की विषमय विदाई ! नृत्य-कक्ष में प्र ···आह ! (बाहर कोलाहल···इन्द्र का प्रवेश)

इन्द्र : (अर्जुन को सँभालते हुए) पुत्र ! इतनी चिन्ता क सचमुच कुन्ती पुत्रवती हुई। आज तुमने अपने धैर्य

अर्जुन : देव ! पर उर्वशी का अमिट शाप !

इन्द्र : ···कल्याण पुत्र ! व्रती धर्मात्मा इसकी चिन्ता नहीं तुम तेरहवें वर्ष गुप्तवास करोगे; उस समय तुम्हारी वरदान होगी। वृहन्नला के रूप में तुम अनन्य धर्म पुरुषत्व की प्राप्ति होगी।

अर्जुन (अभिवादन से) देव ! जय हो ! !

द्वितीय दृश्य

स्थान : मर्त्यलोक में मत्स्य देश का विराट् नगर।

[राजकुमारी उत्तरा के भवन में वृहन्नला का शयन-क **दो उन्मुक्त वातायन—जिससे** कमरे में पूर्णमासी के

मा देवि, क्षमा !
) तो आप नारी की बार-बार उपेक्षा करेंगे ?
…
व उर्वशी अन्य बातों के लिए बधिर है ! हो चुके वार्तालाप।
त्थर में तरलता होती है।
देवि !
क अणु-अणु से केवल एक प्रेम का अनाहद नाद सुनने वाली,
दोनों एक साथ नहीं चाहती।
थ जोड़) ईश्वर ! धर्म-पालक ! मेरी रक्षा आपके हाथ में है;

स्वर में) धर्मात्मा ! …सुनिए !! यदि आपको इन बातों की
ुझे विवश हो कहना पड़ रहा है—आज उर्वशी, आपके प्रणय
के रूप में माँगती है…बोलिए, बोलिए। स्वीकार है ? देखिए
नारी का प्रणय-सिन्धु अपने पूर्ण शशिदेव को देखकर आज उफन

ी ! मुझे शक्ति दे…इस स्वर्ग में धरातल नहीं…कुरुवंश की
विकट परीक्षा ले रही है।…यदि मैंने जीवन भर में कोई पुण्य
ा सहायक हो…। देवि ! मैं मृत्यु का आवाहन करता हूँ…मेरी
मुझे सुमेरु के उत्तुंग शिखर से गिरा सकती हो, मैं हलाहल पीने
! संसार में इसके अतिरिक्त अर्जुन द्वारा कोई भी बात हो
मा देवि !…क्षमा !
यं कंठ तक हलाहल पिलाकर मुझसे क्षमा माँगते हो ! (**घूरने**
रने के पहले, ओह !…हाँ…किन्तु एक प्रश्न करती हूँ स्मरण
क्ष में वह पूनम की रात ! मुझे याद है, अपने गर्वा नृत्य में मुझे
ुट स्वर में आपने क्या कहा था ? समस्त कथाकली नृत्यों में—
ओं के पीछे आपकी ओर से कितना नैतिक समर्थन था !…मुझे
होता कि इस ऐश्वर्य-तेज-प्रताप सौन्दर्य से निर्मित व्यक्तित्व में
है, कटुता है, प्रवंचना है; तो उर्वशी का पथ…उर्वशी अप्सरा
ुरुष !
सत्य कहता हूँ—दिशा-विदिशाएँ अपने अधिदेवताओं के साथ
जैसे कुन्ती, माद्री, शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी मेरे
में पूजनीय माता-तुल्य थीं। मैं सत्य कहता हूँ, इस पवित्र अंक
ने मातृत्व-गरिमा का आनन्द लिया था…यौवन की मादकता

की मादकता !…धर्म का दम्भ भरकर निर्बल पुरुष अपने हृदय
है; स्वयं अपने से चोरी करता है। पर मैं मृत्यु के पहले एक

निःश्वास छोड़कर पूछती हूँ, क्या मुझसे प्रणय सम्भव नहीं ?

अर्जुन : क्षमा देवि !

उर्वशी : (**क्रोधित स्वर में**) यह उपेक्षा ! मैं दग्ध नारी हूँ, हृदय में वड़वाग्नि छिपाए। ठुकराई हुई अप्सरा, वंक भृकुटि से समस्त इन्द्रासन हिलाने वाली।

अर्जुन : नहीं पूज्या ! मैं पुत्रवत् रक्षणीय हूँ !

उर्वशी : (**आँखों में रक्त घोलकर**) तो आज समस्त भूमंडल को कँपानेवाली ठुकराई गई। प्रथम बार एक पुरुष ने उर्वशी, अप्सरा और नारी, दोनों को एक साथ पराजित किया। पर याद है न, कुचली हुई नागिन की अंतिम फुफकार ! इन आँखों में अब अमृत के स्थान पर केवल विष है, विष—कहो तो भस्म कर दूँ; धर्म के पाखंडी ! मर्यादा के दीवाने !! नैतिकता के भूखे !!!

अर्जुन : क्षमा ! क्षमा !

उर्वशी : (**पैर पटककर**) छिः पौरुषहीन ! कहाँ तक क्षमा करूँ ?…तुमने मुझे कब क्षमा किया ? पर जाओ, स्त्रीत्व के उपेक्षक ! (**शाप देती हुई**) तुम्हें स्त्रियों में नर्तकी होकर रहना पड़ेगा…सम्मान-रहित…मुझसे अधिक दुःखी। तुम्हें जिस पौरुष का गर्व है…कृपण! उस निधि से विहीन !…छिः ! जाओ…उर्वशी तुम्हें जीवन-दान देती है।

[आवेश में उर्वशी का प्रस्थान, शापित अर्जुन मंच पर विह्वल]

अर्जुन : आह ! स्वर्ग की विषमय विदाई ! नृत्य-कक्ष में प्रारब्ध के साथ अन्तिम नृत्य !! …आह ! (**बाहर कोलाहल…इन्द्र का प्रवेश**)

इन्द्र : (**अर्जुन को सँभालते हुए**) पुत्र ! इतनी चिन्ता क्यों ? तुम्हारे जैसा पुत्र पाकर, सचमुच कुन्ती पुत्रवती हुई। आज तुमने अपने धैर्य से ऋषियों को भी जीता।

अर्जुन : देव ! पर उर्वशी का अमिट शाप !

इन्द्र : …कल्याण पुत्र ! व्रती धर्मात्मा इसकी चिन्ता नहीं करते; पुत्र ! हाँ, जिस समय तुम तेरहवें वर्ष गुप्तवास करोगे; उस समय तुम्हारी यह अपौरुषता तुम्हारे लिए वरदान होगी। वृहन्नला के रूप में तुम अनन्य धर्म का पालन कर सकोगे…फिर पुरुषत्व की प्राप्ति होगी।

अर्जुन (**अभिवादन से**) देव ! जय हो !!

द्वितीय दृश्य

स्थान : मर्त्यलोक में मत्स्य देश का विराट् नगर।

[राजकुमारी उत्तरा के भवन में वृहन्नला का शयन-कक्ष। कमरे में पूर्व दिशा से **दो उन्मुक्त वातायन—जिससे कमरे में पूर्णमासी के चन्द्र की चन्द्रिका फैली है।**

वृहन्नला अपने पर्यंक से वातायन के स्फटिक शिला से सिर को टिकाए हुए उन्मुक्त-पलक चन्द्रमा को देखती हुई।]

वृहन्नला : उर्वशी ! तुम कितनी दूर हो ! पर तुम्हारा शाप···नहीं, नहीं, वरदान मेरे साथ है। सुभ्रु ! तुम्हें संसार अप्सरा कहता है; पर क्या वस्तुतः तुम उसी वर्ग की हो ? नहीं···भावात्मक जगत् की प्रतिमा के लिए, पार्थिव जगत् के बन्धनों से प्रेम क्यों ? भीरु ! तुम अप्सरा नहीं, तुम उस वर्ग की राजमाताओं के रक्त से हो, जो सप्तमहर्षियों के समीप हैं। तुम्हारा शाप···मेरे अज्ञातवास का अमृत पाथेय। मेरा अभिशाप मेरे चरित्र का एकमात्र संबल। उर्वशी ! तुम महान् हो।

[अपनी तन्मयता में शय्या से उठकर दीवार पर उर्वशी का रेखाचित्र बनाती है और खड़ी-खड़ी ज्योत्स्ना में उसे निहारने लगती है।]

···फिर भी कितने मीठे !

[सहसा कमरे में उत्तरा का प्रवेश। वृहन्नला घबड़ाई हुई घूमकर दीवार पर निर्मित चित्र को निश्चेष्ट छिपाए खड़ी हो जाती है। उत्तरा के अंग-अंग से लावण्य की ज्योति। चरणों में अलक्तक और नूपुर। मणि-जड़ित कंचुक पट, उन्नत वक्षस्थल पर पीछे कसा है। कंबुकंठ पर मरकत का हार, अधरों पर ताम्बूल राग, अपांग में नीलांजन की रेखा, घुंघराली वेणी पर महीन उत्तरीय।]

उत्तरा : (**वृहन्नला के समीप जाकर**) सखी ! तुम्हारे चरित्र का यह गूढ़ रहस्य ! (**वृहन्नला को दीवार से हटाती हुई**) मुझे भी देखने दो···यह किसका चित्र है ? (**आश्चर्य से**) अरे ! स्त्री का इतना सुन्दर चित्र !

वृहन्नला : (**बात काटती हुई**) क्यों, क्या बात है, राजकुमारी ? आपको तो कल मेरे बताए हुए 'मदविलसित' और 'आवर्त' आदि मुद्राओं का अभ्यास न करना है ?

उत्तरा : अब अभ्यास तो क्या करूँगी ? मेरा पापी भ्रम। दो-तीन दिनों से संदेह बना है—सखी ! यह संदेह अब तो स्पष्ट हो रहा है—पर दुःख इस बात का है कि भोली-भाली उत्तरा वर्षों तक धोखे में डाली गई। वृहन्नले ! क्या यह तुम्हें उचित था ?

वृहन्नला : (**घबड़ाकर**) क्या है राजकुमारी, मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।

उत्तरा : मेरे भी साथ यही अभिशाप है। मैं भी तुम्हें नहीं समझ पा रही थी···और तुम्हारे द्वारा इस चित्र को अनन्य प्यार करते देख, समझने की बात तो दूर रही वृहन्नले ! मेरा मस्तिष्क चकरा रहा है।···सच, मैं आज तक जो कुछ जानती थी, वह भी भूल गई। केवल यही याद आ रहा है कि वृहन्नला, वृहन्नला नहीं। वह···।

वृहन्नला : अरे ! राजकुमारी को आज क्या हो गया है ? आपको यहाँ नृत्य की कुछ मुद्राओं का अभ्यास करना है।

उत्तरा : उत्तरा अब भुलावे में नहीं पड़ सकती। मैंने आज देखा कि पूर्णिमा की यामिनी में किस प्रकार समुद्र के साथ प्रणय-सिन्धु में भी ज्वा
छिपाया नहीं जाता, उसकी विशालता इतनी है कि

वृहन्नला : कुमारी ! इस निर्जीव रेखा-चित्र को देखकर
मिला है कि कुछ अन्य बात है ?

उत्तरा : यही क्या कम ? वर्षों से नृत्यों में पौरुषता का श
से देखा, वृहन्नला एक युवती की चित्र-प्रतिमा को
श्रवणों से सुने वृहन्नला के प्यार भरे स्फुट वाक्य—
कितने मीठे···।"

वृहन्नला : नहीं कुमारी ! मैं इस चित्र का वैसे अभ्यास
उत्तरा : और एकाकी, उस चित्र को प्यार कर रही थी,
वृहन्नला : नहीं, नहीं देवि ! हम स्त्रियों को किसी स्त्री
उत्तरा : यह तो मुझे पूछना चाहिए···हाँ उत्तर दो, फिर
वृहन्नला :·····

उत्तरा : वृहन्नले ! चुप क्यों ?···संसार की कोई ना
उपासिका नहीं हो सकती। एक नारी का व्यक्तित्व
है, शीतल छाया नहीं। नारी नारी-रूप की अपेक्षा
उपेक्षा करती है।

वृहन्नला : तो क्या राजकुमारी मेरे स्त्रीत्व के सम्बन्ध में
उत्तरा : संदेह तो पहले करती थी···अब तो उत्तरा को नि
पुर में कुमारी उत्तरा के साथ इतना गूढ़ रहस्य चल
सत्य कहती हूँ, मैंने इस संदेह पर रात-रात भर तर्क
का परिणाम यही निकलता था कि मैं प्रातःकाल होते
जैसे प्रकृति और माया।

वृहन्नला : (**घबड़ाहट से**) ऐसा न कहो राजकुमारी ! मु
उत्तरा : ऐसा न कहूँ ? अच्छा लो, दूसरी तरह स्पष्ट क
अब से मैं तुम्हें बाह्य जगत् में शरण नहीं दे सकती
वर्षों से हृदय में रख, छिपाती चली आ रही थी—
स्थूल देवता को अंक में भर लूँ।

वृहन्नला : राजकुमारी ! अपनी शरण में कुछ क्षण और नि
को यह कहकर यहाँ से न निकालो।···यह सब नि
नृत्यों में जब पुरुष बनकर तुम्हारे साथ नृत्य करती रह
करने के नाते, स्वाभाविकता लाने के लिए मैं अपने श
लेती थी।

उत्तरा : मेरी सौगन्ध। एक बात पूछूँ ? (**वृहन्नला के ह
क्या यह हाथ पुरुष के नहीं ?

वृहन्नला : ·····

ने पर्यंक मे वातायन के स्फटिक शिला से सिर को टिकाए हुए उन्मुक्त-
को देखती हुई।]

! तुम कितनी दूर हो ! पर तुम्हारा शाप···नहीं, नहीं, वरदान मेरे
! तुम्हें संसार अप्सरा कहता है; पर क्या वस्तुतः तुम उसी वर्ग की
भावात्मक जगत् की प्रतिमा के लिए, पार्थिव जगत् के बन्धनों से प्रेम
! तुम अप्सरा नहीं, तुम उस वर्ग की राजमाताओं के रक्त से हो, जो
के समीप हैं। तुम्हारा शाप···मेरे अज्ञातवास का अमृत पाथेय।
मेरे चरित्र का एकमात्र संबल। उर्वशी ! तुम महान् हो।

यता में शय्या से उठकर दीवार पर उर्वशी का रेखाचित्र बनाती है
ड़ी ज्योत्स्ना में उसे निहारने लगती है।]

कितने मीठे !

रे में उत्तरा का प्रवेश। वृहन्नला घबड़ाई हुई घूमकर दीवार पर
को निश्चेष्ट छिपाए खड़ी हो जाती है। उत्तरा के अंग-अंग से लावण्य
चरणों में अलक्तक और नूपुर। मणि-जड़ित कंचुक पट, उन्नत
पीछे कसा है। कंबुकंठ पर मरकत का हार, अधरों पर ताम्बूल राग,
लांजन की रेखा, घुंघराली वेणी पर महीन उत्तरीय।]

ा के समीप जाकर) सखी ! तुम्हारे चरित्र का यह गूढ़ रहस्य !
ी दीवार से हटाती हुई) मुझे भी देखने दो···यह किसका चित्र है ?
) अरे ! स्त्री का इतना सुन्दर चित्र !

काटती हुई) क्यों, क्या बात है, राजकुमारी ? आपको तो कल मेरे
दविलसित' और 'आवर्त' आदि मुद्राओं का अभ्यास न करना है ?
ास तो क्या करूँगी ? मेरा पापी भ्रम। दो-तीन दिनों से संदेह बना
यह संदेह अब तो स्पष्ट हो रहा है—पर दुःख इस बात का है कि
उत्तरा वर्षों तक धोखे में डाली गई। वृहन्नले ! क्या यह तुम्हें उचित

ाकर) क्या है राजकुमारी, मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।
साथ यही अभिशाप है। मैं भी तुम्हें नहीं समझ पा रही थी···और
ा इस चित्र को अनन्य प्यार करते देख, समझने की बात तो दूर रही
मेरा मस्तिष्क चकरा रहा है।···सच, मैं आज तक जो कुछ जानती
भूल गई। केवल यही याद आ रहा है कि वृहन्नला, वृहन्नला नहीं।

राजकुमारी को आज क्या हो गया है ? आपको यहाँ नृत्य की कुछ
भ्यास करना है।
ब भुलावे में नहीं पड़ सकती। मैंने आज देखा कि पूर्णिमा की यामिनी

में किस प्रकार समुद्र के साथ प्रणय-सिन्धु में भी ज्वार-भाटा आता है। भीरु ! प्रेम छिपाया नहीं जाता, उसकी विशालता इतनी है कि वह छिप नहीं सकता।

वृहन्नला : कुमारी ! इस निर्जीव रेखा-चित्र को देखकर तुम्हें यह सब कहने का अवसर मिला है कि कुछ अन्य बात है ?

उत्तरा : यही क्या कम ? वर्षों से नृत्यों में पौरुषता का शारीरिक अनुभव···आज आँखों से देखा, वृहन्नला एक युवती की चित्र-प्रतिमा को तन्मयता से प्यार कर रही है। श्रवणों से सुने वृहन्नला के प्यार भरे स्फुट वाक्य—"तुम मेरी रक्षा कर रही हो, कितने मीठे···।"

वृहन्नला : नहीं कुमारी ! मैं इस चित्र का वैसे अभ्यास कर रही थी।

उत्तरा : और एकाकी, उस चित्र को प्यार कर रही थी, कहो न !

वृहन्नला : नहीं, नहीं देवि ! हम स्त्रियों को किसी स्त्री के चित्र से क्या प्रयोजन ?

उत्तरा : यह तो मुझे पूछना चाहिए···हाँ उत्तर दो, फिर तुम ऐसा क्यों कर रही थी ?

वृहन्नला :·····

उत्तरा : वृहन्नले ! चुप क्यों ?···संसार की कोई नारी किसी भी नारी-सौन्दर्य की उपासिका नहीं हो सकती। एक नारी का व्यक्तित्व दूसरी के लिए जेठ की दुपहरी है, शीतल छाया नहीं। नारी नारी-रूप की अपेक्षा नहीं करती, वह सदैव उसकी उपेक्षा करती है।

वृहन्नला : तो क्या राजकुमारी मेरे स्त्रीत्व के सम्बन्ध में संदेह करती हैं ?

उत्तरा : संदेह तो पहले करती थी···अब तो उत्तरा को निश्चित हो गया कि इस अन्तःपुर में कुमारी उत्तरा के साथ इतना गूढ़ रहस्य चल रहा है। वृहन्नले !···मैं आज सत्य कहती हूँ, मैंने इस संदेह पर रात-रात भर तर्क किया है; और समस्त तर्कों का परिणाम यही निकलता था कि मैं प्रातःकाल होते-होते तुमसे मिल जाती थी··· जैसे प्रकृति और माया।

वृहन्नला : (घबड़ाहट से) ऐसा न कहो राजकुमारी ! मुझे शरण दो।

उत्तरा : ऐसा न कहूँ ? अच्छा लो, दूसरी तरह स्पष्ट कह दे रही हूँ कि तुम पुरुष हो। अब से मैं तुम्हें बाह्य जगत् में शरण नहीं दे सकती। तुम्हारी जिस प्रतिमा को वर्षों से हृदय में रख, छिपाती चली आ रही थी—आओ (हाथ बढ़ाकर) अपने स्थूल देवता को अंक में भर लूँ।

वृहन्नला : राजकुमारी ! अपनी शरण में कुछ क्षण और निष्कलंक रहने दो···उपेक्षिता को यह कहकर यहाँ से न निकालो।···यह सब निरर्थक है। मैं पुरुष नहीं; हाँ नृत्यों में जब पुरुष बनकर तुम्हारे साथ नृत्य करती रही, उस समय कला को स्पष्ट करने के नाते, स्वाभाविकता लाने के लिए मैं अपने शरीर को अपेक्षाकृत कड़ा कर लेती थी।

उत्तरा : मेरी सौगन्ध। एक बात पूछूँ ? (वृहन्नला के हाथ को अपने हाथ में लेकर) क्या यह हाथ पुरुष के नहीं ?

वृहन्नला :·····

उत्तरा : हृदय जब हाँ कह देता है, तब बेचारी वाणी मौन हो जाती है। अच्छा, मेरे सर की सौगन्ध, यह चित्र आपने किसका बनाया है ?

बृहन्नला : कुमारी ! मुझे पुरुषवाची शब्दों से संकेत न करो···हाँ मैं बता दे रही हूँ; यह चित्र···स्वर्ग की एक अप्सरा !

उत्तरा : स्वर्ग की अप्सरा !

बृहन्नला : हाँ, उर्वशी का ।

उत्तरा : उफ़ ! वह उर्वशी, जिसने स्वर्ग में अर्जुन को अपौरुषता का शाप दिया था ? कितनी भयानक है वह !···बृहन्नले !···

[बृहन्नला दुश्चिंता में रोती हुई अपने पर्यंक पर मुँह ढँककर लेट जाती है।]

बृहन्नले !! क्या हो गया ? और मैं कुछ नहीं कहूँगी···यह तो पिछले एक वर्ष की बात है; अब तो सम्भवतः अर्जुन अपने गुप्त वास के अन्तिम क्षणों में फिर पौरुषता को प्राप्त करते होंगे···बृहन्नले ! तुम इतनी पंडित, शास्त्री होकर क्या अर्जुन और उर्वशी की कथा नहीं जानती ?

बृहन्नला : (**रुँधे गले से**) सब मालूम है राजकुमारी ! यह प्रसंग हटाइए, मैं···

उत्तरा : (**आश्चर्य से**) तो क्या तुम्हारी अज्ञातवासी···

बृहन्नला : ·····

उत्तरा : कह दो, हाँ, चुप क्यों ?—अब निश्चित हो गया···मूक वाणी कह रही है, देव तुम्हीं हो (**दौड़कर लिपट जाती है**) आह ! मेरे देव ! पर्णकुटी में घर बैठे अपने देव की आरती लूँगी (**भावावेश में**)···गन्धर्वो, स्वर्ग की अप्सराओ ! पुष्प बरसाओ पुष्प ! उत्तरा स्वयंवर रच रही है। उसे मिल गए उसके देवता···आह ! "पलकन पग चूमूँ आज पिया के···।"

बृहन्नला : (**उठकर वेदना से**) कुमारी ! तुम्हें क्या हो गया ? चेतना में आओ, मैं फिर भी तुम्हारा गुरु हूँ।

उत्तरा : आह ! मेरे देवता ! (**अंक में सर रखकर**) मैं अपनी पूर्ण चेतना में हूँ।

[नेपथ्य में तुमुल कोलाहल; दौड़ते हुए मनुष्यों की पुकार—'बचाओ, बचाओ !']

बृहन्नला : (**बढ़ते हुए**) यह क्या राजकुमारी ?

उत्तरा : (**रोककर**) आप यहीं रहिए···मैं अभी आई—मेरी सौगन्ध, आप यहीं मेरे आने की प्रतीक्षा कीजिए।

[उत्तरा का प्रस्थान, कोलाहल धीरे-धीरे क्षीण]

बृहन्नला : (**स्वयं**) बहुत बुरा हुआ—नियति को न जाने क्या स्वीकार है ? कुशल हुआ कि मेरे अज्ञातवास की अवधि बीत चुकी है। (**चित्र के पास जाकर**) उर्वशी ! तूने मेरा कल्याण किया···धर्मनिष्ठ रखा···पवित्र उर्वशी ! तुम्हारा पवित्र शाप !

[दौड़ती हुई उत्तरा का प्रवेश।]

बृहन्नला : (**विस्मय से**) क्या है राजकुमारी ?

उत्तरा : (**बृहन्नला को पकड़कर**) कौरव लोग हम
जा रहे हैं।···अब प्रकट क्यों नहीं हो जाते ?
कुशल सारथी भी हैं, महाबाहु ! इस समय आप
कर राष्ट्र-सम्मान की रक्षा करें।

बृहन्नला : हाँ, मैं सहर्ष इसे स्वीकार करती हूँ···अ

उत्तरा : अब अपने को रहस्य में रखने से क्या लाभ ?

[बृहन्नला का प्रस्थान]

उत्तरा : (**हर्ष में एकाकी**) मेरे देवता ! कौरवों
परिचारिकाओ ! सजाओ आरती···स्वर्णक
अगरु···कस्तूरी और भर दो। अभी-अभी वि
करनी है। सजा दो सम्पूर्ण राजमहल···राज
आनन्द मनाए। आह ! अभी अपने देव के
दिशाओं की भाँति फैल जाओ, और उत्तर पथ,
रथियों···भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप आदि से आत्र
अपने में कस लो।

[नेपथ्य में विजयनाद ! 'अर्जुन की जय',
कुमार उत्तर के साथ अर्जुन, बृहन्नला का प्रवेश

बृहन्नला : (**हाथ उठाकर**) पुत्री ! तुम्हारी आज्ञा

उत्तर : (**हर्ष में**) बहन उत्तरा ! तुम्हें ज्ञात है ?···

उत्तरा : (**संकोच से**) भैया ! मुझे पहले से ज्ञात है
लाओ। (**सखियाँ आरती-जयमाल लाती हैं। अ**

उत्तरा : (**जयमाल लिए हुए**) देव ! स्वीकार हो।

उत्तर : हाँ देव !

बृहन्नला : देवि ! तुम्हें मैंने शिक्षा दी है···तुम मेरी
(उत्तरा पर मानो वज्रपात हुआ, मूर्च्छित हो गिर

उत्तर : ऐसा न करिए देव !

अर्जुन : (**उत्तरा को सँभालते हुए**) बेटी ! घबड़ाओ
कन्यारूप में अपनाता हूँ। अभिमन्यु तुम्हारा उ
(**नेपथ्य में हर्षनाद···जय-जयकार**)

अर्जुन : बेटी उर्वशी के चित्र को आरती लो···।
(**उत्तरा आरती लेती है**)

अर्जुन : उर्वशी ! तुम्हारा शाप मेरे अज्ञातवास का
कुटिल भौं···काँपते हुए ओंठ से निकले हुए शाप
सका। उर्वशी, तुम पवित्र···उर्वशी ! उर्वशी !

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है

हाँ कह देता है, तब बेचारी वाणी मौन हो जाती है। अच्छा, मेरे
ध, यह चित्र आपने किसका बनाया है ?
! मुझे पुरुषवाची शब्दों से संकेत न करो···हाँ मैं बता दे रही हूँ;
वर्ग की एक अप्सरा !
अप्सरा !
शी का।
ह उर्वशी, जिसने स्वर्ग में अर्जुन को अपौरुषता का शाप दिया था ?
नक है वह !···वृहन्नले !···

श्चिता में रोती हुई अपने पर्यंक पर मुँह ढँककर लेट जाती है।]

क्या हो गया ? और मैं कुछ नहीं कहूँगी···यह तो पिछले एक वर्ष
;अब तो सम्भवतः अर्जुन अपने गुप्त वास के अन्तिम क्षणों में फिर
प्राप्त करते होंगे···वृहन्नले ! तुम इतनी पंडित, शास्त्री होकर क्या
उर्वशी की कथा नहीं जानती ?
गले से) सब मालूम है राजकुमारी ! यह प्रसंग हटाइए, मैं···
से) तो क्या तुम्हारी अज्ञातवासी···

हाँ, चुप क्यों ? —अब निश्चित हो गया···मूक वाणी कह रही है, देव
ड़कर लिपट जाती है) आह ! मेरे देव ! पर्णकुटी में घर बैठे अपने
रती लूंगी (भावावेश में)···गन्धर्वो, स्वर्ग की अप्सराओ ! पुष्प
न ! उत्तरा स्वयंवर रच रही है। उसे मिल गए उसके देवता···आह !
चूमूं आज पिया के···।"
र वेदना से) कुमारी ! तुम्हें क्या हो गया ? चेतना में आओ, मैं
रा गुरु हूँ।
रे देवता ! (अंक में सर रखकर) मैं अपनी पूर्ण चेतना में हूँ।

मुल कोलाहल; दौड़ते हुए मनुष्यों की पुकार—'बचाओ, बचाओ !']

हुए) यह क्या राजकुमारी ?
) आप यहीं रहिए···मैं अभी आई—मेरी सौगन्ध, आप यहीं मेरे
क्षा कीजिए।

स्थान, कोलाहल धीरे-धीरे क्षीण]

) बहुत बुरा हुआ—नियति को न जाने क्या स्वीकार है ? कुशल हुआ
वास की अवधि बीत चुकी है। (**चित्र के पास जाकर**) उर्वशी ! तूने
किया···धर्मनिष्ठ रक्खा···पवित्र उर्वशी ! तुम्हारा पवित्र शाप !

उत्तरा का प्रवेश।]

वृहन्नला : (**विस्मय से**) क्या है राजकुमारी ?

उत्तरा : (**वृहन्नला को पकड़कर**) कौरव लोग हमारे राष्ट्र की समस्त गौओं को लिए जा रहे हैं।···अब प्रकट क्यों नहीं हो जाते ? सैरन्ध्री ने बताया है कि आप बहुत कुशल सारथी भी हैं, महाबाहु ! इस समय आप मेरे भाई उत्तर का सारथ्य स्वीकार कर राष्ट्र-सम्मान की रक्षा करें।

वृहन्नला : हाँ, मैं सहर्ष इसे स्वीकार करती हूँ···और यथा शक्ति···।

उत्तरा : अब अपने को रहस्य में रखने से क्या लाभ ? देव ! जाइए···मेरी मंगल-कामना।
[वृहन्नला का प्रस्थान]

उत्तरा : (**हर्ष में एकाकी**) मेरे देवता ! कौरवों को पराजित करके अभी आएँगे··· परिचारिकाओ ! सजाओ आरती···स्वर्णकलश पर सखियो ! धूम्रभाजन में अगरु···कस्तूरी और भर दो। अभी-अभी विजयी देव की पलक सम्पुट से अर्चना करनी है। सजा दो सम्पूर्ण राजमहल···राजाज्ञा दो कि समस्त विराट् नगरी आनन्द मनाए। आह ! अभी अपने देव के गले जयमाल डालूंगी। बाहुओ ! दिशाओं की भाँति फैल जाओ, और उत्तर पथ, हस्तिनापुर की ओर कौरव महा-रथियों···भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप आदि से आक्रमण-प्रत्याक्रमण करते हुए देव को अपने में कस लो।

[नेपथ्य में विजयनाद ! 'अर्जुन की जय', 'पांडुपुत्र की जय' का तुमल स्वर—कुमार उत्तर के साथ अर्जुन, वृहन्नला का प्रवेश]

वृहन्नला : (**हाथ उठाकर**) पुत्री ! तुम्हारी आज्ञा का पालन हुआ !

उत्तर : (**हर्ष में**) बहन उत्तरा ! तुम्हें ज्ञात है ?···ये महाबाहु अर्जुन हैं।

उत्तरा : (**संकोच से**) भैया ! मुझे पहले से ज्ञात है। सखियों···आरती···जयमाल··· लाओ। (**सखियाँ आरती-जयमाल लाती हैं। आरती होती है**)

उत्तरा : (**जयमाल लिए हुए**) देव ! स्वीकार हो।

उत्तर : हाँ देव !

वृहन्नला : देवि ! तुम्हें मैंने शिक्षा दी है···तुम मेरी पुत्री के समान हो।
(उत्तरा पर मानो वज्रपात हुआ, मूर्च्छित हो गिरना चाहती है, अर्जुन सँभालते हैं।)

उत्तर : ऐसा न करिए देव !

अर्जुन : (**उत्तरा को सँभालते हुए**) बेटी ! घबड़ाओ नहीं। तुम पवित्र हो···मैं तुम्हें कन्यारूप में अपनाता हूँ। अभिमन्यु तुम्हारा उचित वर है। पुत्री ! कल्याण !
(**नेपथ्य में हर्षनाद···जय-जयकार**)

अर्जुन : बेटी उर्वशी के चित्र को आरती लो···।
(**उत्तरा आरती लेती है**)

अर्जुन : उर्वशी ! तुम्हारा शाप मेरे अज्ञातवास का अमृत पाथेय।···उर्वशी, तुम्हारी कुटिल भौं···काँपते हुए ओंठ से निकले हुए शाप से···अपने को चरित्रनिष्ठ रख सका। उर्वशी, तुम पवित्र···उर्वशी ! उर्वशी ! !···उ···र्व···शी···

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

महाकाल का मन्दिर

पात्र

पुष्यमित्र	:	मगध का सम्राट्
वसुमित्र	:	युवक
चित्रा	:	नर्त्तकी
ब्रह्मचारी	:	महाकाल के मन्दिर का पुजारी
अन्य	:	प्रादेशिक, अंगरक्षक, महादण्ड नायक, सुरा और ताम्बूल वाहिनी।

काल : ई० पू० 15

स्थान : उज्जयिनी

[महाकाल के विशाल मन्दिर का मंडप। कुछ यु
अलग बैठे हैं। सम्पूर्ण मंडप अपूर्व ढंग से सजाय
पुष्यराज के गजरे झूल रहे हैं। स्वर्ण के दीपाधारों
धूपदानों में कस्तूरी और अगरु से मिली हुई गन्
सामने ऊँची देहली पर अलौकिक शृंगार से भूषित
सामने सहस्र बत्तियों की जलती हुई आरती। सम
मुक्तकेश ब्रह्मचारी; जिसकी आँखों में रजोगुणी
भाग खाली है; और बीच में स्वर्णकलश पर सुरा
छोटे-छोटे सुरा पात्र। सहसा पृष्ठभूमि में मृदं
छिड़ती है और एक नर्त्तकी अपूर्व शृंगार में, एक
प्रवेश करती है, तथा महाकाल की प्रतिमा के सा
हो मूर्ति को अपलक देखने लगती है। फिर भावा
नर्त्तकी आरती करने लगती है। सारा मंडप उ
तरंगित हो उठता है। नर्त्तकी, फिर महाकाल के
तथा बीच में खड़ी होकर, समस्त दर्शकों को देखक
देती है]

ब्रह्मचारी : (**मादक मुस्कान से**) देवी !···महाका
करो !···

[नर्त्तकी उसे देखती हुई चुप खड़ी रहती है]

ब्रह्मचारी : (**मुस्करा के**) ओह ! समझी नहीं,···अच्छा
हुए सुरा कुम्भ को कालेश्वर को भेंट कर दो···।

[नर्त्तकी स्वर्ण कलश से सुरा कुम्भ को उठाकर का

नर्त्तकी : (**ब्रह्मचारी को देखकर**) ठीक है प्रभू ?

ब्रह्मचारी : ठीक है !···पर अब यह प्रसाद हम लोगों
को देखकर) युवक दर्शको ! तुम सब इस प्रसाद

महाकाल का मन्दिर

पात्र

पुष्यमित्र	:	मगध का सम्राट्
वसुमित्र	:	युवक
चित्रा	:	नर्त्तकी
ब्रह्मचारी	:	महाकाल के मन्दिर का पुजारी
अन्य	:	प्रादेशिक, अंगरक्षक, महादण्ड नायक, सुरा और ताम्बूल वाहिनी।

काल : ई० पू० 150

स्थान : उज्जयिनी

[महाकाल के विशाल मन्दिर का मंडप। कुछ युवक दर्शक प्रसन्न मुद्रा में अलग-अलग बैठे हैं। सम्पूर्ण मंडप अपूर्व ढंग से सजाया गया है—विशाल स्तम्भों से पुष्यराज के गजरे झूल रहे हैं। स्वर्ण के दीपाधारों में सुगन्धित तेलों के दीप। सर्वत्र धूपदानों में कस्तूरी और अगरु से मिली हुई गन्ध, मंडप भर में फैल रही है। सामने ऊँची देहली पर अलौकिक शृंगार से भूषित महाकाल की विशाल मूर्ति। उसके सामने सहस्र बत्तियों की जलती हुई आरती। सम्मुख उसे देखता हुआ एक युवक मुक्तकेश ब्रह्मचारी; जिसकी आँखों में रजोगुणी तेज और बल। मंडप का चौकोर भाग खाली है; और बीच में स्वर्णकलश पर सुरा कुम्भ और इसके किनारे-किनारे छोटे-छोटे सुरा पात्र। सहसा पृष्ठभूमि में मृदंग और वीणा की शृंगारिक तान छिड़ती है और एक नर्त्तकी अपूर्व शृंगार में, एक ओर से नृत्य करती हुई मंडप में प्रवेश करती है, तथा महाकाल की प्रतिमा के सामने आकर लास्य मुद्रा में खड़ी हो मूर्ति को अपलक देखने लगती है। फिर भावाभिनय, संगीत और नृत्य के साथ, नर्त्तकी आरती करने लगती है। सारा मंडप उसकी कमनीयता, नृत्य-ताल में तरंगित हो उठता है। नर्त्तकी, फिर महाकाल के समीप पुष्पाञ्जलि बिखेरती है तथा बीच में खड़ी होकर, समस्त दर्शकों को देखकर, ब्रह्मचारी के सामने मुस्करा देती है]

ब्रह्मचारी : (**मादक मुस्कान से**) देवी !···महाकाल की पिपासा की भी तृप्ति करो !···

[नर्तकी उसे देखती हुई चुप खड़ी रहती है]

ब्रह्मचारी : (**मुस्करा के**) ओह ! समझी नहीं,···अच्छा सुनो, इस स्वर्ण कलश पर रक्खे हुए सुरा कुम्भ को कालेश्वर को भेंट कर दो···।

[नर्त्तकी स्वर्ण कलश से सुरा कुम्भ को उठाकर कालेश्वर के सामने रख देती है।]

नर्त्तकी : (**ब्रह्मचारी को देखकर**) ठीक है प्रभू ?

ब्रह्मचारी : ठीक है !···पर अब यह प्रसाद हम लोगों को मिलना चाहिए। (**दर्शकों को देखकर**) युवक दर्शको ! तुम सब इस प्रसाद की अपेक्षा करते हो न ?

[सब युवक दर्शक हाँ-हाँ करते हैं—केवल एक युवक जो अभी तक अपूर्व गंभीरता से बैठा था, खड़ा हो जाता है।]

ब्रह्मचारी : (आश्चर्य से) क्या है युवक ?

युवक : (गंभीरता से) मैं मन्दिर में महाकाल की पूजा देखने आया था, सुरा पीने नहीं।

ब्रह्मचारी (व्यंग्य से हँसकर) नादान !···महाकाल की पूजा ही का तो यह विशेष अंग है ! (प्रश्न से) तुम्हें प्रसाद नहीं चाहिए।

युवक : (बैठता हुआ) जो चाहिए, वह ले लूंगा···और क्षमा !

ब्रह्मचारी : (हँसकर) अच्छा,···नर्त्तकी···इन सुरा रात्रों में और युवकों को···प्रसाद दे दो।

[नर्त्तकी सुरा कुम्भ से पात्रों में मदिरा ढालती हुई युवकों और ब्रह्मचारी को पिलाती है और सब झूम उठते हैं]

ब्रह्मचारी : (मादक वाणी से) अब नृत्य करो, और अपनी कला से सब झूमने वालों को सुला दो !

[नर्त्तकी नृत्य करने लगती है, मंडप फिर अलौकिक संगीत से अभिभूत हो जाता है। सहसा पुष्यमित्र का दो अंग-रक्षकों के साथ धीरे से प्रवेश।]

पुष्यमित्र : (डाँटकर) बन्द करो इस निन्दनीय प्रदर्शन को।
ओह ! देव मन्दिर में यह विलास !

[क्षण भर के लिए सब शान्त होकर पुष्यमित्र को देखने लगते हैं]

पुष्यमित्र : (क्रोध से) देखते क्या हो ?···अंगरक्षको ! बंदी कर लो इन्हें !

ब्रह्मचारी : (तमतमा कर) शान्त !···कौन है···तू ?···पागल !
(चित्रा से) चित्रा तूने क्यों नृत्य बन्द कर दिया ?···मैं इस अपरिचित से अभी निपट लेता हूँ !···तू नृत्य कर !

[ब्रह्मचारी खड़ा हो जाता है; चित्रा के नूपुरों की झंकार ज्यों ही आरम्भ होती है।]

पुष्यमित्र : (कड़ककर) सावधान नर्त्तकी !···स्थिर···वहीं स्थिर रहना।

ब्रह्मचारी : (बढ़कर) क्यों ?···नृत्य बंद कराने वाले तुम कौन ?

पुष्यमित्र : (आश्चर्य से) मैं···?···मुझसे पूछ रहा है,···ओह !···मौर्य्य साम्राज्य के कुमारामात्य के दिए हुए टुकड़ों पर पल कर···कुमारामात्य ही को नहीं पहचान रहा है !

ब्रह्मचारी : (आश्चर्य से) कुमारामात्य !

पुष्यमित्र : हूँ !···मैं मौर्य्य साम्राज्य का कुमारामात्य हूँ।

[सब युवक दर्शक भयभीत एक दूसरे को
केवल एक युवक वसुमित्र जिसने मदिरा ना
है]

ब्रह्मचारी : (आश्चर्य से) मौर्य्य साम्राज्य के
प्रमाण ? मुझे प्रमाण चाहिए !

पुष्यमित्र : (गंभीरता से) प्रमाण ! (चारों
चाहिए ?···यह देखो भुजाओं पर बाजूबन्द
का चिह्न देखो ! (रुककर) अंगरक्षको !
से इसका मस्तक फोड़ दो, (गिरी हुई वा
प्रमाणों को चुभा दो, इसकी रत्नारी आँखें

[अंगरक्षक ब्रह्मचारी की ओर बढ़ते हैं]

ब्रह्मचारी : शान्त !···अंगरक्षको···इधर बढ़न
पुजारी हूँ···यहाँ मेरा शासन है !

पुष्यमित्र : कभी नहीं !···धर्मशासन राज्यशासन
है ! तुझे दंड मिलना चाहिए !

ब्रह्मचारी : दंड देने की बात, राज्यदरबार में हु
है,···मैं यहाँ का स्वच्छन्द पुजारी हूँ।···य
हुई नर्त्तकी को कोई कुमारामात्य नहीं रोक

पुष्यमित्र : मैं रोक सकता हूँ···और मैंने रोक
विलासिता का प्रचार नहीं देख सकता !···
नर्त्तकी को नहीं देख सकता !

[नर्त्तकी सर झुकाकर खड़ी रहती है]

ब्रह्मचारी : अपने अन्तःपुर में देख सकते हो !

पुष्यमित्र : सावधान ! अपनी सीमा में रह कर
चिन्ता करनी है !

ब्रह्मचारी : (व्यंग्य से मुस्कराकर) ओह ! मैं
चिन्ता करो···अपनी···जो राजधानी को
दौड़ते फिरते हो।

पुष्यमित्र : (डाँटकर) शान्त !···तू बहुत बड़ा

ब्रह्मचारी (मस्ती से) वाचाल !···अपनी चेतना
करो !···यह देवमन्दिर है और मैं महाकाले

पुष्यमित्र : अंगरक्षक !

अंगरक्षक : महाराज !···आज्ञा···।

पुष्यमित्र : (उन्हें देखकर) कहाँ है उज्जैनी का प्र

ोंक हाँ-हाँ करते हैं—केवल एक युवक जो अभी तक अपूर्व गंभीरता
ड़ा हो जाता है।]

र्य से) क्या है युवक ?

) मैं मन्दिर में महाकाल की पूजा देखने आया था, सुरा पीने

हँसकर) नादान !···महाकाल की पूजा ही का तो यह विशेष अंग
तुम्हें प्रसाद नहीं चाहिए।

) जो चाहिए, वह ले लूंगा···और क्षमा !

) अच्छा,···नर्त्तकी···इन सुरा पात्रों में और युवकों को···प्रसाद

कुम्भ से पात्रों में मदिरा ढालती हुई युवकों और ब्रह्मचारी को
सब झूम उठते हैं]

वाणी से) अब नृत्य करो, और अपनी कला से सब झूमने वालों को

रने लगती है, मंडप फिर अलौकिक संगीत से अभिभूत हो जाता
मित्र का दो अंग-रक्षकों के साथ धीरे से प्रवेश।]

) बन्द करो इस निन्दनीय प्रदर्शन को !
दर में यह विलास !

ए सब शान्त होकर पुष्यमित्र को देखने लगते हैं]

देखते क्या हो ?···अंगरक्षको ! बंदी कर लो इन्हें !
कर) शान्त !···कौन है···तू ?···पागल !
ा तूने क्यों नृत्य बन्द कर दिया ?···मैं इस अपरिचित से अभी
···तू नृत्य कर !

हो जाता है; चित्रा के नूपुरों की झंकार ज्यों ही आरम्भ होती

सावधान नर्त्तकी !···स्थिर···वहीं स्थिर रहना।
क्यों ?···नृत्य बंद कराने वाले तुम कौन ?
) मैं···?···मुझसे पूछ रहा है,···ओह !···मौर्य्य साम्राज्य के
ए हुए टुकड़ों पर पल कर···कुमारामात्य ही को नहीं पहचान

से) कुमारामात्य !
मौर्य्य साम्राज्य का कुमारामात्य हूँ।

[सब युवक दर्शक भयभीत एक दूसरे को देखते हुए धीरे-धीरे प्रस्थान करते हैं, केवल एक युवक वसुमित्र जिसने मदिरा नहीं पी थी; गंभीरता से बैठा रह जाता है]

ब्रह्मचारी : (**आश्चर्य से**) मौर्य्य साम्राज्य के कुमारामात्य ?···परन्तु कहाँ इसका प्रमाण ? मुझे प्रमाण चाहिए !

पुष्यमित्र : (**गंभीरता से**) प्रमाण ! (**चारों ओर देखकर**) कितना प्रमाण तुझे चाहिए ?···यह देखो भुजाओं पर बाजूबन्द, राजमुकुट के किरीट में यह साम्राज्य का चिह्न देखो ! (**रुककर**) अंगरक्षको !···दिखाओ इसे मेरे खड्ग, स्वर्ण दण्ड से इसका मस्तक फोड़ दो, (**गिरी हुई वाणी से**) प्रमाण माँगने वाला।···सब प्रमाणों को चुभा दो, इसकी रतनारी आँखों में !

[अंगरक्षक ब्रह्मचारी की ओर बढ़ते हैं]

ब्रह्मचारी : शान्त !···अंगरक्षको···इधर बढ़ना नहीं, मैं भी महाकाल के मन्दिर का पुजारी हूँ···यहाँ मेरा शासन है !

पुष्यमित्र : कभी नहीं !···धर्मशासन राज्यशासन के अन्तर्गत है !···और तू अपराधी है ! तुझे दंड मिलना चाहिए !

ब्रह्मचारी : दंड देने की बात, राज्यदरबार में हुआ करती है, यह महाकाल का मन्दिर है,···मैं यहाँ का स्वच्छन्द पुजारी हूँ।···यहाँ महाकाल की स्तुति में नृत्य करती हुई नर्त्तकी को कोई कुमारामात्य नहीं रोक सकता !

पुष्यमित्र : मैं रोक सकता हूँ···और मैंने रोक भी दिया क्योंकि मैं धर्म के नाम पर विलासिता का प्रचार नहीं देख सकता !···मैं महाकाल के सामने इस अप्सरा-सी नर्त्तकी को नहीं देख सकता !

[नर्त्तकी सर झुकाकर खड़ी रहती है]

ब्रह्मचारी : अपने अन्तःपुर में देख सकते हो !

पुष्यमित्र : सावधान ! अपनी सीमा में रह कर बातें करो !···तुझे अपने कल्याण की चिन्ता करनी है !

ब्रह्मचारी : (**व्यंग्य से मुस्कराकर**) ओह ! मैं और कल्याण की चिन्ता !···तुम अपनी चिन्ता करो···अपनी···जो राजधानी को छोड़कर इधर-उधर नर्तकियों के पीछे दौड़ते फिरते हो।

पुष्यमित्र : (**डाँटकर**) शान्त !···तू बहुत बड़ा वाचाल दीख पड़ रहा है !

ब्रह्मचारी (**मस्ती से**) वाचाल !···अपनी चेतना और विवेक का सहारा लेकर बातें करो !···यह देवमन्दिर है और मैं महाकालेश्वर का पुजारी हूँ !

पुष्यमित्र : अंगरक्षक !

अंगरक्षक : महाराज !···आज्ञा···।

पुष्यमित्र : (**उन्हें देखकर**) कहाँ है उज्जैनी का प्रादेशिक ?

अंगरक्षक : प्रादेशिक !

पुष्यमित्र : (बिगड़कर) हाँ, हाँ, प्रादेशिक ! उसे मेरे यहाँ आने की शीघ्र सूचना दो !

अंगरक्षक : (घबड़ाकर) देव !···इधर आने से पूर्व ही मैंने उनका पता लगाया, लेकिन राजसचिव से सूचना मिली कि प्रादेशिक का कहीं पता नहीं !

ब्रह्मचारी : (व्यंग्य से) प्रादेशिक को क्या करोगे ?···वह कर ही क्या सकता है ?

पुष्यमित्र : (पैर पटककर) सावधान !···तू दंडनीय है, इसलिए मैं प्रादेशिक को पूछ रहा हूँ। और अंगरक्षक ! यह नर्त्तकी भी बंदी बनायी जायेगी।

चित्रा : मैं बहुत प्रसन्न हूँ देव !···यदि ऐसी बात हो···तो आज्ञा दीजिए···मैं उज्जैनी के प्रादेशिक को सूचना दे दूँ।

पुष्यमित्र : हाँ, हाँ···शीघ्र बताओ।

चित्रा : उज्जैनी के विश्राम-गृह में राजनर्त्तकी से संगीत सुन रहे हैं।

पुष्यमित्र : (आश्चर्य से) ओह ! मणिकान्ता के साथ ? (ऊँचे स्वर में) अंगरक्षक !

अंगरक्षक : आज्ञा देव !

पुष्यमित्र : शीघ्र जाओ···और उज्जैनी के विश्राम-गृह से प्रादेशिक को यहाँ आने की शीघ्र सूचना दो !

अंगरक्षक : (जाता हुआ) जो आज्ञा !

ब्रह्मचारी : (व्यंग्य से) हूँ···और आप यहाँ महाकाल के मन्दिर में अपने प्रादेशिक को ढूंढ़ रहे थे···शासन के इन रेंगते हुए कीड़ों के पीछे क्यों नहीं घूमते···?

पुष्यमित्र : तुम्हारे कहने का अभिप्राय क्या है ?

ब्रह्मचारी : सुनना चाहते हो; सुनो···महाकालेश्वर के पुजारी और मगध के शासक में कोई संबंध नहीं। तुम्हारा शासन-चक्र, तुम्हारी राजनीति के लिए है; धर्म के लिए नहीं। इन मन्दिरों में तुम्हारे आने की क्या आवश्यकता ?···फिर तो यहाँ महाकालेश्वर की आरती हो रही थी,···नर्त्तकी···।

पुष्यमित्र : (बीच ही में, क्रोध से बढ़कर, सुरा कुंभ और पात्रों को पैर से ठोकर मारता हुआ) यही है तुम्हारी पूजा···यही है तुम्हारी धार्मिकता, नीच !···तू अपनी मदिर आँखों को देख ! वे क्या कह रही हैं ?···तू पुजारी है···या···

ब्रह्मचारी : (कड़ककर) शान्त !···मेरी आँखें कह रही हैं कि तू इसकी ज्वाला से भस्म होना चाहता है···और यदि क्षमता हो तो···इस समय महाकालेश्वर की उन तपती हुई आँखों को देख···! और भस्म हो जा !

पुष्यमित्र : (घूमकर अंगरक्षक से) अंगरक्षक !···मैं इस बाचाल की बातें नहीं सुनना चाहता···मैं इस दंडनीय को फिर देखूंगा···चित्रा को बंदी करके ले चलो !

[अंगरक्षक आगे बढ़ता है]

ब्रह्मचारी : (डाँटता हुआ) सावधान !···चित्रा बंदी नहीं हो सकती !···ओह !··· मौर्य्य शासन में यह बच्चों का खेल !!

पुष्यमित्र : (आश्चर्य से) बच्चों का खेल !···भू
शासन !

ब्रह्मचारी : (उपेक्षा से) ओह ! वह तो एक
बात···!···

पुष्यमित्र : अतीत की बात नहीं, सुन लो—मैं उसी
हूँ···लेकिन···शासकों और धर्म-पाखंडियों से

ब्रह्मचारी : शान्त !···अब तू सीमा का उल्लंघन
पता नहीं।

पुष्यमित्रा : बंदी करो नर्त्तकी को !···मैं इसकी

चित्रा : देव···क्षमा !···उज्जैनी में कोई युद्ध मेरे
चाहती हूँ···थक चुकी देव प्रतिमा के सामने
कैसा नाच नचाता है !

पुष्यमित्र (गंभीरता से) कुशल है !

वसुमित्र : (युवक जो अभी तक मौन बैठा था उठ
चित्रा किसी भाँति भी बंदी नहीं हो सकती !

पुष्यमित्र : (आश्चर्य से) तू कौन ?

वसुमित्र : इसे बताने की कोई आवश्यकता नहीं···
हैं, तो पहले आप अपने प्रादेशिक को क्यों
व्यभिचार के अड्डे···चरित्रहीनता पर वज्र
और बंदी···

चित्रा : युवक ! धन्यवाद···तुम्हारी सहानुभूति···
जाना चाहती हूँ···किसी गहन अंधकार में···

वसुमित्र : ऐसा क्यों···चित्रा !···क्यों···

चित्रा : क्योंकि मैं बसंत के पिक स्वर की रागिनी

वसुमित्र : तो ठीक तो है, इस अमर वरदान को श
प्रकाश से···साम्राज्य के घटाटोप अंधकार को

चित्रा : नहीं, युवक !···पिकस्वर का धर्म है कि प
गहन अंधकार में आँखें मूँद ले !

वसुमित्र : और···यदि कोई उसकी जीवित रागिन
का पिक···स्वर बन जाए तो···?

पुष्यमित्र : (बीच ही में झुंझलाकर) शान्त युवक
···तू भी नर्त्तकी के साथ बंदी होना चाहता है

वसुमित्र : इसका उत्तर देने के लिए फिर···फिर प्र
मैं एक बात पूछना चाहता हूँ···कि क्या आप
सकेंगे ?

पुष्यमित्र : तुझे क्या इसमें भ्रम है युवक ?

हाँ, हाँ, प्रादेशिक ! उसे मेरे यहाँ आने की शीघ्र सूचना

देव !···इधर आने से पूर्व ही मैंने उनका पता लगाया, लेकिन मिली कि प्रादेशिक का कहीं पता नहीं !

देशिक को क्या करोगे ?···वह कर ही क्या सकता है ?

सावधान !···तू दंडनीय है, इसलिए मैं प्रादेशिक को पूछ क ! यह नर्त्तकी भी बंदी बनायी जायेगी ।

देव !···यदि ऐसी बात हो···तो आज्ञा दीजिए···मैं उज्जैनी ा दे दूं ।

बताओ ।

-गृह में राजनर्त्तकी से संगीत सुन रहे हैं ।

ओह ! मणिकान्ता के साथ ? (ऊँचे स्वर में) अंगरक्षक !

और उज्जैनी के विश्राम-गृह से प्रादेशिक को यहाँ आने को

जो आज्ञा !

···और आप यहाँ महाकाल के मन्दिर में अपने प्रादेशिक को इन रेंगते हुए कीड़ों के पीछे क्यों नहीं घूमते···?

अभिप्राय क्या है ?

ी; सुनो···महाकालेश्वर के पुजारी और मगध के शासक तुम्हारा शासन-चक्र, तुम्हारी राजनीति के लिए है; धर्म के रों में तुम्हारे आने की क्या आवश्यकता ?···फिर तो यहाँ ती हो रही थी,···नर्त्तकी···।

ोध से बढ़कर, सुरा कुंभ और पात्रों को पैर से ठोकर तुम्हारी पूजा···यही है तुम्हारी धार्मिकता, नीच !···तू ी देख ! वे क्या कह रही हैं ?···तू पुजारी है···या···

न्त !···मेरी आँखें कह रही हैं कि तू इसकी ज्वाला से ···और यदि क्षमता हो तो···इस समय महाकालेश्वर की को देख···! और भस्म हो जा !

वक से) अंगरक्षक !···मैं इस बाचाल की बातें नहीं सुनना य को फिर देखूंगा···चित्रा को बंदी करके ले चलो !

ा है]

सावधान !···चित्रा बंदी नहीं हो सकती !···ओह !··· च्चों का खेल !!

पुष्यमित्र : (आश्चर्य से) बच्चों का खेल !···भूल गए···सम्राट अशोक का धर्मानुशासन !

ब्रह्मचारी : (उपेक्षा से) ओह ! वह तो एक ऐतिहासिक घटना है,···अतीत की बात···!···

पुष्यमित्र : अतीत की बात नहीं, सुन लो—मैं उसी विजय को शाश्वत रूप देना चाहता हूँ···लेकिन···शासकों और धर्म-पाखंडियों से अवकाश तो मिले !

ब्रह्मचारी : शान्त !···अब तू सीमा का उल्लंघन कर रहा है !···मेरी शक्ति का तुझे पता नहीं ।

पुष्यमित्र : बंदी करो नर्त्तकी को !···मैं इसकी शक्ति देखना चाहता हूँ !

चित्रा : देव···क्षमा !···उज्जैनी में कोई युद्ध मेरे लिए न हो !···मैं स्वयं बंदी होना चाहती हूँ···थक चुकी देव प्रतिमा के सामने नाचते-नाचते !·· देखूं···अब मनुष्य कैसा नाच नचाता है !

पुष्यमित्र (गंभीरता से) कुशल है !

वसुमित्र : (युवक जो अभी तक मौन बैठा था उठकर)···कुशलता के मंगलदायक ! चित्रा किसी भाँति भी बंदी नहीं हो सकती !

पुष्यमित्र : (आश्चर्य से) तू कौन ?

वसुमित्र : इसे बताने की कोई आवश्यकता नहीं···आप मौर्य साम्राज्य के कुमारामात्य हैं, तो पहले आप अपने प्रादेशिक को क्यों नहीं बंदी बनाते ?···राजधानी में व्यभिचार के अड्डे···चरित्रहीनता पर वज्र क्यों नहीं गिराते ?···हूँ···चित्रा और बंदी···

चित्रा : युवक ! धन्यवाद···तुम्हारी सहानुभूति···किन्तु मैं स्वयं इस दृश्य से लुप्त हो जाना चाहती हूँ···किसी गहन अंधकार में···या किसी सिन्धु के तरल गर्भ में ?

वसुमित्र : ऐसा क्यों···चित्रा !···क्यों···

चित्रा : क्योंकि मैं बसंत के पिक स्वर की रागिनी जो हूँ ?

वसुमित्र : तो ठीक तो है, इस अमर वरदान को शाश्वत रखो···और···अपनी कला के प्रकाश से···साम्राज्य के घटाटोप अंधकार को चीर दो !

चित्रा : नहीं, युवक !···पिकस्वर का धर्म है कि पतझड़ देखने के पहले वह स्वयं किसी गहन अंधकार में आँखें मूंद ले !

वसुमित्र : और···यदि कोई उसकी जीवित रागिनी में सदा जीवन भरने के लिए बसंत का पिक···स्वर बन जाए तो···?

पुष्यमित्र : (बीच ही में झुंझलाकर) शान्त युवक···तू क्या अनर्गल बातें बकने लगा ? ···तू भी नर्त्तकी के साथ बंदी होना चाहता है क्या ?

वसुमित्र : इसका उत्तर देने के लिए फिर···फिर प्रयत्न करूँगा···लेकिन···आर्य !··· मैं एक बात पूछना चाहता हूँ···कि क्या आप अशोक के धर्म विजय पर चल सकेंगे ?

पुष्यमित्र : तुझे क्या इसमें भ्रम है युवक ?

वसुमित्र : भ्रम क्या···विश्वास है; ···आपका व्यक्तित्व, आपका कार्य इसको स्पष्ट कर रहा है; ···क्योंकि धर्मशासक का कार्य राजबंदी बनाना नहीं; धार्मिक कृत्यों पर बाधा डालना नहीं, वह वाह्याक्रमणों को रोकता है; व्यभिचारी शासकों को दंड देता है; धर्म-पाखंडियों को बंदी बनाता है; एक अबला नर्त्तकी को नहीं···!

पुष्यमित्र : चुप रह, युवक ! ···मैं तेरी मंत्रणा नहीं चाहता ! ···

वसुमित्र : यह मंत्रणा नहीं, चेतावनी है चेतावनी। मंत्रणा तो आपको नर्त्तकियों से आकीर्ण प्रादेशिक वर्ग देगा !

पुष्यमित्र : ओह ! तुम भी इतने विवाधर हो ! ··· (**रुककर, ब्रह्मचारी से**) ब्रह्मचारी ! ···इस युवक सहित यहाँ से चले जाओ···यह मेरी आज्ञा है !

ब्रह्मचारी : ऐसा क्यों ?

पुष्यमित्र : मुझे नर्त्तकी को बंदी बनाने के पूर्व कुछ गुप्त बातें करनी है···तब तक प्रादेशिक भी आ जाएगा !

ब्रह्मचारी : (**आश्चर्य से सर थाम कर**) नर्त्तकी से यहाँ गुप्त बातें ! ···विनाश ! ··· महाविनाश ! ! ···महाकाल की स्तुति में नृत्य करती हुई नर्त्तकी को छीनकर यहीं उससे गुप्त बातें ! ···महाविनाश ! ! ···महाकालेश्वर से क्षमा माँगो···तेरी रक्षा करें···विनाश···महाविनाश ! !

[सहसा अंगरक्षक का प्रवेश]

अंगरक्षक : कुमारामात्य की जय हो ! ···उज्जैनी के प्रादेशिक आ गए हैं !

पुष्यमित्र : शीघ्र उपस्थित करो !

[अंगरक्षक के साथ प्रादेशिक का प्रवेश]

प्रादेशिक : (**अभिवादन के साथ**) कुमारामात्य की जय ! ···आज्ञा सम्राट ! !

पुष्यमित्र : (**चिढ़ कर**) आज्ञा सम्राट ! बहुत बड़े आज्ञाकारी ! ! पी चुके राज-नर्त्तकी के साथ मदिरा ! थक गए संगीत सुनते-सुनते ! !

प्रादेशिक : आर्य ! मैं अपना दोष नहीं समझ सका !

पुष्यमित्र : क्यों समझोगे ? मस्तिष्क में तो अभी संगीत की लहरियाँ तैर रही होंगी !

प्रादेशिक : आर्य्य क्षमा !

पुष्यमित्र : ब्रह्मचारी ! तू भी क्षमा माँग ! तूने आज अपराध किया है; मैं इस व्यवहार से घृणा करता हूँ !

ब्रह्मचारी : (**क्रोध से**) और मैं तुझसे घृणा करता हूँ !

पुष्यमित्र : (**कड़क कर**) प्रादेशिक ! अंगरक्षको ! ···बन्दी करो इसे।

[सब उसे पकड़ने आगे बढ़ते हैं]

ब्रह्मचारी : (**क्रोध से**) सावधान ! वहीं रहना, मुझे जिसने स्पर्श किया वह भस्म हो जाएगा··· (**महाकाल के समीप जाकर**) महाकालेश्वर मुझे बल दें··· (**घूमकर**) मैं दिखा दूँगा इस अपमान का उत्तर, दिखा दूँगा अपनी शक्ति···।

[आवेश में क्रोधित ब्रह्मचारी का प्रस्थान]

पुष्यमित्र : (**घबड़ाकर सबको देखता हुआ**) जाने
शत्रु होकर क्या कर सकता है ?

प्रादेशिक : कुछ नहीं···आर्य ! ···वह साम्राज्य का क्या

पुष्यमित्र : प्रादेशिक ! ···मैं थोड़ी देर के लिए मंडप को
···मुझे नर्त्तकी से कुछ···।

चित्रा : कुछ नहीं आर्य। ···आप अपने विवेक में
कीजिए···

पुष्यमित्र : कैसी चिन्ता ? ···तुम्हारा साम्राज्य और चि

चित्रा : मैं···अब आपसे क्या बताऊँ···मैं कुछ नहीं सोच

पुष्यमित्र : लेकिन नर्त्तकी···तू अपराधिनी है···बंदी
पहले···कुछ आवश्यक कार्य हैं।

वसुमित्र : (**व्यंग्य से**) आवश्यक कार्य है। ···लेकिन वह

पुष्यमित्र : (**क्रोध से**) क्यों नहीं, इस पागल को भी बंदी

[जैसे ही अंगरक्षक आगे बढ़ते हैं, सहसा एक दौड़ते

राजपुरुष : (**अभिवादन से**) कुमार की जय हो।

पुष्यमित्र : (**घबड़ाकर**) क्या है, राजपुरुष। राजधानी

राजपुरुष : उससे भी भयानक देव। ···यवन शोण पार

पुष्यमित्र : बस इतनी ही बात !

राजपुरुष : नहीं और भी; अभी गृहमंत्री से सूचना मि
खारवेल से मिलकर मगध का विद्रोही बन गया है।

पुष्यमित्र : (**डर से**) ओह ! छोड़ो इन झंझटों को अ
सुरक्षित है। (**बढ़कर घूमते हुए**) हाँ···यह नर्त्तकी
स्थगित रहेगी। ···तुम लोग यहीं रहना···।

[पुष्यमित्र का प्रादेशिक और अंगरक्षक सहित प्रस्थ

चित्रा : (**गंभीरता से**) किन्तु क्या यही शासन है ? यहीं
का अपूर्व अपमान करता हुआ ब्रह्मचारी···प्रतिशोध
गया···और इधर निर्बल शासक कठिनाइयों के
राजधानी में ही रहना सुरक्षित है ! ···विषाक्त
प्रतिमा के सामने नतशिर होकर) शक्तिनाथ ! महा
का कल्याण !

वसुमित्र : (**पास आकर**)···चित्रा ! ···चित्रा ! ! ···तू अ

चित्रा : (**उठकर वसु को देखती हुई**) वसु ! ···वसु ! ! क
(**पीड़ा से**)···आह···बुरा हुआ !

श्वास है; ···आपका व्यक्तित्व, आपका कार्य इसको स्पष्ट कर
धर्मशासक का कार्य राजबंदी बनाना नहीं; धार्मिक कृत्यों पर
ह वाह्याक्रमणों को रोकता है; व्यभिचारी शासकों को दंड देता
ी बंदी बनाता है; एक अबला नर्त्तकी को नहीं···!
! ···मैं तेरी मंत्रणा नहीं चाहता ! ···
ं, चेतावनी है चेतावनी। मंत्रणा तो आपको नर्त्तकियों से
देगा !
इतने विवाधर हो ! ···(रुककर, **ब्रह्मचारी से**) ब्रह्मचारी !
यहाँ से चले जाओ···यह मेरी आज्ञा है !

ी बंदी बनाने के पूर्व कुछ गुप्त बातें करनी है···तब तक
गा !
र थाम कर) नर्त्तकी से यहाँ गुप्त बातें ! ···विनाश ! ···
ाकाल की स्तुति में नृत्य करती हुई नर्त्तकी को छीनकर यहीं
महाविनाश !! ···महाकालेश्वर से क्षमा माँगो···तेरी रक्षा
विनाश !!
प्रवेश]

ी जय हो ! ···उज्जैनी के प्रादेशिक आ गए हैं !
करो !
ादेशिक का प्रवेश]

साथ) कुमारामात्य की जय ! ···आज्ञा सम्राट !!
ना सम्राट ! बहुत बड़े आज्ञाकारी !! पी चुके राज-नर्त्तकी
गए संगीत सुनते-सुनते !!
ा दोष नहीं समझ सका !
मस्तिष्क में तो अभी संगीत की लहरियाँ तैर रही होंगी !

ी क्षमा माँग ! तूने आज अपराध किया है; मैं इस व्यवहार

मैं तुझसे घृणा करता हूँ !
देशिक ! अंगरक्षको ! ···बन्दी करो इसे।
बढ़ते हैं]
धान ! वहीं रहना, मुझे जिसने स्पर्श किया वह भस्म हो
के समीप जाकर) महाकालेश्वर मुझे बल दें··· (**घूमकर**) मैं
का उत्तर, दिखा दूंगा अपनी शक्ति···।

[आवेश में क्रोधित ब्रह्मचारी का प्रस्थान]

पुष्यमित्र : (**घबड़ाकर सबको देखता हुआ**) जाने दो ! ···देख लूंगा ब्रह्मचारी मेरा शत्रु होकर क्या कर सकता है ?

प्रादेशिक : कुछ नहीं···आर्य ! ···वह साम्राज्य का क्या बना-बिगाड़ सकता है ?

पुष्यमित्र : प्रादेशिक ! ···मैं थोड़ी देर के लिए मंडप को सूना चाहता हूँ···शीघ्रता करो ···मुझे नर्त्तकी से कुछ···।

चित्रा : कुछ नहीं आर्य।···आप अपने विवेक में आइए···साम्राज्य की चिन्ता कीजिए···

पुष्यमित्र : कैसी चिन्ता ? ···तुम्हारा साम्राज्य और चिन्ता से प्रयोजन ? ···बोलो···।

चित्रा : मैं···अब आपसे क्या बताऊँ···मैं कुछ नहीं सोचना चाहती···।

पुष्यमित्र : लेकिन नर्त्तकी···तू अपराधिनी है···बंदी है···और तुझे बन्दी बनाने से पहले···कुछ आवश्यक कार्य हैं।

वसुमित्र : (**व्यंग्य से**) आवश्यक कार्य है।···लेकिन वह नहीं हो पाएगा···।

पुष्यमित्र : (**क्रोध से**) क्यों नहीं, इस पागल को भी बंदी करो।

[जैसे ही अंगरक्षक आगे बढ़ते हैं, सहसा एक दौड़ते हुए राजपुरुष का प्रवेश]

राजपुरुष : (**अभिवादन से**) कुमार की जय हो।

पुष्यमित्र : (**घबड़ाकर**) क्या है, राजपुरुष। राजधानी में कोई षड्यंत्र तो नहीं ?

राजपुरुष : उससे भी भयानक देव।···यवन शोण पार कर चुके !

पुष्यमित्र : बस इतनी ही बात !

राजपुरुष : नहीं और भी; अभी गृहमंत्री से सूचना मिली है कि आन्ध्र का प्रादेशिक खारवेल से मिलकर मगध का विद्रोही बन गया है।

पुष्यमित्र : (**डर से**) ओह ! छोड़ो इन झंझटों को अब तो राजधानी में ही रहना सुरक्षित है। (**बढ़कर घूमते हुए**) हाँ···यह नर्त्तकी और युवक की मंत्रणा अभी स्थगित रहेगी।···तुम लोग यहीं रहना···।

[पुष्यमित्र का प्रादेशिक और अंगरक्षक सहित प्रस्थान]

चित्रा : (**गंभीरता से**) किन्तु क्या यही शासन है ? यही राजाज्ञा है !···शासन-सत्ता का अपूर्व अपमान करता हुआ ब्रह्मचारी···प्रतिशोध की आग में जलता हुआ चला गया···और इधर निर्बल शासक कठिनाइयों के सामने कह रहा है—"अब तो राजधानी में ही रहना सुरक्षित है !···विपाक्त राजधानी में···(**महाकाल की प्रतिमा के सामने नतशिर होकर**) शक्तिनाथ ! महाकालेश्वर !! मौर्य्य साम्राज्य का कल्याण !

वसुमित्र : (**पास आकर**)···चित्रा !···चित्रा !!···तू अब तक इतनी भोली है ?

चित्रा : (**उठकर वसु को देखती हुई**) वसु !···वसु !! क्या तूने मुझे पहचान लिया ? (**पीड़ा से**)···आह···बुरा हुआ !

वसुमित्र : चाहे जो हुआ, मैंने तुझे पहचान लिया···अकस्मात् आज इस मन्दिर में मेरा आना हुआ···मैं तो अपने रास्ते से राजगिरि जा रहा था···परन्तु वाह री···मंगल नियति !

चित्रा : (घबड़ाकर) वसु !···क्या तूने सचमुच मुझे पहचान लिया ?

वसुमित्र : हाँ···एक दृष्टि में पहचान लिया···और क्यों न पहचानता···जिस चित्रा से मुझे अणु-अणु का परिचय है !···ये मंगलमयी भौंहें !···चमकते हुए ललाट पर ···सिन्धु के किनारे की गई बालक्रीड़ा का अमिट चिह्न !···इन आँखों के नीले आकाश में मेरे भाग्य के डूबे हुए नक्षत्र···

चित्रा : (बीच ही में) आह वसु !···चुप रहो···(परेशान हो) कह दो वसु !···मैं तुझे पहचान रहा हूँ···कह दो···वसु !···पवित्र रहने दो वह स्वर्णिम अतीत···।

वसुमित्र : (सँभालता हुआ) घबड़ाओ नहीं चित्रे···

[चित्रा वसु को देखती हुई बैठ जाती है।]

चित्रा : (गंभीरता से) तुझे भी याद होगा वसु !···वह क्षिप्रा का सूना तट !··· गोधूली की बेला···जहाँ मैं माँ-बाप दोनों की दाहक्रिया एक साथ करके, अकेली बैठी थी···आत्महत्या की बात सोच रही थी और वहाँ कोई नहीं था वसु !···तुम्हीं ने, न जाने कहाँ से आकर चुपके से मेरे कान में कहा था—"चित्रा घबड़ाओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ !" कितने भोले और पवित्र थे तुम्हारे वे शब्द !

वसुमित्र : (उत्सुकता से) हाँ, इसके बाद चित्रे !···बताओ···क्या हुआ ?

चित्रा : इसके बाद न पूछो वसु !···वसु !···इस महाकाल के मन्दिर में तूने मुझे एक नर्त्तकी के रूप में देखा···बस समझ लो वसु !···।

वसुमित्र : और···।

चित्रा : (पीड़ा से) और क्या···इसके आगे संभवतः बंदी होकर निर्बल मनुष्य के सामने नाचना पड़े···नाच चुकी महाकाल के सामने !

वसुमित्र : तो चित्रे, क्या मुझे तुम फिर त्याग दोगी ?

चित्रा : नहीं, वसु ऐसा न कहो···जिस नियति ने ठोकर देते-देते हम लोगों को अनजाने, अकस्मात् एक बार यहाँ मिलाया है···उस नियति को शत-शत प्रणाम !!और अब उसी नियति से प्रार्थना है कि मेरे जीवन के अन्तिम क्षणों में; सदा के लिए पलक-सम्पुट बन्द करते समय, तुम्हारी यह छवि-सुधा इन पिपासित नयनों में घुल जाए !

वसुमित्र : (घबड़ा कर) अपनी मृत्यु की बात मत सोचो, चित्रे !···कुछ अन्य बात सोचो !

चित्रा : अब अधिक न सोचने दो !देख रहे हो न, मौर्य्य साम्राज्य के पतन के दिन। सुन ली न यहीं, शासक और अधीन की बातें !

वसुमित्र : तो हमें इसकी क्यों चिन्ता ?···हम लोगों का जीवन तो स्वर्ण प्रभात में दो तिनकों पर पड़ी हुई ओस की बूँदों के समान है···। बस···।

चित्रा : वीर वसु !···मगध हम लोगों की मातृ
पर दो तिनकों पर पड़ी हुई ओस की बूँदों का
हम लोगों का सौभाग्य ही क्या हो सकता है ?

वसुमित्र : चित्रा, छोड़ो भी इन बातों को···चित्रा
और अगर नहीं बचा सका तो···मैं भी तुम्हारे

चित्रा : (मुस्कुराहट से) आर्य वसु !···मैं तुम्हारे
हूँ···कितने भावुक हो तुम···नन्हे शिशु की तर

[सहसा पृष्ठभूमि में कुछ गिर पड़ने की आ
क्रोधित स्वर स्पष्ट सुनाई देता है।]

चित्रा : (घबड़ाकर) वसु !···

वसुमित्र : (पास आकर) क्या है चित्रा ?···

चित्रा : (क्षीण स्वर से) सुन रहे हो न,···ब्रह्मचारी

वसुमित्र : तो···इससे क्या ?

चित्रा : तुम समझते नहीं···वसु···ब्रह्मचारी कितन
कुमारामात्य से क्रोधित होकर गया है···यह म
शत्रु !···मुझे लग रहा है···यह मौर्य साम्रा
विश्वासघात···करेगा ! आज उसकी मनोदशा

वसुमित्र : (आश्चर्य से) सचमुच !···यह क्या कह र

चित्रा : वही कह रही हूँ···जो मेरा विश्वास है···
ब्रह्मचारी शत्रुओं से न मिल जाए···और···और

वसुमित्र : (घबड़ाकर) और क्या बताओ···?

चित्रा : और उसके हाथ में एक बहुत बड़ा सूत्र है···
दे !···बसु !···

वसुमित्र : (सम्हालता हुआ) क्या है···चित्रे ? क्यों इ

चित्रा : निर्बलता ही की बात है···वसु !···सुनो···
करो···पहले···रुककर इधर-उधर देख तो लो;
रहा है ?

[वसुमित्र इधर-उधर देखता है।]

वसु : कोई नहीं है चित्रा !···क्या बात है ?

चित्रा : (स्फुट स्वर में)···सुनो···पास आ जाओ !
अन्तिम कक्ष में, शक्ति की विशाल प्रतिमा है, उस
है; जिस पर अष्ट धातु की, बीचोबीच एक आकृ
राजधानी का सुरंग खुल जाता है···!

वसुमित्र : (बीच ही में) अरे ! तुम्हें यह कैसे ज्ञात ?

आ, मैंने तुझे पहचान लिया···अकस्मात् आज इस मन्दिर में मेरा
तो अपने रास्ते से राजगिरि जा रहा था···परन्तु वाह री···मंगल

वसु !···क्या तूने सचमुच मुझे पहचान लिया ?
दृष्टि में पहचान लिया···और क्यों न पहचानता···जिस चित्रा से
ा परिचय है !···ये मंगलमयी भौंहें !···चमकते हुए ललाट पर
ारे की गई बालक्रीड़ा का अमिट चिह्न !···इन आँखों के नीले
ाग्य के डूबे हुए नक्षत्र···
) आह वसु !···चुप रहो···(**परेशान हो**) कह दो वसु !···मैं
ा हूँ···कह दो···वसु !···पवित्र रहने दो वह स्वर्णिम अतीत···।
ा हुआ) घबड़ाओ नहीं चित्रे···

देखती हुई बैठ जाती है।]

) तुझे भी याद होगा वसु !···वह क्षिप्रा का सूना तट !···
···जहाँ मैं माँ-बाप दोनों की दाहक्रिया एक साथ करके, अकेली
हत्या की बात सोच रही थी और वहाँ कोई नहीं था वसु !···तुम्हीं
से आकर चुपके से मेरे कान में कहा था—"चित्रा घबड़ाओ नहीं,
हूँ !" कितने भोले और पवित्र थे तुम्हारे वे शब्द !
से) हाँ, इसके बाद चित्रे !···बताओ···क्या हुआ ?
पूछो वसु !···वसु !···इस महाकाल के मन्दिर में तूने मुझे एक
देखा···बस समझ लो वसु !···।

ौर क्या···इसके आगे संभवतः बंदी होकर निर्बल मनुष्य के सामने
च चुकी महाकाल के सामने !
ा मुझे तुम फिर त्याग दोगी ?
ा न कहो···जिस नियति ने ठोकर देते-देते हम लोगों को अनजाने,
र यहाँ मिलाया है···उस नियति को शत-शत प्रणाम !!और अब
ार्थना है कि मेरे जीवन के अन्तिम क्षणों में; सदा के लिए पलक-
समय, तुम्हारी यह छवि-सुधा इन पिपासित नयनों में घुल जाए !
:) अपनी मृत्यु की बात मत सोचो, चित्रे !···कुछ अन्य बात

सोचने दो !देख रहे हो न, मौर्य्य साम्राज्य के पतन के दिन। सुन
क और अधीन की बातें !
की क्यों चिन्ता ?···हम लोगों का जीवन तो स्वर्ण प्रभात में दो
ुई ओस की बूंदों के समान है···। बस···।

चित्रा : वीर वसु !···मगध हम लोगों की मातृभूमि है···और मातृभूमि के बलि-पथ पर दो तिनकों पर पड़ी हुई ओस की बूंदों का उत्सर्ग कम नहीं···और इससे बढ़कर हम लोगों का सौभाग्य ही क्या हो सकता है ?

वसुमित्र : चित्रा, छोड़ो भी इन बातों को···चित्रा ! मैं तुझे बंदी होने से बचाऊँगा··· और अगर नहीं बचा सका तो···मैं भी तुम्हारे साथ बंदी हो जाऊँगा !

चित्रा : (**मुस्कुराहट से**) आर्य वसु !···मैं तुम्हारे इसी भोलेपन से पराजित हो जाती हूँ···कितने भावुक हो तुम···नन्हे शिशु की तरह···।

[सहसा पृष्ठभूमि में कुछ गिर पड़ने की आवाज होती है और ब्रह्मचारी का क्रोधित स्वर स्पष्ट सुनाई देता है।]

चित्रा : (**घबड़ाकर**) वसु !···

वसुमित्र : (**पास आकर**) क्या है चित्रा ?···

चित्रा : (**क्षीण स्वर से**) सुन रहे हो न,···ब्रह्मचारी के भयानक अट्टहास !

वसुमित्र : तो···इससे क्या ?

चित्रा : तुम समझते नहीं···वसु···ब्रह्मचारी कितना बड़ा शक्तिशाली है !···और वह कुमारामात्य से क्रोधित होकर गया है···यह मातृभूमि का अनन्य द्रोही है, घातक शत्रु !···मुझे लग रहा है···यह मौर्य साम्राज्य क्या, राष्ट्र के विरुद्ध कोई विश्वासघात···करेगा ! आज उसकी मनोदशा ठीक नहीं···।

वसुमित्र : (**आश्चर्य से**) सचमुच !···यह क्या कह रही हो चित्रा ?

चित्रा : वही कह रही हूँ···जो मेरा विश्वास है···मुझे लगता है कि कहीं क्रोधित ब्रह्मचारी शत्रुओं से न मिल जाए···और···और···!

वसुमित्र : (**घबड़ाकर**) और क्या बताओ···?

चित्रा : और उसके हाथ में एक बहुत बड़ा सूत्र है···वह कहीं इसे ही शत्रुओं को न दे दे !···वसु !···

वसुमित्र : (**सम्हालता हुआ**) क्या है···चित्रे ? क्यों इतनी निर्बल हो रही है ?

चित्रा : निर्बलता ही की बात है···वसु !···सुनो···मेरे पास आ जाओ···बहुत जल्दी करो···पहले···रुककर इधर-उधर देख तो लो; कोई कहीं छिपकर तो नहीं सुन रहा है ?

[वसुमित्र इधर-उधर देखता है।]

वसु : कोई नहीं है चित्रा !···क्या बात है ?

चित्रा : (**स्फुट स्वर में**)···सुनो···पास आ जाओ !···इस मंडप की सीध में···पीछे अन्तिम कक्ष में, शक्ति की विशाल प्रतिमा है, उसके पीछे एक चौकोर काला पत्थर है; जिस पर अष्ट धातु की, बीचोबीच एक आकृति है···उसे दबा देने से दाईं ओर राजधानी का सुरंग खुल जाता है···!

वसुमित्र : (**बीच ही में**) अरे ! तुम्हें यह कैसे ज्ञात ?

चित्रा : चुप रहो···फिर बताऊँगी···मुझे इस क्षण विश्वास हो रहा है कि कुमारामात्य से क्रोधित ब्रह्मचारी सम्राट के विरुद्ध विश्वासघात करेगा,···वीर वसु !···तुम शीघ्र उस सुरंग-द्वार की रक्षा करो !

[वसु जाने लगता है।]

चित्रा : (**रोककर**) रुको···निरस्त्र कार्य नहीं चल सकेगा; (**महाकाल के पीछे से कृपाण देती हुई**)···लो···अब जाओ···वीर वसु !···जाओ तुम्हारी पवित्र विजय के लिए, तब तक मैं महाकाल से प्रार्थना कर रही हूँ !

वसुमित्र : (**जाते हुए**) घबड़ाओ नहीं चित्रा ! मैं अभी विश्वासघाती ब्रह्मचारी का काम तमाम करके लौटता हूँ !

चित्रा : (**भावुकता से**) वीर वसु !···तुम कितने अच्छे ! जाओ, तुम्हारा पथ प्रशस्त हो,···मंगलमय···!

[वसु का प्रस्थान—चित्रा महाकाल के सामने नतशिर]

चित्रा : रक्षा करना···महाप्रभु !···मौर्य्य साम्राज्य···की रक्षा···मेरे वीर वसु की रक्षा !···क्यों नहीं तीसरा नेत्र खोलकर···राष्ट्र के कीड़ों को जला देते प्रभु !

[सहसा पुष्यमित्र का ताम्बूलवाहिनी और सुरावाहिनी के साथ प्रवेश]

पुष्यमित्र : (**आश्चर्य से**) ओह !·· महासुन्दरी···एक पत्थर की प्रतिमा की पूजा कर रही है !···मुझसे माँग लो···जो तुम्हें कुछ भी माँगना हो; महासुन्दरी को अब किसी प्रतिमा से प्रार्थना नहीं करनी है।

[चित्रा घूमकर आश्चर्य के साथ इन्हें देखती है।]

चित्रा : (**आश्चर्य से**) ओह !···क्या मैं मौर्य साम्राज्य के कुमारामात्य को देख रही हूँ ?

पुष्यमित्र : हाँ, महासुन्दरी !···आओ, मैं तुम्हें अपनी आँखों में बिठा लूँ।

चित्रा : (**क्रोध से**) शांत ! सम्राट अशोक के धर्मानुशासन पर चलने का स्वप्न देखने वाला !···अपनी आँखों में विष डाल ले !···विष !

पुष्यमित्र : (**मुस्कराकर**)···ताम्बूलवाहिनी ! पूछना···तो; महासुन्दरी की इन भौंहों पर बल क्यों ?···बसंत में ग्रीष्म कहाँ से ?

चित्रा : क्योंकि साम्राज्य की जड़ में आग लग गई है ! और कुमारामात्य···की मृत्यु हो गई है !

पुष्यमित्र : नहीं;···ऐसा न कहो···महासुन्दरी !···मुझे ··मुझे···।

चित्रा : ओह !···महाकालेश्वर,···तू इन कीड़ों को भस्म क्यों नहीं कर देता !यही है तेरी धर्मविजय !

पुष्यमित्र : (**पागल-सा**) सुरावाहिनी !···महासुन्दरी को समझा दे···धर्म-विजय एक ढोंग है ! मैं तुमसे विजित हूँ नर्त्तकी !···तुम्हारा नृत्य देखकर मैं लुट चुका हूँ !

चित्रा : (**दुःख से**) ओह ! तू मौर्य्य सम्राट है !···स्वर्गीय
दे ! उस पवित्र पद की लाज पर तू मर जा !···अब

पुष्यमित्र : सँभलना क्या है सुन्दरी ?

चित्रा : सँभलना क्या है ?···ओह! अन्धा,···मौर्य्य साम्राज
जा रहा है, दो ओर से राजधानी की ओर बढ़ते
राजधानी विश्वासघातियों से पूर्ण···और तू !···

पुष्यमित्र : मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ···सुन्दरी,···(**रुक**
चषक देना !···

[सुरावाहिनी जैसे ही चषक भरकर देने लगती है···
से मार देती है।]

चित्रा : यह है···तेरा चषक !

पुष्यमित्र : (**बल से**) नर्तकी ! सावधान ! तू इस समय
के सामने खड़ी है !

चित्रा : (**पीड़ा से**) आह ! मैं कुमारामात्य से बातें करती
पवित्र आवरण में चरित्रहीन चोर आया है !

पुष्यमित्र : इतना रूठकर बातें करोगी ?···तुम्हीं सोचो, इ
कर सकता हूँ ?

चित्रा : (**क्रोध से**) बता दूँ !···क्या कर सकते हो ? राष्ट्र
यहीं महाकाल को अपनी बलि दे दे !···समझा !

पुष्यमित्र : (**डरकर**)···यही कहोगी ?···यह कैसे ? (**चित्र
के पीछे से खड्ग निकालकर**)

चित्रा : (**ललकारती हुई**) यहीं नतशिर हो जा !···मैं
कालेश्वर स्वयं राष्ट्र-रक्षा करेंगे।

पुष्यमित्र : (**क्रोध से**)···तो···वाचाल! तुझे ही पहले मरन
को भेजता हूँ।

[आवेश में सबके साथ बाहर निकल जाता है।]

चित्रा : (**महाकाल के सामने खड्ग रखकर···**)शक्तिनाथ
में प्रलय करने वाले मौर्य्य साम्राज्य की रक्षा कीजिए
में कोई चीखकर कराह भरता है।)

चित्रा : (**घबड़ाकर**) अरे !···यह कौन आह भर रहा है
शक्तिनाथ ! उसका कार्य पूरा हो···विजयी होकर लौ

[सहसा पीछे घायल वसुमित्र लड़खड़ाता हुआ गिर
सँभालती है।]

कर बताऊँगी···मुझे इस क्षण विश्वास हो रहा है कि कुमारामात्य
वारी सम्राट के विरुद्ध विश्वासघात करेगा,···वीर वसु !···तुम
द्वार की रक्षा करो !

है।]

को···निरस्त्र कार्य नहीं चल सकेगा; (**महाकाल के पीछे से कृपाण**
···अब जाओ···वीर वसु !···जाओ तुम्हारी पवित्र विजय के
महाकाल से प्रार्थना कर रही हूँ !
घबड़ाओ नहीं चित्रा ! मैं अभी विश्वासघाती ब्रह्मचारी का
लौटता हूँ !
) वीर वसु !···तुम कितने अच्छे ! जाओ, तुम्हारा पथ प्रशस्त
··!

—चित्रा महाकाल के सामने नतशिर]

महाप्रभु !···मौर्य्य साम्राज्य···की रक्षा···मेरे वीर वसु की
हीं तीसरा नेत्र खोलकर···राष्ट्र के कीड़ों को जला देते प्रभु !

का ताम्बूलवाहिनी और सुरावाहिनी के साथ प्रवेश]

) ओह !·· महासुन्दरी···एक पत्थर की प्रतिमा की पूजा कर
माँग लो···जो तुम्हें कुछ भी माँगना हो; महासुन्दरी को अब
ार्थना नहीं करनी है।

ाश्चर्य के साथ इन्हें देखती है।]

ओह !···क्या मैं मौर्य साम्राज्य के कुमारामात्य को देख रही

दरी !···आओ, मैं तुम्हें अपनी आँखों में बिठा लूं।
त ! सम्राट अशोक के धर्मानुशासन पर चलने का स्वप्न देखने
आँखों में विष डाल ले !···विष !
ए)···ताम्बूलवाहिनी ! पूछना···तो; महासुन्दरी की इन भौंहों
'बसंत में ग्रीष्म कहाँ से ?
य की जड़ में आग लग गई है ! और कुमारामात्य···की मृत्यु हो

ा न कहो···महासुन्दरी !···मुझे ··मुझे···।
कालेश्वर,···तू इन कीड़ों को भस्म क्यों नहीं कर देता ! यही है

) सुरावाहिनी !···महासुन्दरी को समझा दे···धर्म-विजय एक
विजित हूँ नर्त्तकी !···तुम्हारा नृत्य देखकर मैं लुट चुका हूँ !

चित्रा : (**दुःख से**) ओह ! तू मौर्य्य सम्राट है !···स्वर्गीय सम्राट की आत्मा तुझे बल दे ! उस पवित्र पद की लाज पर तू मर जा !···अब से सँभल जा !

पुष्यमित्र : सँभलना क्या है सुन्दरी ?

चित्रा : सँभलना क्या है ?···ओह! अन्धा,···मौर्य्य साम्राज्य अपनी विशालता से ढहने जा रहा है, दो ओर से राजधानी की ओर बढ़ते हुए खारवेल और यवन··· राजधानी विश्वासघातियों से पूर्ण···और तू !···

पुष्यमित्र : मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ···सुन्दरी,···(**रुककर**) सुरावाहिनी !···मेरा चषक देना !···

[सुरावाहिनी जैसे ही चषक भरकर देने लगती है···चित्रा बढ़कर···पात्र को हाथ से मार देती है।]

चित्रा : यह है···तेरा चषक !

पुष्यमित्र : (**बल से**) नर्तकी ! सावधान ! तू इस समय प्रणय-भिखारी कुमारामात्य के सामने खड़ी है !

चित्रा : (**पीड़ा से**) आह ! मैं कुमारामात्य से बातें करती होती !···यहाँ तो कोई उस पवित्र आवरण में चरित्रहीन चोर आया है !

पुष्यमित्र : इतना रूठकर बातें करोगी ?···तुम्हीं सोचो, इस आपत्ति काल में मैं क्या कर सकता हूँ ?

चित्रा : (**क्रोध से**) बता दूँ !···क्या कर सकते हो ? राष्ट्र-हित की बलि-वेदी पर, तू यहीं महाकाल को अपनी बलि दे दे !···समझा !

पुष्यमित्र : (**डरकर**)···यही कहोगी ?···यह कैसे ? (**चित्रा बढ़कर, महाकाल की मूर्ति के पीछे से खड्ग निकालकर**)

चित्रा : (**ललकारती हुई**) यहीं नतशिर हो जा !···मैं तेरी बलि देती हूँ···महाकालेश्वर स्वयं राष्ट्र-रक्षा करेंगे।

पुष्यमित्र : (**क्रोध से**)···तो···वाचाल! तुझे ही पहले मरना होगा···मैं अभी दण्डनायक को भेजता हूँ।

[आवेश में सबके साथ बाहर निकल जाता है।]

चित्रा : (**महाकाल के सामने खड्ग रखकर···**)शक्तिनाथ महाकालेश्वर !! एक दृष्टि में प्रलय करने वाले मौर्य्य साम्राज्य की रक्षा कीजिए !···रक्षा देव ! (**पृष्ठभूमि में कोई चीखकर कराह भरता है।**)

चित्रा : (**घबड़ाकर**) अरे !···यह कौन आह भर रहा है ? मेरे वसु की रक्षा करना शक्तिनाथ ! उसका कार्य पूरा हो···विजयी होकर लौटे !

[सहसा पीछे घायल वसुमित्र लड़खड़ाता हुआ गिर पड़ता है, चित्रा दौड़कर सँभालती है।]

चित्रा : मेरे वीर वसु !

वसु : (**पीड़ा से**) चित्रा !···चित्रा !! आह !

चित्रा : (**डर से**) वसु !···तुम भागकर तो नहीं आ रहे हो ?···बोलो !···

वसु : नहीं चित्रे !···ब्रह्मचारी की मुझसे घोर लड़ाई हुई···और मैंने उसे मारा···परन्तु जिस समय वह चोट खाकर मर रहा था···पीछे से किसी छिपे हुए शत्रु ने मुझ पर वार किया !

चित्रा : (**प्रसन्नता से**) वीर वसु !···ब्रह्मचारी···मर गया···?

वसु : (**क्षीण स्वर से**) हाँ···ब्रह्मचारी मर गया···!

चित्रा : और वह छिपा हुआ शत्रु ?

वसु : (**क्षीण स्वर से**) पीछा करते ही, वह भाग निकला !

चित्रा : (**वसु से चिपककर**) मेरे वीर वसु !

[वसुमित्र शिथिल होकर बेहोश हो जाता है ।]

चित्रा : (**घबड़ाकर**) अरे !···मेरे जीवन के वीर देवता !···तुम पर शत-शत चित्रा का बलिदान ! (**महाकाल से**) शक्तिनाथ ! मेरे वसु की रक्षा ! मौर्य साम्राज्य की रक्षा !···वसु !···आँखें खोलो !···तुम्हारी पलकों में मेरा साम्राज्य छिपा है !···बोलो···तुम्हारे ओंठों पर मेरा जीवन राग मुस्करा रहा है !···मुझे देखो ···वसु !···मुझे कुछ आज्ञा दो !

[सहसा पुष्यमित्र का दण्डनायक के साथ प्रवेश]

पुष्यमित्र : (**प्रवेश करते ही**) बन्दी कर लो···इन्हें ! (**आश्चर्य से रुक जाता है**) अरे ! युवक···की मृत्यु !

[दोनों झुककर देखने लगते हैं ।]

दण्डनायक : (**आश्चर्य से**)···यह क्या हुआ सम्राट ?···लेकिन···अभी तो युवक जी रहा है !

पुष्यमित्र : यह क्या हुआ नर्तकी ?

चित्रा : (**पीड़ा से**) तुझे क्या बताऊँ, निर्बल !···इसी महाकाल से पूछ ! नष्ट होते हुए मौर्य्य साम्राज्य से पूछ !···अपने पूरे वैभव के साथ ढहते हुए मगध के सिंहासन से पूछ !

पुष्यमित्र : बात क्या है ?···चित्रा···!

चित्रा : निर्बल ! राजधानी तक पहुँचने का सुरंग-द्वार···इस मन्दिर में है···और तुमसे क्रोधित ब्रह्मचारी ने इस सुरंग-द्वार को अभी-अभी शत्रुओं को दे दिया था···वीर वसु ने इसकी रक्षा की···ब्रह्मचारी मारा गया···मेरा···वसु···एक छिपे हुए··· शत्रु से घायल हुआ है !

पुष्यमित्र : ओह, वीर वसु !

दण्डनायक : देवी नर्तकी ! अब क्या किया जाए ?

चित्रा : वीर वसु···के वक्षस्थल से बहते हुए रक्त को
नष्ट होते हुए···मौर्य साम्राज्य को बचा लो···!
हैं; विश्वासघाती शासक शत्रुओं से मिल चुके हैं

[दोनों वसु के रक्त को श्रद्धा से अपने मस्तक प
चेतना आ जाती है ।]

चित्रा : (**प्रसन्नता से वसु से लिपटकर**) मेरे वीर वसु

वसुगुप्त : चित्रा !···चित्रा !!···

चित्रा : वसु ! वसु !!···अपनी अँगुली से बहते हुए
दो !···मुझे पवित्र कर लो वसु !···मेरे वसु !

[पृष्ठभूमि में तुमुल स्वर]

महाकाल प्रसन्न हों !

मौर्य्य साम्राज्य की जय

वसु और चित्रा

[धीरे-धीरे तुमुल स्वर क्षीण हो जाता है ।]

!
ा !···चित्रा !! आह !
!···तुम भागकर तो नहीं आ रहे हो ?···बोलो !···
ह्मचारी की मुझसे घोर लड़ाई हुई···और मैंने उसे मारा···परन्तु
ोट खाकर मर रहा था···पीछे से किसी छिपे हुए शत्रु ने मुझ पर

वीर वसु !···ब्रह्मचारी···मर गया···?
हाँ···ब्रह्मचारी मर गया···!
ा हुआ शत्रु ?
पीछा करते ही, वह भाग निकला !
कर) मेरे बीर वसु !
ल होकर बेहोश हो जाता है ।]
अरे !···मेरे जीवन के वीर देवता !···तुम पर शत-शत चित्रा
(महाकाल से) शक्तिनाथ ! मेरे वसु की रक्षा ! मौर्य साम्राज्य
सु !···आँखें खोलो !···तुम्हारी पलकों में मेरा साम्राज्य छिपा
तुम्हारे ओंठों पर मेरा जीवन राग मुस्करा रहा है !···मुझे देखो
कुछ आज्ञा दो !
न का दण्डनायक के साथ प्रवेश]
रते ही) बन्दी कर लो···इन्हें ! (आश्चर्य से रुक जाता है)
की मृत्यु !
देखने लगते हैं ।]
र्य से)···यह क्या हुआ सम्राट ?···लेकिन···अभी तो युवक जी

आ नर्तकी ?
ुझे क्या बताऊँ, निर्बल !···इसी महाकाल से पूछ ! नष्ट होते हुए
से पूछ !···अपने पूरे वैभव के साथ ढहते हुए मगध के सिंहासन

है ?···चित्रा···!
धानी तक पहुँचने का सुरंग-द्वार···इस मन्दिर में है···और तुमसे
ी ने इस सुरंग-द्वार को अभी-अभी शत्रुओं को दे दिया था···बीर
ा की···ब्रह्मचारी मारा गया···मेरा···वसु···एक छिपे हुए···
आ है !
वसु !
की ! अब क्या किया जाए ?

चित्रा : वीर वसु···के वक्षस्थल से बहते हुए रक्त को अपने मस्तक पर लगाओ···और नष्ट होते हुए···मौर्य साम्राज्य को बचा लो···! शत्रु राजधानी में प्रवेश कर चुके हैं; विश्वासघाती शासक शत्रुओं से मिल चुके हैं !

[दोनों वसु के रक्त को श्रद्धा से अपने मस्तक पर लगाते हैं, धीरे-धीरे वसुगुप्त को चेतना आ जाती है ।]

चित्रा : (प्रसन्नता से वसु से लिपटकर) मेरे वीर वसु !

वसुगुप्त : चित्रा !···चित्रा !!···

चित्रा : वसु ! वसु !!···अपनी अँगुली से बहते हुए इस पवित्र रक्त से मेरी माँग भर दो !···मुझे पवित्र कर लो वसु !···मेरे वसु !!···

[पृष्ठभूमि में तुमुल स्वर]

महाकाल प्रसन्न हों !

मौर्य्य साम्राज्य की जय !
वसु और चित्रा की

[धीरे-धीरे तुमुल स्वर क्षीण हो जाता है ।]

नूरजहाँ की एक रात

पात्र

नूरजहाँ	:	(मेहरुन्निसा) भारत सम्राज्ञी, उम्र 30 वर्ष।
जहाँगीर	:	भारत सम्राट, उम्र 35 वर्ष।
लैला	:	शाहज़ादी, उम्र 14 वर्ष।
खातून	:	बाँदी, उम्र 24 वर्ष।

समय—16वीं शताब्दी

स्थान—आगरे के शाही हरम

[जब मेहरुन्निसा सम्राट् अकबर के हरम में बाँदी शाहज़ादा जहाँगीर, मेहर की खूबसूरती से हार मान ऐसा दूरदर्शी सम्राट्; उसने फौरन सत्तरह वर्षीया के जागीरदार शेर अफ़गन से कर दी। लेकिन सन् तेरह वर्ष बाद, बंगाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन ने एक हत्या कर डाली।

दुःखी विधवा मेहर के साथ, उस समय 10 स और मेहर इसी लड़की को लेकर, अपने शौहर की हरम में चली आई। वह हरम में दिन-रात रोती रह जहाँगीर का कलेजा फटता रहता। और बात तो दिमाग़ में यह बात घर कर चुकी थी कि शेर अफ़गन रूप से जहाँगीर का हाथ था।

मेहर जहाँगीर को अपनी जान से भी प्यारी किसी तरह खुश करके अपने प्रेम को जीतना चाहत वर्षों तक अपने शौहर की मौत की ग़मी मनाती रही जहाँगीर की ओर देखा तक भी नहीं। उसे कभी खुल थी।

आज रात को मेहरुन्निसा अपने पलंग पर अ प्यारी बाँदी खातून सिरहाने खड़ी होकर धीरे-धीरे शु कमरे में सजावट से अधिक वातावरण की पवित्रता है

सिरहाने, दो नीले मूँगे जड़े हुए—ऊँचे शमा प्रकाश दे रहा है। दाईं ओर सात रंग का मद्धिम प्रका झाड़-फ़ानूस लटक रहा है। पलंग से कुछ दूर, सिर सुन्दर तिपाई पर अजीब सजावट के साथ कुछ शीशिय भी पीछे, दीवार से सटाकर एक चाँदी के ऊँचे स्टैण्ड सुन्दर सुराही रखी हुई है, जो पन्नों के काम वाले हुई है—शायद इसमें गुलाब जल है। पास ही में दो रखे हैं।

नूरजहाँ की एक रात

पात्र

:	(मेहरुन्निसा) भारत सम्राज्ञी, उम्र 30 वर्ष ।
:	भारत सम्राट, उम्र 35 वर्ष ।
:	शाहज़ादी, उम्र 14 वर्ष ।
:	बाँदी, उम्र 24 वर्ष ।

समय—16वीं शताब्दी

स्थान—आगरे के शाही हरम में नूरजहाँ का कक्ष

[जब मेहरुन्निसा सम्राट् अकबर के हरम में बाँदी के रूप में थी, उसी समय शाहज़ादा जहाँगीर, मेहर की खूबसूरती से हार मान चुका था। लेकिन अकबर ऐसा दूरदर्शी सम्राट्; उसने फौरन सत्तरह वर्षीया मेहरुन्निसा की शादी, बंगाल के जागीरदार शेर अफ़गन से कर दी। लेकिन सन् 1606 में, मेहर की शादी के तेरह वर्ष बाद, बंगाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन ने एक षड्यन्त्र में शेर अफ़गन की हत्या कर डाली।

दुःखी विधवा मेहर के साथ, उस समय 10 साल की एक लड़की लैला थी और मेहर इसी लड़की को लेकर, अपने शौहर की पाक-याद मान, जहाँगीर के हरम में चली आई। वह हरम में दिन-रात रोती रहती और उसके ग़म से सम्राट् जहाँगीर का कलेजा फटता रहता। और बात तो यह थी कि विधवा मेहर के दिमाग़ में यह बात घर कर चुकी थी कि शेर अफ़गन की मृत्यु-षड्यंत्र में, निश्चित रूप से जहाँगीर का हाथ था।

मेहर जहाँगीर को अपनी जान से भी प्यारी थी और वह एक बार उसे किसी तरह खुश करके अपने प्रेम को जीतना चाहता था। पर मेहर सतत चार वर्षों तक अपने शौहर की मौत की ग़मी मनाती रही और उसने इस बीच कभी जहाँगीर की ओर देखा तक भी नहीं। उसे कभी खुलकर पूरी नींद भी नहीं आती थी।

आज रात को मेहरुन्निसा अपने पलंग पर अस्तव्यस्त सो गई है। उसकी प्यारी बाँदी खातून सिरहाने खड़ी होकर धीरे-धीरे शुतरमुर्ग़ के पंख डुला रही है। कमरे में सजावट से अधिक वातावरण की पवित्रता है।

सिरहाने, दो नीले मूंगे जड़े हुए—ऊँचे शमादान पर दीपक मधुर-मधुर प्रकाश दे रहा है। दाईं ओर सात रंग का मद्धिम प्रकाश करता हुआ, छत से छोटा झाड़-फ़ानूस लटक रहा है। पलंग से कुछ दूर, सिरहाने की ओर, संगमूसा की सुन्दर तिपाई पर अजीब सजावट के साथ कुछ शीशियाँ और प्याले रखे हैं। उसके भी पीछे, दीवार से सटाकर एक चाँदी के ऊँचे स्टैण्ड पर लम्बे मुँह वाली, सोने की सुन्दर सुराही रखी हुई है, जो पन्नों के काम वाले एक छोटे-से रूमाल से ढकी हुई है—शायद इसमें गुलाब जल है। पास ही में दो बेशक़ीमती पर्सियन प्याले रखे हैं।

बाईं ओर दीवार में, एक चौड़ी खुली हुई खिड़की है, जिस पर का नीला रेशमी पर्दा दोनों ओर खिंचा हुआ है। और इससे कमरे में, चाँद-सितारे और रोज सुबह को निकला हुआ नया आफ़ताब पहले नूरजहाँ को ही झाँककर ऊपर चढ़ता है। दाईं ओर एक खुला हुआ दरवाज़ा है जिस पर आबेरवाँ का कीमती गुलाबी पर्दा झूल रहा है।

परदा उठने पर—नूरजहाँ पलंग पर अस्तव्यस्त सोई मिलती है। उसकी कीमती शलवार पर चुस्त कुर्ती में लिपटी हुई सफेद ओढ़नी। ज़र्द चेहरे पर चिंता और उदासी की रेखाएँ। कमरे में आती हुई हवा उसके स्याह गेसू में अजीब अदा से बल खा रही है। बाँदी सिरहाने उसे सावधानी से देखती हुई धीरे-धीरे पंखा झल रही है। थोड़ी-सी रात बीत चुकी है।

सहसा, दायें दरवाजे से, जहाँगीर सहमा हुआ सफेद शाही पोशाक में धीरे से पर्दा हटाकर बिल्ली की तरह प्रवेश करता है।]

जहाँगीर : (**पास आकर, आश्चर्य-युक्त स्वर से**) अरे !···मेहर को नींद आ गई।··· मेहर की ख़ामोश आँखों में नींद !! मेरी मेहर सो गई···!!! (**बुलाकर**) मेहर कब से सो रही है ?

ख़ातून : (**पलंग से कुछ दूर हट कर**) जहाँपनाह ! बेगम को बहुत तरकीबों के बाद अभी-अभी नींद आई है !

जहाँगीर : (**भावुकता से नूरजहाँ की ओर झुका हुआ**) अभी नींद आई है ?···तू बहुत अच्छी है ख़ातून, बहुत अच्छी !···अब चाँद से कह दे, वह जहाँ है वहीं चुप ख़ामोश रुक जाए!···जा कह दे सितारों से, वे बहुत धीरे-धीरे प्यार के नग़मे गुन-गुनाएँ···हवा आके यहाँ मेरी मेहर को प्यार की थपकियाँ दे···यह जहाँगीर का शाही फ़रमान है ! (**भावुकता से**) आह !···प्यारी मेहर को नींद आ गई।

ख़ातून : (**परेशान हो**) लेकिन, जहाँपनाह, यहाँ बोलना ठीक नहीं, बेगम के जग जाने का अन्देशा है···बेगम···जग···।

जहाँगीर : (**बीच ही में आश्चर्य से**) बेगम जग जाएगी !···(**विह्वलता से**) नहीं··· नहीं···ऐसा न कह ! (**ख़ातून को धीरे से बुलाकर, जहाँगीर नूरजहाँ की ओर झुककर**) देख !···मेहर की ख़ामोश निगाहों में कोई थक कर सो गया है ! इन काली ज़ुल्फ़ों में दिल कहता है कि छिप जाऊँ।···इन गोरी कलाइयों को चूम लूँ।

ख़ातून : (**डर से**) नहीं,···जहाँपनाह !···चुप हो जाइए !···

जहाँगीर : (**धीरे से**) अच्छा, अभी चुप हो जाता हूँ···लेकिन तू भी तो देख ले !··· देख···इन बंद पलकों में से प्यार मुस्करा रहा है !···कितनी मासूम आँखें हैं ! इन प्यारे-प्यारे पतले लबों पर जैसे मुहब्बत कुछ गाके चुप हो गई है !

ख़ातून : (**घबड़ाहट से**) जी हाँ, जहाँपनाह !···लेकिन कनीज़ माफ़ी चाहती है··· बेहतर होता आप ज़रा बेगम के पास से इधर आ के···।

जहाँगीर : (**दूर हटता हुआ**) तू ठीक कहती है···ठ
लेकिन, ख़ातून ! अब तो दिल कहता है कि मे
बंद आँखों के नीले आसमान की गहराई को दे

ख़ातून : (**सहम कर**) जी हाँ, ···आप शौक़ से दे
कनीज़ इसके लिए माफ़ी चाहती है।

जहाँगीर : (**आश्चर्य से**) बोलूँ नहीं !···जहाँगीर अ
रहे? हाँ मैं यहीं करूँगा ख़ातून! लेकिन एक बात
से झुककर) ज़रा देख तो ले ! नींद में डूबी हु
ख़्वाब देख रही है। प्यारा ख़्वाब !! मेरी मुहब्ब
बस रही है !···मैं अपने हाथों से मेहर के सर
रहा हूँ !···मेहर ख़्वाब में मुझे प्यार और हस
लिपट कर कह रही है सलीम को प्यार !···उ

ख़ातून : (**प्रसन्नता से**) जी हाँ, जहाँपनाह !···मैं
रहे हैं !

जहाँगीर : (**सीधा होकर, ख़ातून की ओर बढ़ता**
किनारे चलकर ख़ुदा-पाक से इल्तिजा करें कि
सारा रंजो-ग़म, शेरखाँ की याद; मेहर का यह
ली है···वह यह सब भूल जाय ! (**इबादत के**
बाद, मेहर की नर्गिसी आँखों में बेबसी के बादल
की जुदाई का ग़म; मुझे फिर न देखने को मिले
···रसूलल्लाह! मेरी मेहर पर उसका शबाब क़
···मेरी मेहर, हुस्न और ज़िन्दगी का नूर !

[**नूरजहाँ**···नींद में चौंकती है।]

ख़ातून : (**घबड़ा कर**) जहाँपनाह !···देखिए बेगम
आप···आप···ज़रा···।

जहाँगीर : (**सहम कर**) हाँ, ख़ातून, मैं यहाँ से बाहर
आँखों में नींद बन कर समा जा ! मेरी मेहर, ह
मुझे पुकार उठे।

[जहाँगीर धीरे से दरवाजे से प्रस्थान करता है,
सहसा चौंक उठती है, और घबड़ा कर पलंग प

नूरजहाँ : (**घबड़ाकर**···**आधी उठी हुई**) ख़ातून !
घुट रहा है !···(**परेशान हो**) मेरी इस चुस्त बु
ओढ़नी खींच ले। ख़ातून, मेरा दम घुट रहा है

[लम्बी-लम्बी साँसें लेती है।]

दीवार में, एक चौड़ी खुली हुई खिड़की है, जिस पर का नीला
ओर खिंचा हुआ है। और इससे कमरे में, चाँद-सितारे और रोज
हुआ नया आफ़ताब पहले नूरजहाँ को ही झाँककर ऊपर चढ़ता
क खुला हुआ दरवाज़ा है जिस पर आबेरवाँ का कीमती गुलाबी
।
ने पर—नूरजहाँ पलंग पर अस्तव्यस्त सोई मिलती है। उसकी
पर चुस्त कुर्ती में लिपटी हुई सफेद ओढ़नी। ज़र्द चेहरे पर चिंता
रेखाएँ। कमरे में आती हुई हवा उसके स्याह गेसू में अजीब अदा
। बाँदी सिरहाने उसे सावधानी से देखती हुई धीरे-धीरे पंखा झल
रात बीत चुकी है।
यें दरवाजे से, जहाँगीर सहमा हुआ सफेद शाही पोशाक में धीरे
बिल्ली की तरह प्रवेश करता है।]

र, आश्चर्य-युक्त स्वर से) अरे !···मेहर को नींद आ गई।···
आँखों में नींद !! मेरी मेहर सो गई···!!! (**बुलाकर**) मेहर
?

दूर हट कर) जहाँपनाह ! बेगम को बहुत तरकीबों के बाद
ाई है !

से नूरजहाँ की ओर झुका हुआ) अभी नींद आई है ?···तू बहुत
, बहुत अच्छी !···अब चाँद से कह दे, वह जहाँ है वहीं चुप
!···जा कह दे सितारों से, वे बहुत धीरे-धीरे प्यार के नग़मे गुन-
के यहाँ मेरी मेहर को प्यार की थपकियाँ दे···यह जहाँगीर का
! (**भावुकता से**) आह !···प्यारी मेहर को नींद आ गई।
लेकिन, जहाँपनाह, यहाँ बोलना ठीक नहीं, बेगम के जग जाने
बेगम···जग···।
में आश्चर्य से) बेगम जग जाएगी !···(**विह्वलता से**) नहीं···
ह ! (**खातून को धीरे से बुलाकर, जहाँगीर नूरजहाँ की ओर**
···मेहर की ख़ामोश निगाहों में कोई थक कर सो गया है ! इन
दिल कहता है कि छिप जाऊँ।···इन गोरी कलाइयों को चूम

ं,···जहाँपनाह !···चुप हो जाइए !···
अच्छा, अभी चुप हो जाता हूँ···लेकिन तू भी तो देख ले !···
लकों में से प्यार मुस्करा रहा है !···कितनी मासूम आँखें हैं !
तले लबों पर जैसे मुहब्बत कुछ गाके चुप हो गई है !
) जी हाँ, जहाँपनाह !···लेकिन कनीज़ माफ़ी चाहती है···
ज़रा बेगम के पास से इधर आ के···।

जहाँगीर : (**दूर हटता हुआ**) तू ठीक कहती है···बेगम के जग जाने का डर है !···लेकिन, खातून ! अब तो दिल कहता है कि मेहर के प्यार के दामन में बैठकर इन बंद आँखों के नीले आसमान की गहराई को देखता रहूँ !

खातून : (**सहम कर**) जी हाँ, ···आप शौक़ से देखें, यालिए मुल्क ! पर बोलें नहीं, कनीज़ इसके लिए माफ़ी चाहती है।

जहाँगीर : (**आश्चर्य से**) बोलूँ नहीं !···जहाँगीर अपनी मेहर को देखता हुआ चुप बैठा रहे? हाँ मैं यहीं करूँगा खातून! लेकिन एक बात! (**फिर नूरजहाँ की ओर भावुकता से झुककर**) ज़रा देख तो ले ! नींद में डूबी हुई मेहर अपनी शर्बती आँखों में एक ख्वाब देख रही है। प्यारा ख्वाब !! मेरी मुहब्बत की उजड़ी हुई दुनिया फिर से बस रही है !···मैं अपने हाथों से मेहर के सर पर मुग़लिया सल्तनत का ताज रख रहा हूँ !···मेहर ख्वाब में मुझे प्यार और हसरत से देख रही है। मेरे दामन से लिपट कर कह रही है सलीम को प्यार !···जहाँगीर को मुहब्बत !

खातून : (**प्रसन्नता से**) जी हाँ, जहाँपनाह !···मैं भी देख रही हूँ···आप ठीक कह रहे हैं !

जहाँगीर : (**सीधा होकर, खातून की ओर बढ़ता हुआ**) खातून !···आओ हम लोग किनारे चलकर खुदा-पाक से इल्तिजा करें कि मेहर इस नींद की बेहोशी में अपना सारा रंजो-ग़म, शेरखाँ की याद; मेहर का यह ख़याल कि शेरखाँ की जान मैंने ली है···वह यह सब भूल जाय ! (**इबादत के स्वर में**) या खुदा ! इस नींद के बाद, मेहर की नर्गिसी आँखों में बेबसी के बादल, भीगी हुई पलकों में, शेर अफ़गन की जुदाई का ग़म; मुझे फिर न देखने को मिले ! या खुदा !···परवरदिगार !···रसूलल्लाह! मेरी मेहर पर उसका शबाब लौटा!···ज़र्द चेहरे पर सुर्खी ला !···मेरी मेहर, हुस्न और ज़िन्दगी का नूर !

[नूरजहाँ···नींद में चौंकती है।]

खातून : (**घबड़ा कर**) जहाँपनाह !···देखिए बेगम अपनी नींद में चौंक रही है—आप···आप···ज़रा···।

जहाँगीर : (**सहम कर**) हाँ, खातून, मैं यहाँ से बाहर चला जाता हूँ। तू मेरी मेहर की आँखों में नींद बन कर समा जा ! मेरी मेहर, इस नये ख्वाब को देखते-देखते सुबह मुझे पुकार उठे।

[जहाँगीर धीरे से दरवाजे से प्रस्थान करता है, थोड़े से अन्तराल के बाद नूरजहाँ सहसा चौंक उठती है, और घबड़ा कर पलंग पर उछल पड़ती है।]

नूरजहाँ : (**घबड़ाकर···आधी उठी हुई**) खातून ! खातून कहाँ है तू? मेरा दम घुट रहा है !···(**परेशान हो**) मेरी इस चुस्त कुर्ती के सब बन्द तोड़ दे !···मेरी ओढ़नी खींच ले। खातून, मेरा दम घुट रहा है !···

[लम्बी-लम्बी साँसें लेती है।]

खातून : (**सम्हालती हुई**) आप घबड़ाएँ नहीं···लेटी रहें, लेटी।···खामोशी से सो जाएँ, मुझे बताएँ, आप को क्या तकलीफ़ है ?···बुलाऊँ शहंशाह को !

नूरजहाँ : (**झुंझला कर**) नहीं, किसी को न बुला; बंद कर ले इस दरवाज़े को ! और दवा पिला दे !

[खातून किवाड़ लगा देती है, और पास आकर—]

खातून : कौन सी दवा, बेगम ?

नूरजहाँ : (**साँस भरकर**) दवा—मेरी ज़िन्दगी की दवा—मुझे थोड़ा ज़हर घोल कर पिला दे। मेरा दम घुट रहा है, मैं बार-बार अपने पापों को ख़्वाब में नहीं देखना चाहती !

खातून : (**घबड़ाकर**) बेगम !···मेरे सर की क़सम, आप ऐसा न कहें, खामोशी से सो जाएँ।

नूरजहाँ : (**आधी उठ कर तकिए के सहारे टिककर**) पर मैं अपनी खामोशी में भी तो नहीं रह पाती खातून ! (**साँस निकाल कर**) मैंने आज फिर अपने ख़्वाब में वही पुरदर्द बातें देखी हैं। बर्दवान के महल के दरीचे पर मैं खड़ी हूँ—दामोदर नदी की ओर देखती हुई। मेरे मालिक बंगाल के सूबेदार कुतुब से मिलने जा रहे हैं। मैं उन्हें जाने से रोक रही हूँ क्योंकि मुझे शक था कि वह मेरे मालिक का धोखे से खून करने आया है। मैं अपने शेर-अफ़गन को वहाँ जाने से रोक रही हूँ। खातून ! वे मुझे बुरी तरह फटकार-फटकार कर कह रहे हैं—'तू मुझे क्यों वहाँ जाने से रोक रही है मेहर !···मुझे मरने के लिए जाने दे—तू यही चाहती है, मेहर ! ···तू अपने को धोखा देती है, तू सलीम से प्यार करती है। मुझे मर जाने दे, फिर मेरे मरने के बाद, तुझे तेरा प्यारा सलीम मिलेगा ! शाही हरम मिलेगा, मुग़ल ताज मिलेगा।' खातून ! वे ख़्वाब में मुझे इसी तरह फटकारते जा रहे थे और मुझे लग रहा था कि कोई मेरा गला घोंट रहा है, (**दुःख से**) आह ! खातून···! !

खातून : आप आराम करें !···आप को अभी नींद आ जाएगी, और फिर बहुत मीठे-मीठे ख़्वाब देखेंगी (**रुककर, क्रोध से**) इन बुरे ख़्वाबों को बददुआ !···ये मुझ पर क्यों नहीं आ जाते बेगम ?

नूरजहाँ : (**तिलमिला कर**) खामोश खातून !···मेरा मज़ाक़ उड़ा रही है क्या ?··· तुझे अगर बुरे ख़्वाब देखने हैं, तो तू भी पहले मेरी तरह बेवा हो जा (**रुककर**) नहीं, नहीं···तेरी तो शादी ही नहीं···(**मुँह छिपा कर**) या ख़ुदा ! तू किसी को मेरी तरह बेवा न बना ! (**देखकर**) खातून, तू मुझे इस बदशगुनी के लिए माफ़ करना। मैं बेवा हूँ !···मैं···!

खातून : नहीं, आलीजाह ! आप जो अपने लिए सोचती हैं, वह ग़लत है। आप बेगम हैं बेगम ! निस्बानियत की रूह ! मलिके-मुअज्ज़िमा ! जिनके क़दमों पर हिन्दुस्तान का शहंशाह अपना सर रखकर बैठा है ! उधर शरियत भी आपको पुकार कर कह रही है—'मेहर ! तू पाक है, तूने अपने मरे हुए शौहर की याद में चार साल तक ग़मी मनाई है। चार बार ईद के सुनह
है ! रमज़ान के महीने को तूने ग़मी में काटा है ! ज़ि
तूने अपने मरे हुए खाविन्द के वास्ते मुहर्रम माना है;

नूरजहाँ : (**बीच ही में क्रोध से**) यह क्या बक रही है, खा
में तो मैंने ताज़िन्दगी ग़मी मानने की सोची है···चा

खातून : (**गंभीरता से**) तब तो बहिश्त में भी खलबली
फरिश्तों की भी दुनिया में सरगोशियां होने लगेंगी—
मुहब्बत के खिलाफ़ चल रही है।

नूरजहाँ : (**बिगड़कर बैठती हुई**) शोख खातून···तू किस
बार कर रही है ?

खातून : (**गंभीरता से**) शहंशाह जहाँगीर की !

नूरजहाँ : (**दर्द से**) उनकी मुहब्बत; आह ! (**सिरहाने
शेर अफ़गन छीना है ! प्यारा बर्दमान छीना है
सुहाग छीना है ! मेहर का प्यारा नाम छीन कर जि
है।···उनकी मुहब्बत ! आह ! वे ख़ुश रहें। आह

[लड़खड़ा कर पलंग से गिरने लगती है, सहसा
जहाँगीर का प्रवेश होता है और बाँदी का प्रस्थान।]

जहाँगीर : (**सम्हालते हुए याचना से**) मुझे माफ़ कर दो
अपने सलीम को माफ़ कर दो !···सो जाओ मेहर···

नूरजहाँ : (**चीखकर**) आह ! आपके ये ख़ूनी हाथ ! (**
इन ख़ूनी हाथों ने मुझे से पकड़िए !···मुझे फाँसी प
लेकिन इन गुनहगार हाथों को मुझसे दूर रखिए !

जहाँगीर : (**करुणा से**) मेहर !···कहो तो इन गुनहगा
अलग कर दूँ !···तराश दूँ इन्हें···बोलो···मेहर !

नूरजहाँ : (**घबड़ा कर नीचे खड़ी हो जाती है···और दूर र
रखिए !···अपने पास···काट डालने से इनसे ज़मी
फैलेगी, कीड़े पैदा होंगे।···(**परेशान हो**) गुनाह में
कीजिए···शहंशाह !···नहीं तो इस बदबू से सारा
नापाक हो जाएगी !

जहाँगीर : (**दीनता से**) मुझे माफ़ कर दो मेहर ! मैं गु
हूँ ! अब मुझे माफ़ कर दो मेहर !

नूरजहाँ : (**क्रोध से**) शहंशाह, आप मुझसे माफ़ी माँग कर
मज़ाक उड़ा रहे हैं। मुझ पर तरस खाइए···एक बे
···आप मुझे यहाँ अकेली छोड़ दें।

जहाँगीर : तुम्हें कौन बेवा कह सकेगा मेहर ! तुम तो

ई) आप घबड़ाएँ नहीं···लेटी रहें, लेटी।···ख़ामोशी से सो जाएँ,
को क्या तकलीफ़ है ?···बुलाऊँ शहंशाह को !
र) नहीं, किसी को न बुला; बंद कर ले इस दरवाज़े को ! और

गा देती है, और पास आकर—]

बेगम ?
र) दवा—मेरी ज़िन्दगी की दवा—मुझे थोड़ा ज़हर घोल कर
घुट रहा है, मैं बार-बार अपने पापों को ख़्वाब में नहीं देखना

बेगम !···मेरे सर की क़सम, आप ऐसा न कहें, ख़ामोशी से सो

कर तकिए के सहारे टिककर) पर मैं अपनी ख़ामोशी में भी तो
तून ! (साँस निकाल कर) मैंने आज फिर अपने ख़्वाब में वही
हैं। बर्दवान के महल के दरीचे पर मैं खड़ी हूँ—दामोदर नदी
ई। मेरे मालिक बंगाल के सूबेदार कुतुब से मिलने जा रहे हैं।
क रही हूँ क्योंकि मुझे शक था कि वह मेरे मालिक का धोखे से
। मैं अपने शेर-अफ़गन को वहाँ जाने से रोक रही हूँ। ख़ातून !
फटकार-फटकार कर कह रहे हैं—'तू मुझे क्यों वहाँ जाने से
!···मुझे मरने के लिए जाने दे—तू यही चाहती है, मेहर !
खा देती है, तू सलीम से प्यार करती है। मुझे मर जाने दे, फिर
तुझे तेरा प्यारा सलीम मिलेगा ! शाही हरम मिलेगा, मुग़ल
ातून ! वे ख़्वाब में मुझे इसी तरह फटकारते जा रहे थे और
क कोई मेरा गला घोंट रहा है, (दुःख से) आह ! ख़ातून···!!
रें !···आप को अभी नींद आ जाएगी, और फिर बहुत मीठे-
(रुककर, क्रोध से) इन बुरे ख़्वाबों को बददुआ !···ये मुझ पर
बेगम ?
कर) ख़ामोश ख़ातून !···मेरा मज़ाक़ उड़ा रही है क्या ?···
ब देखने हैं, तो तू भी पहले मेरी तरह बेवा हो जा (रुककर)
तो शादी ही नहीं···(मुंह छिपा कर) या ख़ुदा ! तू किसी को
न बना ! (देखकर) ख़ातून, तू मुझे इस बदशगुनी के लिए माफ़
! !···मैं···!
! आप जो अपने लिए सोचती हैं, वह ग़लत है। आप बेगम
ानियत की रूह ! मलिके-मुअज़्ज़िमा ! जिनके क़दमों पर
हंशाह अपना सर रखकर बैठा है ! उधर शरियत भी आपको
ी है—'मेहर ! तू पाक है, तूने अपने मरे हुए शौहर की याद में

चार साल तक ग़मी मनाई है। चार बार ईद के सुनहले चाँद को तूने नहीं देखा है ! रमज़ान के महीने को तूने ग़मी में काटा है ! ज़िन्दगी के इत्ते लम्बे अर्से को तूने अपने मरे हुए ख़ाविन्द के वास्ते मुहर्रम माना है; तू पाक है मेहर !'···

नूरजहाँ : (**बीच ही में क्रोध से**) यह क्या बक रही है, ख़ातून पाक शेर अफ़गन की याद में तो मैंने ताज़िन्दगी ग़मी मानने की सोची है···चार साल क्या ?

ख़ातून : (**गंभीरता से**) तब तो बहिश्त में भी खलबली मच जाएगी, बेगम !··· फ़रिश्तों की भी दुनिया में सरगोशियां होने लगेंगी—कि मेहर शरियत और अपनी मुहब्बत के ख़िलाफ़ चल रही है।

नूरजहाँ : (**बिगड़कर बैठती हुई**) शोख़ ख़ातून···तू किसकी मुहब्बत का ज़िक्र बार-बार कर रही है ?

ख़ातून : (**गंभीरता से**) शहंशाह जहाँगीर की !

नूरजहाँ : (**दर्द से**) उनकी मुहब्बत; आह ! (**सिरहाने झुककर**) जिन्होंने मेरा प्यारा शेर अफ़गन छीना है ! प्यारा बर्दमान छीना है (**करुणा से**) जिन्होंने मेरा सुहाग छीना है ! मेहर का प्यारा नाम छीन कर जिन्होंने मुझे बेवा नाम दिया है।···उनकी मुहब्बत ! आह ! वे ख़ुश रहें। आह !

[लड़खड़ा कर पलंग से गिरने लगती है, सहसा धड़ाके से दरवाज़ा खुलकर, जहाँगीर का प्रवेश होता है और बाँदी का प्रस्थान।]

जहाँगीर : (**सम्हालते हुए याचना से**) मुझे माफ़ कर दो मेहर !···मेहर, मेहर !··· अपने सलीम को माफ़ कर दो !···सो जाओ मेहर···!

नूरजहाँ : (**चीखकर**) आह ! आपके ये ख़ूनी हाथ ! (**गिड़गिड़ाकर**) ख़ुदा के लिए इन ख़ूनी हाथों ने मुझे से पकड़िए !···मुझे फाँसी पर लटका दीजिए शहंशाह ! लेकिन इन गुनहगार हाथों को मुझसे दूर रखिए !

जहाँगीर : (**करुणा से**) मेहर !···कहो तो इन गुनहगार हाथों को अभी जिस्म से अलग कर दूं !···तराश दूं इन्हें···बोलो···मेहर ! हुक्म दो !

नूरजहाँ : (**घबड़ा कर नीचे खड़ी हो जाती है···और दूर रहती हुई**) नहीं, नहीं, इन्हें दूर रखिए !···अपने पास···काट डालने से इनसे ज़मीन पर ख़ून गिरेगा···बदबू फैलेगी, कीड़े पैदा होंगे।···(**परेशान हो**) गुनाह में बदबू लाने की कोशिश मत कीजिए···शहंशाह !···नहीं तो इस बदबू से सारा हिन्दुस्तान, उसकी तवारीख़ नापाक हो जाएगी !

जहाँगीर : (**दीनता से**) मुझे माफ़ कर दो मेहर ! मैं गुनहगार हूँ ! मैं क़बूल करता हूँ ! अब मुझे माफ़ कर दो मेहर !

नूरजहाँ : (**क्रोध से**) शहंशाह, आप मुझसे माफ़ी माँग कर, बेवा के दामन की हया का मज़ाक उड़ा रहे हैं। मुझ पर तरस खाइए···एक बेवा आप से अर्ज़ कर रही है ! ···आप मुझे यहाँ अकेली छोड़ दें।

जहाँगीर : तुम्हें कौन बेवा कह सकेगा मेहर ! तुम तो सल्तनत की मलिका हो···

ज़िन्दगी का नूर हो ! मुझे माफ़ कर दो मेहर!

नूरजहाँ : मैं ! आपकी कुछ नहीं हूँ···हाँ एक गुनहगार हूँ···ज़िन्दा बेवा हूँ। शरम और हया को बेचकर उनके हरम में साँसें ले रही हूँ, उनके नमक से पल रही हूँ जो मेरे शौहर के ख़ूनी हैं।

जहाँगीर : मैं सब तरह से गुनहगार हूँ मेहर ! पर मैंने यह गुनाह मुहब्बत के नाम पर किया है, तुम्हारे लिए किया है।

नूरजहाँ : (सहम कर, आश्चर्य से) मेरे लिए !

जहाँगीर : (गंभीरता से) हाँ, सिर्फ तुम्हारे लिए, अपनी ज़िन्दगी के लिए (रुककर) मुहब्बत के नाम पर एक गुनाह और करने की सोच रहा हूँ !

नूरजहाँ : (आश्चर्य से) वह क्या ?

जहाँगीर : अगर मेरी मेहर, अपने गुनहगार सलीम को माफ़ नहीं करती है···तो फ़लक के चाँद और सितारो; सब सुन ले—मैं इन्हीं गुनहगार हाथों से अपना गला घोंट लूंगा और मरने के बाद ख़्वाब में मेहर के क़दमों पर अपना सर रखकर पूछूंगा—'मेहर तूने मुझे माफ़ किया कि नहीं ?'

नूरजहाँ : और मैं अगर तब भी न आप को माफ़ करूँ तो ?

जहाँगीर : (गंभीरता से) तब मैं शैतानों के गिरोह में चला जाऊँगा—रात-दिन चलता-फिरता रहूँगा। सूनी रात में, दूर से, बहुत दूर से···चिल्ला-चिल्ला कर कहूँगा—'मैं गुनहगार हूँ, मुहब्बत की राह पर क़दम रखने वाले मुसाफिरो !···मैं गुनहगार हूँ, मुहब्बत की राह से अगर कोई आता है, तो मैं उसका गला घोंट दूंगा !'

नूरजहाँ : (घबड़ा कर) ऐसा आप क्यों कीजिएगा ?

जहाँगीर : क्योंकि तब मैं किसी भी मुहब्बत करने वाले को ज़िन्दा नहीं रहने दूंगा। मुहब्बत और प्यार की दुनिया में सिर्फ जहाँगीर और नूरजहाँ का नाम होगा··· और किसी का नहीं !

नूरजहाँ : सच ! यह आप क्या कह रहे हैं, शहंशाह ?

जहाँगीर : (गंभीरता से) शहंशाह नहीं ! गुनहगार सलीम अपनी उस मेहर से आज माफ़ी माँग रहा है, जब वह शहंशाह अकबर के हरम की एक भोली-भाली बाँदी थी। मैं कबूतरों की एक जोड़ी को अपने हाथों में लिए हुए एक प्यार का नग़मा गुनगुना रहा था—शायद वह मेरी ज़िन्दगी का पहला और आख़िरवाँ नग़मा था।

नूरजहाँ : (बीच ही में घबड़ाकर) नहीं, कुछ नहीं ! मुझे कुछ नहीं याद है।

जहाँगीर : (कहता जा रहा है) उसी प्यार के नग़मे को गुनगुनाता हुआ मैं कबूतरों को प्यार भी करता जाता था—शायद वही मेरा पहला प्यार भी था—ठीक उसी समय भीतर से अब्बा जान ने मुझे पुकारा था।

नूरजहाँ : (सहम कर) लेकिन इससे क्या फ़ायदा, मुझे कुछ नहीं याद है।

जहाँगीर : (मुस्करा कर) याद है तुम्हें मेहर ! मैं तुम्हारी इन ख़ामोश निगाहों में इस प्यार के अफ़साने को तैरता हुआ देख रहा हूँ। हाँ, तब क्या हुआ मेहर, पूरा करने दो इस अफ़साने को ?

नूरजहाँ : (विह्वल हो सर थाम कर) मुझे नहीं याद है मुझे सोचने न दीजिए ! (चीखकर) मुझे कुछ नहीं

जहाँगीर : मुझे याद है मेहर ! उसी वक्त मैंने तुम्हें कबूतरों का जोड़ा सौंप कर अन्दर चला गया था तुम शर्मायी हुई मासूमियत की मुस्कराहट लुटा र

नूरजहाँ : (बेकरार हो) आह !···मत सुनाइए इसे ! आप की मेहरबानी थी—वह मेरा भोला बचपन कि 'दूसरा कबूतर कैसे उड़ गया ?'···मैंने पहले क कह दिया था कि इस तरह उड़ गया।

[चुप हो जाती है। क्षणिक अन्तराल]

जहाँगीर : चुप क्यों हो गई मेहर ! सुनाती जाओ इस अ पहली रोशनी थी, यही मेरे प्यार का पहला चिराग़ गुदा कर, मेरे दिल के हर तार को छू दिया था मेहर से माफ़ी चाहता हूँ शेर अफ़गन की मेहर से नूरजहाँ से !

नूरजहाँ : (पागलों की तरह, खिड़की के पास जाकर, स्वर से) उस मेहर से ! अपनी नूरजहाँ से (ज़ोर (घूम कर) माफ़ कर दूं !···नहीं माफ़ करती ! (लड़खड़ा कर गिरने लगती है) आह ! मैं गिरी

जहाँगीर : (पुकारते हुए) खातून ! खातून !!

खातून : (दौड़कर प्रवेश करते ही) हाज़िर हुई, जहाँपन

जहाँगीर : (गंभीरता से) सँभाल अपनी मलिका को ! पाक जिस्म को नहीं छू सकता ! सम्हाल मेरी मेह सम्हाल कर पलंग पर बैठाती है) मेरे ये हाथ पुकारता···सम्हाल···ले मैं यहाँ से चला जाता हूँ।

नूरजहाँ : (पागलों की तरह स्फुट स्वर से) आपके हाथ हाथ हैं। पाक हाथ हैं, मुझे माफ़ कर दीजिए शह स्वर से) लेकिन आह !···मैं किस से माफ़ी म नहीं ?

[सहम कर इधर-उधर देखती है।]

खातून : यहाँ कोई नहीं, बेगम ! शहंशाह बाहर चले ग

नूरजहाँ : (सहम कर खड़ी हो जाती है) बाहर चले तो नहीं गए हैं ? (खातून को पकड़ कर) तूने देख उन्हें आज बहुत बदशगुन कह दिया है···वे कहाँ तरफ़ से माफ़ी माँग ले ! जा उनसे मेरा प्यार कह

हो ! मुझे माफ़ कर दो मेहर!
कुछ नहीं हूँ···हाँ एक गुनहगार हूँ···ज़िन्दा बेवा हूँ। शरम और
के हरम में साँसें ले रही हूँ, उनके नमक से पल रही हूँ जो मेरे

से गुनहगार हूँ मेहर ! पर मैंने यह गुनाह मुहब्बत के नाम पर
लए किया है।
आश्चर्य से) मेरे लिए !
ने) हाँ, सिर्फ तुम्हारे लिए, अपनी ज़िन्दगी के लिए (रुककर)
र एक गुनाह और करने की सोच रहा हूँ !
वह क्या ?
हर, अपने गुनहगार सलीम को माफ़ नहीं करती है···तो फ़लक
रो; सब सुन ले—मैं इन्हीं गुनहगार हाथों से अपना गला घोंट
बाद ख्वाब में मेहर के क़दमों पर अपना सर रखकर पूछूँगा—
फ़ किया कि नहीं ?'
तब भी न आप को माफ़ करूँ तो ?
)तब मैं शैतानों के गिरोह में चला जाऊँगा—रात-दिन चलता-
नी रात में, दूर से, बहुत दूर से···चिल्ला-चिल्ला कर कहूँगा—
मुहब्बत की राह पर क़दम रखने वाले मुसाफिरो !···मैं गुनहगार
ह से अगर कोई आता है, तो मैं उसका गला घोंट दूंगा !'
ऐसा आप क्यों कीजिएगा ?
मैं किसी भी मुहब्बत करने वाले को ज़िन्दा नहीं रहने दूंगा।
र की दुनिया में सिर्फ जहाँगीर और नूरजहाँ का नाम होगा···
हीं !
आप क्या कह रहे हैं, शहंशाह ?
ने) शहंशाह नहीं ! गुनहगार सलीम अपनी उस मेहर से आज
ह, जब वह शहंशाह अकबर के हरम की एक भोली-भाली बाँदी
की एक जोड़ी को अपने हाथों में लिए हुए एक प्यार का नग़मा
—शायद वह मेरी ज़िन्दगी का पहला और आखिरवाँ नग़मा था।
घबड़ाकर) नहीं, कुछ नहीं ! मुझे कुछ नहीं याद है।
रहा है) उसी प्यार के नग़मे को गुनगुनाता हुआ मैं कबूतरों को
ाता था—शायद वही मेरा पहला प्यार भी था—ठीक उसी
बा जान ने मुझे पुकारा था।
लेकिन इससे क्या फ़ायदा, मुझे कुछ नहीं याद है।
र) याद है तुम्हें मेहर ! मैं तुम्हारी इन खामोश निगाहों में इस
को तैरता हुआ देख रहा हूँ। हाँ, तब क्या हुआ मेहर, पूरा करने
ो ?

नूरजहाँ : (**विह्वल हो सर थाम कर**) मुझे नहीं याद है ! मुझे याद न दिलाइए !··· मुझे सोचने न दीजिए ! (**चीखकर**) मुझे कुछ नहीं याद है !

जहाँगीर : मुझे याद है मेहर ! उसी वक़्त मैंने तुम्हें पहली बार देखा था। मैं तुम्हें कबूतरों का जोड़ा सौंप कर अन्दर चला गया था। और जब लौटकर देखा, तब तुम शर्मायी हुई मासूमियत की मुस्कराहट लुटा रही थीं।

नूरजहाँ : (**बेकरार हो**) आह !···मत सुनाइए इसे !···मत सुनाइए, वह कनीज़ पर आप की मेहरबानी थी—वह मेरा भोला बचपन था—जब आपके यह पूछने पर कि 'दूसरा कबूतर कैसे उड़ गया ?'···मैंने पहले कबूतर को भी हाथ से उड़ाकर कह दिया था कि इस तरह उड़ गया।

[चुप हो जाती है। क्षणिक अन्तराल]

जहाँगीर : चुप क्यों हो गई मेहर ! सुनाती जाओ इस अफ़साने को; ···यही मुहब्बत की पहली रोशनी थी, यही मेरे प्यार का पहला चिराग़ था। तभी किसी ने मुझे गुद-गुदा कर, मेरे दिल के हर तार को छू दिया था। मैं जी उठा था, मैं आज उसी मेहर से माफ़ी चाहता हूँ शेर अफ़गन की मेहर से नहीं, अपनी मेहर से···अपनी नूरजहाँ से !

नूरजहाँ : (**पागलों की तरह, खिड़की के पास जाकर, आसमान को देखती हुई स्फुट स्वर से**) उस मेहर से ! अपनी नूरजहाँ से (**ज़ोर से**) मैं आपको माफ़ कर दूं (**घूम कर**) माफ़ कर दूं !···नहीं माफ़ करती !···नहीं, नहीं माफ़ कर सकती ! (**लड़खड़ा कर गिरने लगती है**) आह ! मैं गिरी···बचाइए···मैं गिरी !

जहाँगीर : (**पुकारते हुए**) खातून ! खातून !!

खातून : (**दौड़कर प्रवेश करते ही**) हाज़िर हुई, जहाँपनाह !

जहाँगीर : (**गंभीरता से**) सँभाल अपनी मलिका को !···मैं इन गुनहगार हाथों से इस पाक जिस्म को नहीं छू सकता ! सम्हाल मेरी मेहर को ! (**खातून नूरजहाँ को सम्हाल कर पलंग पर बैठाती है**) मेरे ये हाथ खूनी हैं, नहीं तो मैं तुझे नहीं पुकारता···सम्हाल···ले मैं यहाँ से चला जाता हूँ। (**प्रस्थान**)

नूरजहाँ : (**पागलों की तरह स्फुट स्वर से**) आपके हाथ खूनी हैं। नहीं, नहीं, मुहब्बत के हाथ हैं। पाक हाथ हैं, मुझे माफ़ कर दीजिए शहंशाह ! (**गिड़गिड़ाती हुई तेज़ स्वर से**) लेकिन आह !···मैं किस से माफ़ी माँग रही हूँ, यहाँ और कोई तो नहीं ?

[सहम कर इधर-उधर देखती है।]

खातून : यहाँ कोई नहीं, बेगम ! शहंशाह बाहर चले गए !

नूरजहाँ : (**सहम कर खड़ी हो जाती है**) बाहर चले गए ?···मुझ से नाराज़ होकर तो नहीं गए हैं ? (**खातून को पकड़ कर**) तूने देखा है, मेरे मालिक को ?···मैंने उन्हें आज बहुत बदशगुन कह दिया है···वे कहाँ गए खातून !···जा उनसे मेरी तरफ़ से माफ़ी माँग ले ! जा उनसे मेरा प्यार कह आ···मैं हार गई खातून !

[खातून प्रसन्नता से भीतर भाग जाती है, क्षणभर बाद पृष्ठभूमि में उठती हुई वाद्य-ध्वनि।]

नूरजहाँ : (खिड़की की ओर बढ़कर) ये खुशी के बाजे कहाँ बजाए जा रहे हैं ?···यह तारों से भरा आसमान कितना प्यारा है !

(दौड़ती हुई खातून का प्रवेश)···तू कह आई खातून···

खातून : हाँ कह आई !···यह सुनिए मुहब्बत की फ़तहयाबी के शाही बाजे !···सुनिए कोई कुछ मुनादी भी कर रहा है।

आवाज : (दूर से आती हुई) "मलिके-मुअज्जिमा, नूरजहाँ बेगम और शहंशाह जहाँगीर की सल्तनत में अब कोई भूखा ग़रीब नहीं रह सकता! इसी वक्त से शाही खज़ाना, रिआया के लिए खोल दिया जाता है ! प्यार और मुहब्बत की सल्तनत में···!

[स्वर धीरे-धीरे दूर चला जाता है।]

खातून : या खुदा ! तूने यह बहुत अच्छा किया !···क़ैसरे आलम ! आपने मुग़ल तवारीख और उसके तमद्दुन को खत्म होने से बचाया। आज से एक नयी सल्तनत प्यार और मुहब्बत की बुनियाद पर खड़ी हुई और उसमें आप का नाम हमेशा के लिए रौशन रहेगा।

नूरजहाँ : खातून, तू इस वक्त ठीक कह रही है, लेकिन···?

खातून : लेकिन क्या बेगम···?

नूरजहाँ : (ठंडी साँस लेकर पलंग पर बैठती हुई)···यही कि आगे आने वाले इंसान इसे भूल जाएँगे, मेरी तवारीख ग़लत लिखी जाएगी। शहंशाह जहाँगीर को मैं इतने दिनों से अपना दुश्मन समझने की कोशिश कर रही थी, पर नहीं कर सकी खातून ! (हाथ मलती हुई) लोग इसे भूल जाएँगे कि बेबस नूरजहाँ और जहाँगीर का ताल्लुक सच्चा इश्क था, उस पहली मुहब्बत की डोर से बँधी थी बेचारी, जिसे वह कितने सालों से तोड़ना चाहती थी, पर नहीं तोड़ सकी। आने वाले लोग इस राज़ को नहीं समझेंगे खातून !···(करुणा से) और पागल दुनिया यह कह कर मेरा मज़ाक उड़ाएगी कि उफ़ ! नूरजहाँ एक बुरी बेगम थी।

खातून : (समीप आकर समझाती हुई) बेगम ! ऐसी बातें नहीं ! फलक़ के चाँद और सितारे आपके पाक इश्क़ की तवारीख लिखेंगे···सूफी और मुल्ला, इश्क की गहराई में पहुँचा हुआ कोई भी इन्सान आपकी याद को सिज्दा देगा।

नूरजहाँ : (उतावली-सी) नहीं, खातून···जा, क़लम और कागज़ ला। इसी वक्त मैं अपने इश्क़ की तवारीख लिखूंगी, मुहब्बत की शायरी में अपना बयान छोड़ जाऊँगी, नहीं तो दुनिया को ग़लतफ़हमी होगी और मुहब्बत बदनाम की जाएगी।

[बाहर दरवाज़े पर किसी की आहट, कोई अन्दर आना चाहता है।]

नूरजहाँ : (उत्सुकता से) खातून ! देख कोई भीतर आना चाहता है !—हटा ले इस पर्दे को।···और तू बाहर चली जा !

[पर्दा हटते ही, कमरे में लैला का प्रवेश, मुग़ली फिरोजी रंग की ओढ़नी; आँखों में गुस्सा, ओंठों पर अदब से बाहर जाती है।]

लैला : (प्रवेश करते ही व्यंग्य से) आदाब अम्मी ! (मुग़ल ताज की मलके मुअज्जिमा !···अब मैं आप कहाँ ?

नूरजहाँ : (बढ़कर प्यार से लैला को दामन में लेकर) य···आ···तू मेरी बेटी क्यों नहीं !

लैला : (नूरजहाँ से अलग होकर दूसरी ओर उदासीनता कि मैं सो रही थी और बुरा ख्वाब देख रही थी—ए उठी। और जागते ही मैंने, शाही बाजों और हुजूम सुना—'नूरजहाँ' मुग़ल तख्त की मलका !'

नूरजहाँ : (प्यार से) सच बेटी !···क्या तुझे इसकी खुशी

लैला : (तिलमिलाकर) बिलकुल नहीं ! ख्वाब में भी (रुककर) खैर ! मैं इसके लिए आपको मुबारकबाद कर) उफ़ ! कितना बुरा ख्वाब था !

नूरजहाँ : (सहमकर) कौन-सा ख्वाब बेटी ?

लैला : ख्वाब यह था कि; मेरे अब्बा मरे पड़े हैं !···और और हया को पीकर मरहूम अब्बा शेर अफ़गन की ल की तरह हँस रही है। थोड़ी देर के बाद एक डाकू··· बदबू निकल रही थी, घोड़े पर चढ़कर आता है औ है।

नूरजहाँ : (डर से सिहर कर) आह ! बहुत बुरा ख्वाब तू मेरे पास सोया करना !

लैला : (झुंझलाकर) आप किसको बार-बार बेटी कह रहीं मेरा नाम सिर्फ लैला है !

नूरजहाँ : (विह्वल हो) तू मेरी बेटी नहीं ! लैला मेरी बे रही हूँ (धमाके से पलंग पर बैठ जाती है) लैला मेरी

लैला : (बिगड़कर) नहीं, बिलकुल नहीं, आप झूठ बोल मेहरुन्निसा था, वह मरहूम शेर अफ़गन की बीवी थी हैं !···आप जहाँगीर की बेगम हैं, मेरी अम्मी नहीं

नूरजहाँ : (उतावली हो) मेरे खून के किसी क़तरे से पूछ, है !···मैं ही मेहरुन्निसा हूँ !

लैला : ग़लत !···आप मुझे धोखा नहीं दे सकतीं ! (दर्द रात इन्तक़ाल कर गई (रुककर कड़े स्वर में) आपके

से भीतर भाग जाती है, क्षणभर बाद पृष्ठभूमि में उठती हुई

ओर बढ़कर) ये खुशी के बाजे कहाँ बजाए जा रहे हैं ?···यह
मान कितना प्यारा है !
न का प्रवेश)···तू कह आई खातून···
···यह सुनिए मुहब्बत की फ़तहयाबी के शाही बाजे ! ···सुनिए
ी कर रहा है ।
हुई) "मलिके-मुअज़्ज़िमा, नूरजहाँ बेगम और शहंशाह जहाँगीर
कोई भूखा ग़रीब नहीं रह सकता ! इसी वक्त से शाही खज़ाना,
ोल दिया जाता है ! प्यार और मुहब्बत की सल्तनत में···!
र चला जाता है ।]
यह बहुत अच्छा किया !···क़ैसरे आलम ! आपने मुग़ल
के तमद्दुन को खत्म होने से बचाया । आज से एक नयी सल्तनत
की बुनियाद पर खड़ी हुई और उसमें आप का नाम हमेशा के
।
वक्त ठीक कह रही है, लेकिन···?
म···?
कर पलंग पर बैठती हुई)···यही कि आगे आने वाले इंसान
री तवारीख़ ग़लत लिखी जाएगी । शहंशाह जहाँगीर को मैं इतने
श्मन समझने की कोशिश कर रही थी, पर नहीं कर सकी
लती हुई) लोग इसे भूल जाएँगे कि बेबस नूरजहाँ और जहाँगीर
इश्क था, उस पहली मुहब्बत की डोर से बँधी थी बेचारी, जिसे
ने तोड़ना चाहती थी, पर नहीं तोड़ सकी । आने वाले लोग इस
ेंगे ख़ातून !···(करुणा से) और पागल दुनिया यह कह कर
गी कि उफ़ ! नूरजहाँ एक बुरी बेगम थी ।
समझाती हुई) बेगम ! ऐसी बातें नहीं ! फलक़ के चाँद और
क इश्क़ की तवारीख़ लिखेंगे···सूफी और मुल्ला, इश्क़ की
आ कोई भी इन्सान आपकी याद को सिज्दा देगा ।
) नहीं, ख़ातून···जा, क़लम और कागज़ ला । इसी वक्त मैं
वारीख़ लिखूंगी, मुहब्बत की शायरी में अपना बयान छोड़
निया को ग़लतफ़हमी होगी और मुहब्बत बदनाम की जाएगी ।
किसी की आहट, कोई अन्दर आना चाहता है ।]
) ख़ातून ! देख कोई भीतर आना चाहता है !—हटा ले इस
बाहर चली जा !

[पर्दा हटते ही, कमरे में लैला का प्रवेश, मुग़ली सलवार, लम्बी चुस्त कुर्ती, फिरोजी रंग की ओढ़नी; आँखों में गुस्सा, ओंठों पर आग, पैरों में हलचल । ख़ातून अदब से बाहर जाती है ।]

लैला : (प्रवेश करते ही व्यंग्य से) आदाब अम्मी ! (रुककर) नहीं, नहीं, भूल गई, मुग़ल ताज की मलके मुअज़्ज़िमा !···अब मैं आप की बेटी कहाँ, आप मेरी अम्मी कहाँ ?

नूरजहाँ : (बढ़कर प्यार से लैला को दामन में लेकर) यह क्या तू बक रही है, बेटी ! ···आ···तू मेरी बेटी क्यों नहीं !

लैला : (नूरजहाँ से अलग होकर दूसरी ओर उदासीनता से देखती हुई) बात यह है कि मैं सो रही थी और बुरा ख़्वाब देख रही थी—एक बहुत बुरा ख़्वाब । मैं चौंक उठी । और जागते ही मैंने, शाही बाजों और हुजूम के बीच लोगों से कहते हुए सुना—'नूरजहाँ' मुग़ल तख़्त की मलका !'

नूरजहाँ : (प्यार से) सच बेटी !···क्या तुझे इसकी खुशी नहीं ?

लैला : (तिलमिलाकर) बिलकुल नहीं ! ख़्वाब में भी मैं ऐसा नहीं सोच रही थी (रुककर) ख़ैर ! मैं इसके लिए आपको मुबारक़बाद देने आई हूँ !···(साँस भर कर) उफ़ ! कितना बुरा ख़्वाब था !

नूरजहाँ : (सहमकर) कौन-सा ख़्वाब बेटी ?

लैला : ख़्वाब यह था कि; मेरे अब्बा मरे पड़े हैं !···और मेरी अम्मी मेहरुन्निसा, शर्म और हया को पीकर मरहूम अब्बा शेर अफ़गन की लाश पर, नंगी बैठी हुई पागलों की तरह हँस रही है । थोड़ी देर के बाद एक डाकू···जिसके बदन की रग-रग से बदबू निकल रही थी, घोड़े पर चढ़कर आता है और अम्मी को लेकर भाग जाता है ।

नूरजहाँ : (डर से सिहर कर) आह ! बहुत बुरा ख़्वाब तूने देखा है बेटी ! आज से तू मेरे पास सोया करना !

लैला : (झुंझलाकर) आप किसको बार-बार बेटी कह रही हैं ? आपकी बेटी मर गई ! मेरा नाम सिर्फ लैला है !

नूरजहाँ : (विह्वल हो) तू मेरी बेटी नहीं ! लैला मेरी बेटी नहीं, आह ! मैं क्या सुन रही हूँ (धमाके से पलंग पर बैठ जाती है) लैला मेरी बेटी है ! तू मेरी बेटी है !

लैला : (बिगड़कर) नहीं, बिलकुल नहीं, आप झूठ बोलती हैं; मेरी अम्मी का नाम मेहरुन्निसा था, वह मरहूम शेर अफ़गन की बीवी थी···आपका नाम तो नूरजहाँ हैं !···आप जहाँगीर की बेगम हैं, मेरी अम्मी नहीं !

नूरजहाँ : (उतावली हो) मेरे ख़ून के किसी क़तरे से पूछ, वह कह देगा लैला मेरी बेटी है !···मैं ही मेहरुन्निसा हूँ !

लैला : ग़लत !···आप मुझे धोखा नहीं दे सकतीं ! (दर्द से) मेरी प्यारी अम्मी, आज रात इन्तक़ाल कर गई (रुककर कड़े स्वर में) आपको नहीं पता ! उठकर देखिए

फ़लक पै वे दूर के सफ़ेद सितारे मेरी अम्मी की ग़मी में डूबने जा रहे हैं !··· (**बाहर देखती हुई**) वह देखिए, आसमान का मुरझाया हुआ चाँद अब डूबने जा रहा है। (**रुककर**) अभी सुबह होगी; आप भी देखिएगा यह सर-सब्ज़ ज़मीं, सारी क़ुदरत किसी के बहे हुए आँसुओं से भीगी होगी ! अभी सुबह होगी,···मशरिक़ में ख़ूनी आफ़ताब निकलेगा, इधर मेरी प्यारी अम्मी का जनाज़ा निकलेगा (**चौंककर**) सुनिए···यह बहती हुई हवा इसी वक्त से मर्सिया पढ़ रही है ।

नूरजहाँ : (**विह्वल हो तकिए में अपना मुंह छिपाकर चीख उठती है**) तू यह क्या कह रही है, लैला !···लैला ! !

लैला : यही कह रही हूँ कि सुबह होते ही यह आफ़ताब की किरनें, यह बहती हुई हवा, इस ख़बर को कि मेहर ने आज रात को उस जहाँगीर को अपना शौहर क़बूल किया है, जो उसके शेर अफ़ग़ान का क़ातिल है; दुनिया के कोने-कोने में फैला देगी। आप अभी इसे नहीं समझ रही है ?

नूरजहाँ : (**सर उठाकर**) समझ रही हूँ लैला !···मैं इसके लिए तैयार भी हूँ। (**गंभीरता से**) मैंने समझ-बूझ कर तड़पती हुई बिजली में अपना आशियाना बनाया है (**उठकर**) पर तुझे मेरे सामने ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए बेटी !

लैला : (**व्यंग्य से**) ठीक है, मुझे यह सब नहीं कहना चाहिए ! मैं अपने कहे हुए इन लफ़्ज़ों को वापस लेती हूँ,(**रुककर**) पर आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि आगे जो मुग़ल-तवारीख़ लिखी जाएगी उसमें आपका भी नाम आएगा, तब आपको यह अहसास होना चाहिए कि लोग आपको क्या कहेंगे ?···उफ़ ! मुग़ल तवारीख़ में एक नूरजहाँ भी थी ! (**आश्चर्य से**) अरे ! आप रो रही हैं ?···अरे !

नूरजहाँ : (**रुंधे गले से**) नहीं, बेटी ! तू कहती जा, मुझे जी भर गालियाँ देती जा ! मेरा गला घोंटती जा ! मैं कहाँ रो रही हूँ ?···(**दर्द से**) यह आँसू नहीं, ख़ून है बेटी !···ख़ून···

लैला : (**गंभीरता से**) बेहतर है आज इसी वक्त रो लें !···जी भर के रो लें; आपने जहाँगीर को क़बूल करके इतना बड़ा गुनाह किया है कि जिसकी कोई सज़ा नहीं, कोई माफी नहीं !···रो लीजिए···अपने गुनाहों पर···रो लीजिए ।

[नूरजहाँ, जैसे कुछ सुनती हुई···न जाने कहाँ देख रही है ।]

लैला : ख़ामोश क्यों हो गईं ? अब भी आपको सँभलने का वक्त है !···अब भी आप अपने ख़ून का बदला चुका सकती हैं !

नूरजहाँ : (**निःश्वास भर के**) ख़ून का बदला !···आह, इश्क तू फ़ना क्यों नहीं हो जाता ?

लैला : हटाइए इन इश्क़ की बातों को !···मैं आपको अपनी सलाह देती हूँ, आपने जहाँगीर को क़बूल कर लिया है, कोई बात नहीं । आप मेरी एक बात मानें, सारे मुग़ल खानदान को नेस्तोनाबूद करने का मौक़ा हाथ में है !···आप जहाँगीर के गले लिपट कर उसका गला घोट दीजिए !···उसकी बदहोश आँखों में तेज़ाब

डाल दीजिए, शाही बावर्ची और खानसामे से मि
दीजिए !···नूरजहाँ···होश में आइए !···प्यारी

नूरजहाँ : (**सोचती हुई**) तू ठीक कह रही है बेटी ! ।
है, ख़ून का बदला ख़ून से लूँ ! प्यार से गले लिपट
मुग़ल खानदान को बर्बाद कर दूँ ? (**रुककर फि
टेककर**)···नहीं, नहीं क़हर नाज़िल होगा !···
इश्क़ में बेवफ़ाई की कोई सज़ा नहीं बेटी !···

लैला : ऐसा क्यों···?···

नूरजहाँ : (**लैला को देखकर बढ़ती हुई**) बता दूँ बेटी

लैला : हाँ, क्यों नहीं !

नूरजहाँ : (**गंभीरता से**) सुन, जहाँगीर से मुझसे
मुहब्बत !!···जो हश्र तक फ़ना नहीं !···शरि
बेगम हूँ···तू भी···जहाँगीर के ख़ून का क़तरा है

लैला : (**आश्चर्य से**) इश्क़ !···मुहब्बत !!···यह कौ
रही हैं आप ?

नूरजहाँ : (**विह्वल हो**) आह !·· अच्छा है···तू इसे
भी एक दिन इसी तरह हार होगी !···तेरे भी
तरह तुझे भी जलाएगी ! ज़िन्दा जलाएगी···! (क
ख़ुदा तू किसी को मुहब्बत करने का ज़ज्बा न दे
दे !···और दे भी तो लोहे का दिल और पत्थर क
आँखों को फोड़ दे । ख़ुदा मैं लैला की तरफ़ से तुझसे
से मुहब्बत करने के पहले ही मर जाए ?

[लड़खड़ाकर गिरने लगती है]

लैला : (**सम्हालती हुई**) अम्मी मुझे माफ़ कर दो !···
···इन आँसुओं को मैं सुखा दे रही हूँ अम्मी (**सम
···सो जाइए···आप ! आराम कीजिए···

नूरजहाँ : (**प्यार से लैला को अपने पास लेकर**) सच बे
रहा है !··· (**प्यार से गले लगाकर**) बड़ी अच्छी है
दुनिया में तू किसी से मुहब्बत न करना। इसमें
मुहब्बत को हिक़ारत की नज़र से देखेंगे !···हँसी
ग़लत लिखी जाती है ! अन्धी और ज़लील दुनिया
नाम काफी होगा, बेटी !

लैला : (**दुःख से**) ऐसा न कहिए···अम्मी !

नूरजहाँ : नहीं, बेटी ! मैं ठीक कर रही हूँ ! तू मेरी बे
तो आगे आने वाले इन्सान क्या समझेंगे ? लोग सि

सफ़ेद सितारे मेरी अम्मी की ग़मी में डूबने जा रहे हैं !··· (**बाहर**
देखिए, आसमान का मुरझाया हुआ चाँद अब डूबने जा रहा है।
सुबह होगी; आप भी देखिएगा यह सर-सब्ज़ ज़मीं, सारी क़ुदरत
आँसुओं से भीगी होगी ! अभी सुबह होगी,···मशरिक़ में ख़ूनी
गा, इधर मेरी प्यारी अम्मी का जनाज़ा निकलेगा (**चौंककर**)
ी हुई हवा इसी वक़्त से मर्सिया पढ़ रही है।
तकिए में अपना मुँह छिपाकर चीख उठती है) तू यह क्या कह
'लैला !!
ं कि सुबह होते ही यह आफ़ताब की किरनें, यह बहती हुई हवा,
मेहर ने आज रात को उस जहाँगीर को अपना शौहर क़बूल
क शेर अफ़गान का क़ातिल है; दुनिया के कोने-कोने में फैला देगी।
हीं समझ रही है ?
र) समझ रही हूँ लैला !···मैं इसके लिए तैयार भी हूँ।
ने समझ-बूझ कर तड़पती हुई बिजली में अपना आशियाना बनाया
तुझे मेरे सामने ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए बेटी !
ीक है, मुझे यह सब नहीं कहना चाहिए ! मैं अपने कहे हुए इन
लेती हूँ,(**रुककर**) पर आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि आगे
ख़ लिखी जाएगी उसमें आपका भी नाम आएगा, तब आपको यह
हिए कि लोग आपको क्या कहेंगे ?···उफ़ ! मुग़ल तवारीख़ में
ी ! (**आश्चर्य से**) अरे ! आप रो रही हैं ?···अरे !
) नहीं, बेटी ! तू कहती जा, मुझे जी भर गालियाँ देती जा !
जा ! मैं कहाँ रो रही हूँ ?···(**दर्द से**) यह आँसू नहीं, ख़ून है

बेहतर है आज इसी वक़्त रो लें !···जी भर के रो लें; आपने
ूल करके इतना बड़ा गुनाह किया है कि जिसकी कोई सज़ा नहीं,
!···रो लीजिए···अपने गुनाहों पर···रो लीजिए।
छ सुनती हुई···न जाने कहाँ देख रही है।]
ो गईं ? अब भी आपको सँभलने का वक़्त है !···अब भी आप
दला चुका सकती हैं !
र के) ख़ून का बदला !···आह, इश्क़ तू फ़ना क्यों नहीं हो

क़ को बातों को !···मैं आपको अपनी सलाह देती हूँ, आपने
ल कर लिया है, कोई बात नहीं। आप मेरी एक बात मानें, सारे
को नेस्तोनाबूद करने का मौक़ा हाथ में है !···आप जहाँगीर के
उसका गला घोट दीजिए !···उसकी बदहोश आँखों में तेज़ाब

डाल दीजिए, शाही बावर्ची और खानसामे से मिलकर सब खाने में ज़हर मिलवा दीजिए !···नूरजहाँ···होश में आइए !···प्यारी मेहर !···मेरी प्यारी अम्मी !

नूरजहाँ : (**सोचती हुई**) तू ठीक कह रही है बेटी ! (**स्फुट स्वर में**) ठीक सलाह देती है, ख़ून का बदला ख़ून से लूँ ! प्यार से गले लिपटकर, जहाँगीर का गला घोंट दूँ ! मुग़ल ख़ानदान को बर्बाद कर दूँ ? (**रुककर फिर दौड़ती हुई···खिड़की पर सर टेककर**)···नहीं, नहीं क़हर नाज़िल होगा !···दोज़ख़ भी हमें जगह न देगा··· इश्क़ में बेवफ़ाई की कोई सज़ा नहीं बेटी !···

लैला : ऐसा क्यों···?···

नूरजहाँ : (**लैला को देखकर बढ़ती हुई**) बता दूँ बेटी ! समझ सकेगी तू !

लैला : हाँ, क्यों नहीं !

नूरजहाँ : (**गंभीरता से**) सुन, जहाँगीर से मुझसे इश्क़ है। सच्चा इश्क़ !··· मुहब्बत !!···जो हश्र तक फ़ना नहीं !···शरियत और ईमान से मैं उन्हीं की बेगम हूँ···तू भी···जहाँगीर के ख़ून का क़तरा है !···सलीम का प्यार है तू !

लैला : (**आश्चर्य से**) इश्क़ !···मुहब्बत !!···यह कौन-सी बला है ?···यह क्या कह रही हैं आप ?

नूरजहाँ : (**विह्वल हो**) आह !·· अच्छा है···तू इसे न समझ, लैला ! नहीं तो तेरी भी एक दिन इसी तरह हार होगी !···तेरे भी बेटी पैदा होगी !···वह इसी तरह तुझे भी जलाएगी ! ज़िन्दा जलाएगी···! (**करुणा से बाहर देखती हुई**) या ख़ुदा तू किसी को मुहब्बत करने का ज़ज़्बा न दे !···तू किसी और को दिल न दे !···और दे भी तो लोहे का दिल और पत्थर की आँखें दे। इन तमाम प्यार की आँखों को फोड़ दे। ख़ुदा मैं लैला की तरफ़ से तुझसे दुआ माँगती हूँ, कि यह किसी से मुहब्बत करने के पहले ही मर जाए ?

[लड़खड़ाकर गिरने लगती है]

लैला : (**सम्हालती हुई**) अम्मी मुझे माफ़ कर दो !···आप पर मुझे दर्द आ रहा है ! ···इन आँसुओं को मैं सुखा दे रही हूँ अम्मी (**सम्हालकर पलंग पर बैठाती हुई**) ···सो जाइए···आप ! आराम कीजिए···

नूरजहाँ : (**प्यार से लैला को अपने पास लेकर**) सच बेटी !···तुझे मुझ पर दर्द आ रहा है !··· (**प्यार से गले लगाकर**) बड़ी अच्छी है, मेरी बिट्टी !···इस पाप की दुनिया में तू किसी से मुहब्बत न करना। इसमें गुनाह है !···लोग इश्क़ और मुहब्बत को हिक़ारत की नज़र से देखेंगे !···हँसी उड़ाएँगे ! बेटी ! यहाँ तवारीख़ ग़लत लिखी जाती है ! अन्धी और जलील दुनिया के हँसने के लिए नूरजहाँ का ही नाम काफी होगा, बेटी !

लैला : (**दुःख से**) ऐसा न कहिए···अम्मी !

नूरजहाँ : नहीं, बेटी ! मैं ठीक कर रही हूँ ! तू मेरी बेटी होकर, जिसे नहीं समझती, तो आगे आने वाले इन्सान क्या समझेंगे ? लोग सिर्फ़ यही समझेंगे कि नूरजहाँ ने

अपने शौहर के क़ातिल से शादी की है।···वे इश्क़ की उस पतली और सफेद रस्सी को नहीं देख सकेंगे जो खुदा और ईमान से भी बढ़कर है !···उन्हें यह छोटा-सा किस्सा कौन सुनाएगा कि मुझसे शेर अफ़ग़ान की शादी के पहले, सलीम ने ही मेरी इन हथेलियों में मेंहदी लगाई थी !···इश्क हुआ था !···मैं एक सौदागर से खरीदी हुई एक ग़रीब लड़की थी, अकबरे आजम ने, सलीम के इश्क को देखकर, मुग़ल खानदान की इज्ज़त क़ायम रखने के लिए, मुझे सलीम से दूर कर दिया था, ···मैं ज़बरन शेर अफ़ग़ान को दे दी गई थी, बेटी !

लैला : (**साँस निकाल कर**) ओह ! आप कितनी पाक हैं, अम्मी ! मुझे माफ़ कीजिएगा !···मैंने आपको बहुत बुरा कहा है।

नूरजहाँ : मुझे कोई एतराज़ नहीं बेटी ! कोई मलाल नहीं ! लेकिन यही सवाल मैं अभी अपने शहंशाह से भी करूँगी ! क्या उन्होंने मुझे माफ कर दिया होगा ! मैंने भी उनसे बहुत सख्त कलाम किया है, उनके दिल पर चोट पहुँचाई है।

लैला : (**दरवाजे के पर्दे से**) अम्मी ! देखिए···शहंशाह खुद इधर तशरीफ़ ला रहे हैं। बहुत खुश नज़र आ रहे हैं अम्मी !···

[जहाँगीर का प्रवेश, दोनों पलंग से उठ जाती हैं।]

लैला : (**अदब से**) आदाब, अब्बाजान !

जहाँगीर : (**प्यार से लैला को दामन में ले**) आह ! मेरी प्यारी शहज़ादी !···दुआ··· प्यार···तुझे बेटी !

नूरजहाँ : (**बीच ही में बढ़कर**) नहीं,···रुकिए ! लैला को बेटी कहने के पहले, आपसे मेरी एक इल्तिजा है।

जहाँगीर : इल्तिज़ा नहीं !···हुक्म दो !···हुक्म ! नूरजहाँ का इशारा ही जहाँगीर के लिए काफी है।

नूरजहाँ : इल्तिजा यह है कि लैला को बेटी कहकर प्यार करने के पहले, आपको हिन्दुस्तान भर की बेटियों को अपनी लैला मानना है और सारी रियाया को अपना दोस्त, और अपने खून का क़तरा समझना है।

जहाँगीर : हमें क़बूल है बेगम ! क़बूल है !! हम काँपते हुए तुम्हारे उस पाक दिल को देख रहे हैं, जहाँ तुमने हमारी मुहब्बत को छिपा कर रक्खा था···इस मुहब्बत की तवारीख पर धब्बा नहीं आने पाएगा, बेगम !

नूरजहाँ : (**प्यार से**) आह ! आप कितने अच्छे हैं !

जहाँगीर : (**भावुकता से—नूरजहाँ की ओर बढ़कर**) आह ! आज दिल के हर पहलू में एक जन्नत नज़र आ रही है।

नूरजहाँ : मुझे उम्मीद दिलाइए, शहंशाह ! मेरी इन हथेलियों में मेंहदी लगाने के बदले आप अपने इक़बाल को लिख दीजिए !

जहाँगीर : यह सब होगा बेगम ! तुम इतना परेशान क्यों हो ?

नूरजहाँ : मैं इसलिए परेशान होती हूँ शहंशाह, कि मुझे हिन्दुस्तान के हर दिल पर अपनी सच्ची तवारीख लिखनी है। हर दिल को फूल की तरह बना देना चाहती हूँ, जिसमें मासूमि दिल को मैं मुहब्बत का सबक़ सिखला कर लबाल हर दिल, इश्क और मुहब्बत की गहराई को मह समझे, उस पर कभी दो आँसू बहाए !

जहाँगीर : (**आश्चर्य से**) क्या तुम्हें लोग ग़लत समझ हो !···क्या कभी यह भुलाया जा सकता है ?

नूरजहाँ : (**उदासी से**) हाँ, शहंशाह ! यह सब मुमकि मरहूम शेर अफ़ग़ान को सोचेंगे फिर मुझे सोचेंगे औ कि नूरजहाँ शाही हरम में रहने के लिए गिरी ! एक बेटी लैला की तरह, मुझे ग़लत सोचकर बददु

जहाँगीर : (**दुःखी होकर**) तो इसके लिए क्या किया ज

नूरजहाँ : इसका एक तरीका है मेरे मालिक !

जहाँगीर : कौन-सा तरीका ?

[दूर से सुबह की अज़ान देने की आवाज़।]

नूरजहाँ : सुन लीजिए यह सुबह की अज़ान, शहंशाह ! आ रही है कि वह हम लोगों की इश्क़ और मुह देखेगा। मेरे मालिक ! आपको नूरजहाँ की मुहब्ब शराब से तोबा कर लीजिए ! आफ़ताब निकलते और बोतलों को तोड़वा दीजिए, मेरे नूर !

जहाँगीर : (**प्रसन्नता से**) और बेगम !···और भी को

नूरजहाँ : हाँ, अभी दरबारे-खास लगने के पहले इस लटकवा दीजिए—बहुत लम्बी और मज़बूत !··· और मज़बूत होता है। जहाँगीर और नूरजहाँ की अकबर आजम की रूह आए !···बहिश्त से खुश ह

लैला : और मेरी अम्मी की तवारीख बहिश्त के फरिश्ते

बाहर देखकर) कितना सुहाना वक्त है अम्मी ! फूट रहीं हैं···वह आफ़ताब निकल रहा है।

[नूरजहाँ जहाँगीर से सटी हुई खिड़की से बाहर देख आँखें बंद सी हैं···लैला उन दोनों को देख रही है।]

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।

अपनी सच्ची तवारीख लिखनी है। हर दिल को मैं प्यार और मुहब्बत देकर उस फूल की तरह बना देना चाहती हूँ, जिसमें मासूमियत और खुशबू होती है। हर दिल को मैं मुहब्बत का सबक सिखला कर लबालब कर देना चाहती हूँ; जिससे हर दिल, इश्क और मुहब्बत की गहराई को महसूस करे—नूरजहाँ को, दुनिया समझे, उस पर कभी दो आँसू बहाए !

जहाँगीर : (**आश्चर्य से**) क्या तुम्हें लोग ग़लत समझ सकते हैं, बेगम तुम कितनी पाक हो !···क्या कभी यह भुलाया जा सकता है ?

नूरजहाँ : (**उदासी से**) हाँ, शहंशाह ! यह सब मुमकिन है ! आगे के हर आने वाले मरहूम शेर अफग़न को सोचेंगे फिर मुझे सोचेंगे और फिर सरगोशियाँ कर सकते हैं कि नूरजहाँ शाही हरम में रहने के लिए गिरी ! अपने को धोखा दिया और हर एक बेटी लैला की तरह, मुझे ग़लत सोचकर बददुआ दे सकती है।

जहाँगीर : (**दुःखी होकर**) तो इसके लिए क्या किया जाए बेगम !

नूरजहाँ : इसका एक तरीका है मेरे मालिक !

जहाँगीर : कौन-सा तरीका ?

[दूर से सुबह की अज़ान देने की आवाज़।]

नूरजहाँ : सुन लीजिए यह सुबह की अज़ान, शहंशाह ! खुदा के पास से यह आवाज़ आ रही है कि वह हम लोगों की इश्क़ और मुहब्बत की गहराई और ईमानदारी देखेगा। मेरे मालिक ! आपको नूरजहाँ की मुहब्बत की कसम, आप इसी वक्त से शराब से तोबा कर लीजिए ! आफताब निकलते ही तमाम शराब की सुराहियों और बोतलों को तोड़वा दीजिए, मेरे नूर !

जहाँगीर : (**प्रसन्नता से**) और बेगम !···और भी कोई हुक्म ?

नूरजहाँ : हाँ, अभी दरबारे-खास लगने के पहले इस महल से एक सोने की जंजीर लटकवा दीजिए—बहुत लम्बी और मज़बूत !···इश्क़ और ईमान जितना लम्बा और मज़बूत होता है। जहाँगीर और नूरजहाँ की सल्तनत में फिर से अशोक और अकबर आज़म की रूह आए !···बहिश्त से खुश होकर वे हमें दुआ दें !

लैला : और मेरी अम्मी की तवारीख बहिश्त के फरिश्ते लिखें···(**रुककर खिड़की से बाहर देखकर**) कितना सुहाना वक्त है अम्मी ! वह देखिए···मशरिक में किरनें फूट रहीं हैं···वह आफ़ताब निकल रहा है।

[नूरजहाँ जहाँगीर से सटी हुई खिड़की से बाहर देख रही है, खुशी से जहाँगीर की आँखें बंद सी हैं···लैला उन दोनों को देख रही है।]

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

□

जहाँनारा का स्वप्न

पात्र

जहाँनारा	:	शाहजहाँ की बड़ी शहज़ादी, उम्र 22 वर्ष
आशना	:	जहाँनारा की बाँदी, उम्र 18 वर्ष
छत्रसाल	:	बूँदी के रावराजा

समय : औरंगज़ेब-काल

स्थान : आगरे का क़िला

[आगरा के क़िले में एक शाही तरीके पर सजा हुआ
दो दरवाज़े जिस पर प्याज़ी रंग के बेशक़ीमती पर्दे
खिड़कियाँ, बीच की खिड़की अपेक्षाकृत चौड़ी। खिड़
क़रीने से एक ओर समेट दिए गए हैं। पीछे की दीवा
खिड़की जो दूसरी ओर शाहजहाँ के कमरे में खुलती
कमरे में शमादान और दूसरी ओर ताज़े फूलों के
की नीले रंग की शलवार जिस पर चिकन के काम
कुर्ती और पन्नों की कमर-पेटी, जिसमें छोटी-छोटी
हैं। इन सब पर मोतियों से गुथी हुई फ़िरोज़ी रंग
मोतियों की दो लड़ियाँ जिसके बीच में पुखराज चमक
की मखमली जूतियाँ। शहज़ादी, चिन्तित-गंभीर मु
बैठी है। नीचे फ़र्श पर ईरानी कालीन जिस पर आ
ओर देखती हुई बैठी है।]

जहाँनारा : (एकाएक गंभीरता से बीच की खिड़की से बा
के उस पार कितना सूना लग रहा है !···कितना
नहीं देखूंगी।···वह है अब्बाजान का मुनव्वर ताज···
···आज मैं इसे देखती रहूँगी। इसके पीछे दिन भर
गुरूब हो चुका है।···आह ! अब तो ताजमहल के
जाने क्या सूना-सूना स्याह-सा छाता जा रहा है !
आह···मानो फिज़ा, खुद औरंगज़ेब का शाही प
है—चुप ! चुप !! खामोश !!!

आशना : शहज़ादी !···आज आप बहुत परेशान नज़र आ
इन खिड़कियों पर पर्दा गिरा दूँ।···खुदा के लिए आ

जहाँनारा : आशना, क्या तुझे भी मुझ पर दर्द नहीं आता
थोड़ा-सा बाहर देखने का हक़ भी क्या तुम छीन लेना
आशना !···रहम···।

आशना : (घबड़ाकर) कनीज़ की गुस्ताखी माफ शहज़ा
मतलब क़तई न था···आप इन खिड़कियों से बाहर

जहाँनारा का स्वप्न

पात्र

: शाहजहाँ की बड़ी शहज़ादी, उम्र 22 वर्ष
: जहाँनारा की बाँदी, उम्र 18 वर्ष
: बूँदी के रावराजा

समय : औरंगज़ेब-काल

स्थान : आगरे का क़िला

[आगरा के क़िले में एक शाही तरीके पर सजा हुआ कमरा। कमरे में दायीं ओर दो दरवाज़े जिस पर प्याज़ी रंग के बेशकीमती पर्दे पड़े हैं। सामने की ओर तीन खिड़कियाँ, बीच की खिड़की अपेक्षाकृत चौड़ी। खिड़कियों पर आबेरवाँ के पर्दे, जो क़रीने से एक ओर समेट दिए गए हैं। पीछे की दीवार में एक गोल-सी सूराख़नुमा खिड़की जो दूसरी ओर शाहजहाँ के कमरे में खुलती है। यह क़ायदे से बन्द है। कमरे में शमादान और दूसरी ओर ताज़े फूलों के गुलदस्ते। शहज़ादी जहाँनारा की नीले रंग की शलवार जिस पर चिकन के काम की कसी हुई कमखाब की चुस्त कुर्ती और पन्नों की कमर-पेटी, जिसमें छोटी-छोटी मोतियों की मालाएँ झूल रही हैं। इन सब पर मोतियों से गुथी हुई फ़िरोज़ी रंग की ओढ़नी। गले में सच्चे मोतियों की दो लड़ियाँ जिसके बीच में पुखराज चमक रहा है। पैरों में ज़री के काम की मखमली जूतियाँ। शहज़ादी, चिन्तित-गंभीर मुद्रा में अपने सोने के पलंग पर बैठी है। नीचे फ़र्श पर ईरानी कालीन जिस पर आशना गंभीरता से शहज़ादी की ओर देखती हुई बैठी है।]

जहाँनारा : (एकाएक गंभीरता से बीच की खिड़की से बाहर देखती हुई) उफ्! यमुना के उस पार कितना सूना लग रहा है!···कितना खौफ़नाक!!···हटाओ, इसे नहीं देखूँगी।···वह है अब्बाजान का मुनव्वर ताज···अम्मी का प्यारा मक़बरा। ···आज मैं इसे देखती रहूँगी। इसके पीछे दिन भर का थका हुआ आफ़ताब अब गुरूब हो चुका है।···आह! अब तो ताजमहल के मीनारों और गुम्बदों पर न जाने क्या सूना-सूना स्याह-सा छाता जा रहा है!···सारी फिज़ा में दर्द भरी आह···मानो फिज़ा, खुद औरंगज़ेब का शाही फरमान पढ़ती हुई कह रही है—चुप! चुप!! खामोश!!!

आशना : शहज़ादी!···आज आप बहुत परेशान नज़र आ रही हैं।···हुक्म हो तो मैं इन खिड़कियों पर पर्दा गिरा दूँ।···खुदा के लिए आप बाहर न देखें···।

जहाँनारा : आशना, क्या तुझे भी मुझ पर दर्द नहीं आता?···कैदी शहज़ादी का यह थोड़ा-सा बाहर देखने का हक़ भी क्या तुम छीन लेना चाहती हो?···रहम कर आशना!···रहम···।

आशना : (घबड़ाकर) कनीज़ की गुस्ताखी माफ शहज़ादी!···मेरे कहने का यह मतलब क़तई न था···आप इन खिड़कियों से बाहर देखकर अक्सर परेशान हो

जाती हैं, इसलिए मैंने अर्ज़ किया था···।

जहाँनारा : कोई बात नहीं आशना ! आज सारी रात इन खिड़कियों को खुली रहने देना।···आशना, आज मुझे न जाने कैसा लग रहा है ?

आशना : शहज़ादी, अगर आप हुक्म दें तो मैं आपके दिल बहलाने के लिए सितार बजाऊँ, कुछ गाऊँ, नाचूँ,···कहानी कहूँ···।

जहाँनारा : (**निःश्वास भर कर**) तू कहाँ तक मेरा दिल बहलाएगी आशना, तुझे मालूम है—पीछे के कमरे में अब्बाजान—शहंशाह आलमगीर के पाक अब्बा, शाहजहाँ—जहाँ के शाह अपने बेटे के क़ैदी बनकर बैठे हैं। उनका दिल कैसे बहलता होगा आशना, उनसे कौन कहता होगा कि तुम्हारा ताज अब भी चमक रहा है ?

आशना : क्या बताऊँ शहज़ादी ?···क़िस्मत को क्या कहूँ ?···इधर कई दिनों से उन्होंने इस खिड़की से अपने ताजमहल को भी नहीं देखा। उनकी शीरीं ज़बान नहीं सुनने को मिली। न जाने क्यों आजकल (**खिड़की को देखकर**) बन्द है ?

जहाँनारा : (**पलंग पर बैठकर**) मेरी तबियत हो रही है कि आज अब्बाजान को इस खिड़की से आवाज़ दूँ—पूछूं कि आजकल यह खिड़की क्यों बंद है ?···आपकी तबियत कैसी है ?···मैं आपकी क्या खिदमत कर सकती हूँ ?

आशना : शायद वे आजकल क़ुरान शरीफ पढ़ रहे हैं, शहज़ादी आप परेशान न हों,··· वे जल्द···।

जहाँनारा : नहीं आशना, अब्बाजान ने तो उसी दोशम्बे को क़ुरान शरीफ खत्म कर डाला था। आजकल वे गीता पढ़ रहे होंगे।

आशना : (**आश्चर्य से**) गीता !···हिन्दुओं की गीता !!

जहाँनारा : (**प्रश्न से**) क्यों, तुझे ताज्जुब क्यों हो रहा है ? यह हिन्दुओं की गीता क्यों ? सबकी गीता। संसार भर की गीता !!···काश इस पाक गीता को औरंगज़ेब भी पढ़ता !

आशना : (**उत्सुकता से**) तो क्या गीता पढ़ने से आलमगीर का रुख बदल जाता ?··· मेरा तो ऐसा ख्याल नहीं है शहज़ादी !

जहाँनारा : ज़रूर बदल जाता आशना ! जहाँ वह सिर्फ क़ुरान पढ़कर अपने को खूँखार मुसलमान समझ रहा है—हिन्दुओं को क़ाफिर समझ रहा है—इन्सानियत पर कुफ्र ढाह रहा है—वहाँ वह गीता पढ़कर हिन्दुस्तान को अपना वतन समझने लगता ! क़ौम की बदनसीबी दूर हो जाती, वतन की इज्जत रह जाती आशना, पाक गीता इत्तहाद की नसीहत देती है।

आशना : और क़ुरान शरीफ शहज़ादी ?

जहाँनारा : उसमें भी यही ताक़त है। लेकिन सिर्फ क़ुरान पढ़ना खतरनाक है। क़ुरान के साथ-साथ गीता पढ़ना हर एक शहंशाह को जरूरी है, पर आह !···औरंगज़ेब ···सुलहकुन अकबर आज़म को भूलने वाला !!

आशना : (**पास बढ़ती हुई**) आप फिर परेशान हो रही हैं शहज़ादी ! बेहतर होता आप कुछ न सोचतीं।

जहाँनारा : (**हँसने का प्रयास करती हुई**) तू भी अजीब है···हम लोग क़ैदी हैं न !···जानती है, क़ैदी कि बाहरी हक़ छीन लिए जाएँ। क़ैदी अपने क़ैदखाने पाता है···तू मुझसे वह भी छीनना चाहती है ?

आशना : (**घबड़ाकर**) नहीं, शहज़ादी नहीं, मैं माफ़ी चा करती हूँ कि आप अपने ख्यालात में परेशान न हों किस्सा सुनाती हूँ।···सुनाऊँ शहज़ादी !

जहाँनारा : (**गिरी हुई वाणी से**) सुनाओ।

आशना : (**उठकर इधर-उधर टहलती हुई**) एक थी शहज़ बहुत प्यार करते थे—अपने शाहज़ादों से भी बढ़कर

जहाँनारा : (**उत्सुकता से**) तब क्या हुआ ?···ज़रा इधर हुआ ? मेरी तरह वह भी क़ैदी बना दी गई ?

आशना : (**बैठती हुई**) नहीं, शहज़ादी सुनिए तो !···हाँ बादशाह सलामत को उसकी शादी के लिए फिक्र गए। बहुत-बहुत शाहज़ादे देखे गए पर शहज़ादी ल

जहाँनारा : (**प्रसन्नता से**) तब क्या हुआ ?···आज त रही है।···हाँ, तब क्या हुआ ?

आशना : तब बादशाह सलामत को बहुत फिक्र हुई। वे बैठाकर उसे देखते और आँसू बहाते फिर नये-नये

जहाँनारा : हाँ, तब क्या हुआ ? जल्दी-जल्दी क्यों नहीं

आशना : सुनिए तो···हाँ, लेकिन शहज़ादी बादशाह सला शादी के लिए बिलकुल परेशान न हों। शहज़ादी न

जहाँनारा : (**बिगड़कर**) अब तू कहानी अपने मन से खुश रहने लगी ?

आशना : बता दूं, क्यों ? हाँ, शहज़ादी ने अपना वर खुद

जहाँनारा : (**आश्चर्य से**) क्या कह रही है तू ?

आशना : (**गम्भीरता से**) यही कि शहज़ादी एक दरबार लगी थी।

जहाँनारा : (**मुस्करा कर**) एक राजकुमार से ?

आशना : हाँ एक हिन्दू राजकुमार से। और···।

जहाँनारा : (**बीच ही में बात काटकर**) और कुछ न कहानी कही है (**आशना के हाथों को प्यार से पकड़**) है। पर हाँ, एक बात—यह कहानी, तूने गढ़ी है न

आशना : (**प्रसन्नता से**) अल्ला पाक का लाख-लाख गयीं !···कब का मुर्झाया हुआ गुल आज खि शहज़ादी !

मैंने अर्ज़ किया था···।

हीं आशना ! आज सारी रात इन खिड़कियों को खुली रहने
आज मुझे न जाने कैसा लग रहा है ?

गर आप हुक्म दें तो मैं आपके दिल बहलाने के लिए सितार
नाचूं,···कहानी कहूँ···।

भर कर) तू कहाँ तक मेरा दिल बहलाएगी आशना, तुझे मालूम
में अब्बाजान—शहंशाह आलमगीर के पाक अब्बा, शाहजहाँ—
बेटे के क़ैदी बनकर बैठे हैं। उनका दिल कैसे बहलता होगा
न कहता होगा कि तुम्हारा ताज अब भी चमक रहा है ?

हज़ादी ?···क़िस्मत को क्या कहूँ ?···इधर कई दिनों से उन्होंने
ने ताजमहल को भी नहीं देखा। उनकी शीरीं ज़बान नहीं सुनने
ने क्यों आजकल (खिड़की को देखकर) बन्द है ?

बैठकर) मेरी तबियत हो रही है कि आज अब्बाजान को इस
दूँ—पूछूं कि आजकल यह खिड़की क्यों बंद है ?···आपकी
···मैं आपकी क्या खिदमत कर सकती हूँ ?

कल क़ुरान शरीफ पढ़ रहे हैं, शहज़ादी आप परेशान न हों,···

, अब्बाजान ने तो उसी दोशम्बे को क़ुरान शरीफ ख़त्म कर
ल वे गीता पढ़ रहे होंगे।

गीता !···हिन्दुओं की गीता !!

क्यों, तुझे ताज्जुब क्यों हो रहा है ? यह हिन्दुओं की गीता क्यों ?
ार भर की गीता !!···काश इस पाक गीता को औरंगज़ेब भी

) तो क्या गीता पढ़ने से आलमगीर का रुख़ बदल जाता ?···
ल नहीं है शहज़ादी !

जाता आशना ! जहाँ वह सिर्फ क़ुरान पढ़कर अपने को ख़ूंख़ार
रहा है—हिन्दुओं को क़ाफिर समझ रहा है—इन्सानियत पर
—वहाँ वह गीता पढ़कर हिन्दुस्तान को अपना वतन समझने
बदनसीबी दूर हो जाती, वतन की इज़्ज़त रह जाती आशना,
की नसीहत देती है।

शरीफ शहज़ादी ?

ही ताक़त है। लेकिन सिर्फ क़ुरान पढ़ना ख़तरनाक है। क़ुरान
पढ़ना हर एक शहंशाह को जरूरी है, पर आह !···औरंगज़ेब
र आज़म को भूलने वाला !!

हुई) आप फिर परेशान हो रही हैं शहज़ादी ! बेहतर होता
हीं।

जहाँनारा : (**हँसने का प्रयास करती हुई**) तू भी अजीब है, आशना !···तुझे मालूम है···हम लोग क़ैदी हैं न !···जानती है, क़ैदी किसे कहते हैं ?···जिसके सब बाहरी हक़ छीन लिए जाएँ। क़ैदी अपने क़ैदखाने में सिर्फ सोचने का ही तो हक़ पाता है···तू मुझसे वह भी छीनना चाहती है ?

आशना : (**घबड़ाकर**) नहीं, शहज़ादी नहीं, मैं माफ़ी चाहती हूँ, लेकिन फिर भी अर्ज़ करती हूँ कि आप अपने ख़्यालात में परेशान न हों।···सुनिए, मैं आपको एक किस्सा सुनाती हूँ।···सुनाऊं शहज़ादी !

जहाँनारा : (**गिरी हुई वाणी से**) सुनाओ।

आशना : (**उठकर इधर-उधर टहलती हुई**) एक थी शहज़ादी। बादशाह सलामत उसे बहुत प्यार करते थे—अपने शाहज़ादों से भी बढ़कर···।

जहाँनारा : (**उत्सुकता से**) तब क्या हुआ ?···ज़रा इधर बैठकर सुना,···हाँ तब क्या हुआ ? मेरी तरह वह भी क़ैदी बना दी गई ?

आशना : (**बैठती हुई**) नहीं, शहज़ादी सुनिए तो !···हाँ, शहज़ादी सयानी हुई तो··· बादशाह सलामत को उसकी शादी के लिए फ़िक्र हुई—दूर-दूर मुल्कों में पैग़ाम गए। बहुत-बहुत शाहज़ादे देखे गए पर शहज़ादी लायक कोई वर नहीं मिला।

जहाँनारा : (**प्रसन्नता से**) तब क्या हुआ ?···आज तो तू बहुत अच्छी कहानी सुना रही है।···हाँ, तब क्या हुआ ?

आशना : तब बादशाह सलामत को बहुत फ़िक्र हुई। वे घंटों शहज़ादी को अपने सामने बैठाकर उसे देखते और आँसू बहाते फिर नये-नये पैग़ाम भेजते।

जहाँनारा : हाँ, तब क्या हुआ ? जल्दी-जल्दी क्यों नहीं कहती ?

आशना : सुनिए तो···हाँ, लेकिन शहज़ादी बादशाह सलामत को समझाती कि वे उसकी शादी के लिए बिल्कुल परेशान न हों। शहज़ादी न जाने क्यों बहुत ख़ुश रहती थी।

जहाँनारा : (**बिगड़कर**) अब तू कहानी अपने मन से गढ़ने लगी !···शहज़ादी क्यों ख़ुश रहने लगी ?

आशना : बता दूं, क्यों ? हाँ, शहज़ादी ने अपना वर ख़ुद ढूंढ़ लिया था।

जहाँनारा : (**आश्चर्य से**) क्या कह रही है तू ?

आशना : (**गम्भीरता से**) यही कि शहज़ादी एक दरबार के राजकुमार से मुहब्बत करने लगी थी।

जहाँनारा : (**मुस्करा कर**) एक राजकुमार से ?

आशना : हाँ एक हिन्दू राजकुमार से। और···।

जहाँनारा : (**बीच ही में बात काटकर**) और कुछ नहीं। आज तूने कितनी अच्छी कहानी कही है (**आशना के हाथों को प्यार से पकड़ कर**) आशना, तू बहुत अच्छी है। पर हाँ, एक बात—यह कहानी, तूने गढ़ी है न ? (**सम्मिलित हँसी**)

आशना : (**प्रसन्नता से**) अल्ला पाक का लाख-लाख शुक्र, शहज़ादी आप ख़ुश हो गयीं !···कब का मुर्झाया हुआ गुल आज खिला। कितनी अच्छी है, मेरी शहज़ादी !

जहाँनारा : (**प्यार से**) तुझे ताज्जुब होता होगा कि मैं इत्ते जल्दी कैसे खुश हो गई। पर, आशना सच मान—तेरी अधूरी कहानी ने मेरे सूखते दिल और दिमाग में आबेहयात का काम किया है (**तन्मयता से**) तू बहुत अच्छी है आशना !···फिर से कहना—वह शहज़ादी एक हिन्दू राजकुमार से मोहब्बत कर रही थी—इसे फिर एक बार दुहरा दे, मैं बहुत खुश हूँ इस वक्त।

आशना : (**प्रसन्नता से**) और मैं तो शहज़ादी इतनी खुश हूँ कि दिल कह रहा है कि नाच-नाच कर आपके हँसते हुए रूप की आरती उतारूँ—सितार बजाऊँ···ज़ोर-ज़ोर से गाऊँ कि 'फ़लक के सितारो गाओ, नाचो, शहज़ादी का ग़म दूर हुआ।'

जहाँनारा : (**उठकर प्रसन्नता से आशना की पीठ पर प्यार की थपकी देकर**) अच्छा, देखूँ तू कितना अच्छा सितार बजाती है।

[आशना सितार पर मधुर तान छेड़ती है।]

जहाँनारा : (**तन्मयता में**) सुबह को हर कली, रात-भर किसी की मीठी याद लिए फूल बन जाती है। मुहब्बत में कितनी ज़िन्दगी है ! (**बीच की खिड़की के पास जाकर**) सारी क़ुदरत किसी के प्यार की मुस्कराहट है···वह बह रही है, काली जमुना, न जाने किसकी याद में बहती हुई मस्ती से चली जा रही है !···वह है प्यारा ताज !···पत्थर में देखा हुआ प्यार का ख्वाब ! (**घूमकर**) आशना ! रहने दे अब,···आ···तुझे प्यार करूँगी···तू इस वक्त बहुत अच्छी लग रही है !

आशना : (**चुलबुलाहट में**) मुझे क्यों प्यार करेंगी आप !···मुझे प्यार करने वाला दरबार का कोई रसूलबकस या मुनीर हसन होगा।···और आपको तो···।

जहाँनारा : (**प्यार से थपकी देकर बात काटती हुई**) तू बड़ी बुरी है ! तूने सिर्फ मेरा दिल ही नहीं बहलाया···बल्कि अपनी कहानी और सितार की तान से मेरे दिल के हर सोए हुए तार को छू दिया है। आँखों के सामने वह प्यारी बात !···वह सूरत···!!

आशना : (**घबड़ाकर**) आशना···से कोई क़ुसूर तो नहीं हुआ शहज़ादी !

जहाँनारा : (**हँसकर**) आशना···और क़ुसूर !···बहुत प्यारी है तू (**उसका हाथ अपने हाथों में लेकर**) हाँ, एक बात आशना ! तूने कभी किसी से मुहब्बत नहीं की है ? (**आशना शरमाकर हट जाती है**)···दूर क्यों चली गयी ?···बोल···शरमा गई ?···क्या तेरी इन भोली आँखों में अभी तक किसी के रूप का खुमार नहीं आया है ?···बोल आशना !

आशना : मैं नहीं बता सकूँगी···आप न जाने क्या पूछ रही हैं ?

जहाँनारा : नहीं समझती ?···वही कह रही हूँ···जो बहते हुए झरने का पानी कहता है ! सुबह कुहसार पर पड़ती हुई जो आफ़ताब की किरनें कहती हैं। किसी को देखकर शरमाती हुई आँखें, जो अपनी खामोशी में कह जाती हैं—वही मैं कह रही हूँ···आशना !

[पृष्ठभूमि में शाही बाजे बजने की तुमुल ध्वनि]

आशना : (**आश्चर्य से**) ये शाही बाजे क्यों इस वक्त

जहाँनारा (**गंभीरता से**) मुझे तो यक़ीन हो रहा है गोलकुण्डा को फतह करके लौट रही है। उसी ख़ बाजे बज रहे हैं।

आशना : (**सोचती हुई**) हाँ, शहज़ादी आप ठीक है न !

जहाँनारा : (**बहुत ही आश्चर्य से**) जुमेरात ! जुमेरा

आशना : हाँ, आज जुमेरात तो है···क्यों क्या बात है

जहाँनारा : (**घबड़ाकर**) तूने पहले ही क्यों नहीं बता देख तो···कितना वक्त हो रहा है ?

आशना (**खिड़की से बाहर देखकर**) यही आधी रात बात शहज़ादी ?

जहाँनारा : (**जल्दी में···कुछ परेशान-सी**) आशना ! सब कपड़े ठीक हैं न ?

आशना : (**शहज़ादी को देखती हुई**) हाँ, सब ठीक है

जहाँनारा : (**दिखाती हुई**) जरा क़ायदे से देख, मेरे कमखाब की चुस्त कुर्ती अच्छी लग रही है न ?

आशना : (**प्यार से**) बहुत अच्छी शहज़ादी, जैसे नी

जहाँनारा : (**स्वयं देखती हुई**) और यह पन्नों की क झूलती हुई लड़ियाँ ?

आशना : बहुत अच्छी शहज़ादी ! जैसे···।

जहाँनारा : (**बहुत जल्दी से इशारा कर**) और यह चि हुई फिरोज़ी रंग की ओढ़नी ?

आशना : (**गद्गद कंठ से**) बहुत उम्दा शहज़ादी ! अपना शृंगार किया है। दूर फलक का प्यारा चाँ और उसके गले में यह सच्चे मोतियों की लड़ियाँ कर) यह पुखराज !! (**संकेत**) पैरों में चार बेशक़ीमती जूतियाँ !···आह ! क्या कहने ?

जहाँनारा : (**प्यार से थपकी दे**) आज तो तू जैसे शा

आशना : मामूली शायरी नहीं शहज़ादी !···आपके

[दोनों की सम्मिलित हँसी]

जहाँनारा : (**गंभीरता से**) आशना, ज़रा उठ के देख तो नहीं रहा है।

[आशना इधर-उधर देखकर]

तुझे ताज्जुब होता होगा कि मैं इत्ते जल्दी कैसे खुश हो गई।
मान—तेरी अधूरी कहानी ने मेरे सूखते दिल और दिमाग़ में
म किया है (**तन्मयता से**) तू बहुत अच्छी है आशना !···फिर से
ादी एक हिन्दू राजकुमार से मोहब्बत कर रही थी—इसे फिर
मैं बहुत खुश हूँ इस वक्त।
) और मैं तो शहज़ादी इतनी खुश हूँ कि दिल कह रहा है कि
के हँसते हुए रूप की आरती उतारूँ—सितार बजाऊँ···ज़ोर-
फ़लक के सितारो गाओ, नाचो, शहज़ादी का ग़म दूर हुआ।'
न्नता से आशना की पीठ पर प्यार की थपकी देकर) अच्छा,
छा सितार बजाती है।
र मधुर तान छेड़ती है।]
ें) सुबह को हर कली, रात-भर किसी की मीठी याद लिए फूल
बत में कितनी ज़िन्दगी है ! (**बीच की खिड़की के पास जाकर**)
ी के प्यार की मुस्कराहट है···वह बह रही है, काली जमुना,
द में बहती हुई मस्ती से चली जा रही है !···वह है प्यारा
देखा हुआ प्यार का ख्वाब ! (**घूमकर**) आशना ! रहने दे
प्यार करूँगी···तू इस वक्त बहुत अच्छी लग रही है !
में) मुझे क्यों प्यार करेंगी आप !···मुझे प्यार करने वाला
सूलबकस या मुनीर हसन होगा।···और आपको तो···।
पकी देकर बात काटती हुई) तू बड़ी बुरी है ! तूने सिर्फ मेरा
या···बल्कि अपनी कहानी और सितार की तान से मेरे दिल के
को छू दिया है। आँखों के सामने वह प्यारी बात !···वह

आशना···मे कोई क़ुसूर तो नहीं हुआ शहज़ादी !
शना···और क़ुसूर !···बहुत प्यारी है तू (**उसका हाथ अपने**
, एक बात आशना ! तूने कभी किसी से मुहब्बत नहीं की है ?
र हट जाती है)···दूर क्यों चली गयी ?···बोल···शरमा
न भोली आँखों में अभी तक किसी के रूप का खुमार नहीं आया
!
कूँगी···आप न जाने क्या पूछ रही हैं ?
?···वही कह रही हूँ···जो बहते हुए झरने का पानी कहता
पर पड़ती हुई जो आफ़ताब की किरनें कहती हैं। किसी को
आँखें, जो अपनी खामोशी में कह जाती हैं—वही मैं कह रही

बाजे बजने की तुमुल ध्वनि]

आशना : (**आश्चर्य से**) ये शाही बाजे क्यों इस वक्त ?

जहाँनारा (**गंभीरता से**) मुझे तो यक़ीन हो रहा है कि औरंगज़ेब की फौज दकन से गोलकुण्डा को फतह करके लौट रही है। उसी खुशी में शायद···दीवाने आम में ये बाजे बज रहे हैं।

आशना : (**सोचती हुई**) हाँ, शहज़ादी आप ठीक कह रही हैं···आज तो जुमेरात है न !

जहाँनारा : (**बहुत ही आश्चर्य से**) जुमेरात ! जुमेरात है आशना !!

आशना : हाँ, आज जुमेरात तो है···क्यों क्या बात है शहज़ादी ?

जहाँनारा : (**घबड़ाकर**) तूने पहले ही क्यों नहीं बताया ? (**बाहर देखती हुई**)···जरा देख तो···कितना वक्त हो रहा है ?

आशना (**खिड़की से बाहर देखकर**) यही आधी रात होने में दो घंटे बाकी हैं। क्यों क्या बात शहज़ादी ?

जहाँनारा : (**जल्दी में···कुछ परेशान-सी**) आशना ! फिर बताऊँगी···। जल्दी देख मेरे सब कपड़े ठीक हैं न ?

आशना : (**शहज़ादी को देखती हुई**) हाँ, सब ठीक हैं शहज़ादी !

जहाँनारा : (**दिखाती हुई**) जरा क़ायदे से देख, मेरे नीले रंग की शलवार पर मेरी यह कमखाब की चुस्त कुर्ती अच्छी लग रही है न ?

आशना : (**प्यार से**) बहुत अच्छी शहज़ादी, जैसे नीले आसमान में खूबसूरत चाँद।

जहाँनारा : (**स्वयं देखती हुई**) और यह पन्नों की कमर पेटी !···और यह मोती की झूलती हुई लड़ियाँ ?

आशना : बहुत अच्छी शहज़ादी ! जैसे···।

जहाँनारा : (**बहुत जल्दी से इशारा कर**) और यह चिकन के काम की मोतियों से गुँथी हुई फिरोज़ी रंग की ओढ़नी ?

आशना : (**गद्गद कंठ से**) बहुत उम्दा शहज़ादी ! मानो आज हुस्न और खूबसूरती ने अपना शृंगार किया है। दूर फलक का प्यारा चाँद मानो ज़मीं पर उतर आया है··· और उसके गले में यह सच्चे मोतियों की लड़ियाँ ! उसमें चमकता हुआ (**संकेत कर**) यह पुखराज !! (**संकेत**) पैरों में चार चाँद लगाती हुई ज़री के काम की बेशक़ीमती जूतियाँ !···आह ! क्या कहने ?

जहाँनारा : (**प्यार से थपकी दे**) आज तो तू जैसे शायरी कर रही है !

आशना : मामूली शायरी नहीं शहज़ादी !···आपके रूप की शराब पीकर शायरी !!

[दोनों की सम्मिलित हँसी]

जहाँनारा : (**गंभीरता से**) आशना, ज़रा उठ के देख तो ले. कोई कहीं छिपके कुछ सुन तो नहीं रहा है।

[आशना इधर-उधर देखकर]

आशना : (धीरे से) कोई नहीं है शहज़ादी ! क्या बात है ? मुझे जल्दी बताइए।

जहाँनारा : (पास खींचती हुई) पास आ जा, दीवार के भी कान होते हैं, फिर तो औरंगज़ेब कितना खूँखार है !

आशना : (पास से) जल्दी बताइए, शहज़ादी !

जहाँनारा : (गंभीरता से) मैंने आज तक तुम से एक बात छिपायी थी, आज तुम्हें बता रही हूँ···जल्दी सुन ले···बीच में कुछ न बोलना। वक्त क़रीब आ गया है।··· हाँ, सुन वह दीवाने आम में दरबार का दिन कितना अच्छा था। बादशाह तख़्त-ताऊस पर बैठे थे। और 'वे' अपने दीनो-ईमान से, उन्हें साथ देने के लिए क़सम खा रहे थे। उनकी शीरीं ज़बान मुझे अब तक याद है। वे कह रहे थे—"मुग़ल और राजपूत एक; मुसलमान और हिन्दू दो नहीं एक; दोनों एक भारत के दो भाई—अपना एक वतन।" ऐसा कहते हुए वह प्यारी सूरत, वह खन्दा पेशानी, उस अमज़द को मैंने महल के दरीचे से देखा था और जब उन्होंने अपना भारी कदम तख़्त की ओर उठाया था तब आशना, मैं एक लमहे के लिए पीली पड़ गयी थी। मुझे ऐसा लगा रहा था मानो मैं अपने नूर को देख रही हूँ। अपने रूह के परवरदिगार को पा रही हूँ। आशना, उस समय मेरे ये दोनों खाली हाथ, सूने में, उस बहादुर राजपूत के लिए अपने आप फैल गए थे जिसकी रोशनी से सारा दिवाने आम चमक उठा था। मैं बरबस उस ओर उड़कर जा रही थी जो दर-असल में हिन्दुस्तान का शहंशाह दीख रहा था।

आशना : (उत्सुकता से) कनीज़ ! यह पूछने के लिए माफ़ी चाहती है···वे परवर-दिगार कौन थे, शहज़ादी !

जहाँनारा : आशना, वे थे भारत के रूह, हिन्दुस्तान की इज्ज़त ! चौहानों के पाक ख़ून से आए हुए बूँदी के रावराजा छत्रसाल।

आशना : आह ! कितना प्यारा नाम है, शहज़ादी !

जहाँनारा : हाँ आशना ! वे बहुत प्यारे हैं···मैंने उसी वक्त, हिन्दुस्तान के उस आफ़ताब को—रावराजा को अपने दिल का शहंशाह क़बूल कर लिया। वे मेरे रूह के परवरदिगार हैं, आशना !

आशना : लेकिन यह सब कैसे होगा शहज़ादी ? हम लोग जो औरंगज़ेब के क़ैदी हैं। कितना खूँखार है वह ?

जहाँनारा (उदासी से) हाँ, आशना ! तू ठीक कहती है, बहुत बुरा वक्त है। मेरी आँखों के नूर मेरे अब्बा, जिन्होंने आगरा दिल्ली का क़िला, जामा मस्जिद और ताजमहल ऐसी इमारतों को बनवाया है; वे आज इस बगल के कमरे में क़ैदी हैं···और प्यारी माँ इस काले साँप औरंगजेब को पैदा कर ताज के नीचे सो गई है। अज़ीज दारा जो शहंशाह अकबर के नाम को कायम रख सकता था—वह आज किसी जंगल या पहाड़ी में ठोकर खाता फिरता होगा, आशना !

आशना : (साँस भरकर) उफ़ ! ज़ालिम औरंगजेब !! इस नालायक़ की वजह से हिन्दुस्तान को न जाने कितने बुरे दिन देखने हैं।

जहाँनारा : बुरे ही दिन नहीं आशना, अकबर और ब
जा रही है। उनके ख्वाब 'हिन्दुस्तान सारे जहाँ
वाला सब मुल्कों का सरताज···।' लेकिन आह
दोनों का दुश्मन, इत्तहाद के धागे को तोड़ने वाल
का गला घोंटने वाला !!

[परेशान हो पलंग पर बैठ जाती है।]

आशना : (घबड़ाकर) शहज़ादी,···आप परेशान न
तो पसीने से तर होती जा रही हैं। रुकिए मैं पंख

[आशना पंखा झलती है।]

जहाँनारा : (उसी मनःस्थिति में) आशना, तूने देखा
पढ़ता रहता है। हमेशा हाथ में क़ुरान लिए फि
क्यों करता है ?

आशना : नहीं, शहज़ादी !

जहाँनारा : वह अपने पापों के बोझ से दबता जा रह
डरता है, मुहब्बत नहीं करता। ठीक इसी तर
डरती है, मुहब्बत नहीं करती। आशना, जो चीज
खड़ी होतीं···वे जल्दी ढह जाती हैं।

आशना : शहज़ादी, मैंने सुना है कि औरंगज़ेब मुहब्ब

जहाँनारा : औरंगज़ेब ख़ुद नापाक़ है आशना, आह
रावराजा की मुहब्बत कितनी प्यारी है। उनकी
होता है कि क़िले की दीवारें पस्त हो गयी हैं। ह
हर एक ज़र्रे से एक प्यार की आवाज—"
जहाँनारा ! महारानी जहाँनारा !!

आशना : लेकिन, शहज़ादी ! माफ़ करिएगा—मैं
सकती हूँ ?

जहाँनारा : शौक़ से आशना।

आशना : शुक्रिया, हाँ, क्या रावराजा आपकी इस मु
कभी इसकी ओर तवज्जह दी है ?

जहाँनारा : इसे मत पूछ।···मुझसे ज़्यादा वे मेरी मुह
दारा औरंगज़ेब को इस लड़ाई में हरा देता है, औ
वीर रावराजा की मदद से औरंगज़ेब को हरायेग
···रावराजा ने क्या क़ौल की है ? वे मुझे अप
मेरी और उनकी शादी इसी (बाहर संकेत कर)

आशना : (प्रसन्नता से) सच···शहज़ादी !···आपकी

नहीं है शहज़ादी ! क्या बात है ? मुझे जल्दी बताइए।
हुई) पास आ जा, दीवार के भी कान होते हैं, फिर तो
खार है !
ी बताइए, शहज़ादी !
मैंने आज तक तुम से एक बात छिपायी थी, आज तुम्हें बता
ले···बीच में कुछ न बोलना। वक्त क़रीब आ गया है।···
आम में दरबार का दिन कितना अच्छा था। वालिदशाह
थे। और 'वे' अपने दीनो-ईमान से, उन्हें साथ देने के लिए
उनकी शीरीं ज़बान मुझे अब तक याद है। वे कह रहे थे—
एक; मुसलमान और हिन्दू दो नहीं एक; दोनों एक भारत
एक वतन।" ऐसा कहते हुए वह प्यारी सूरत, वह खन्दा
को मैंने महल के दरीचे से देखा था और जब उन्होंने अपना
ओर उठाया था तब आशना, मैं एक लमहे के लिए पीली
सा लगा रहा था मानो मैं अपने नूर को देख रही हूँ। अपने रूह
पा रही हूँ। आशना, उस समय मेरे ये दोनों खाली हाथ, सूने
ूत के लिए अपने आप फैल गए थे जिसकी रोशनी से सारा
उठा था। मैं बरबस उस ओर उड़कर जा रही थी जो दर-
का शहंशाह दीख रहा था।
कनीज़ ! यह पूछने के लिए माफ़ी चाहती है···वे परवर-
ज़ादी !
थे भारत के रूह, हिन्दुस्तान की इज्जत ! चौहानों के पाक
ी के रावराजा छत्रसाल।
प्यारा नाम है, शहज़ादी !
वे बहुत प्यारे हैं···मैंने उसी वक्त, हिन्दुस्तान के उस आफ़ताब
अपने दिल का शहंशाह क़बूल कर लिया। वे मेरे रूह के
शना !
कैसे होगा शहज़ादी ? हम लोग जो औरंगजेब के क़ैदी हैं।
ह ?
हाँ, आशना ! तू ठीक कहती है, बहुत बुरा वक्त है। मेरी आँखों
जन्होंने आगरा दिल्ली का क़िला, जामा मस्जिद और ताजमहल
बनवाया है; वे आज इस बगल के कमरे में क़ैदी हैं···और
साँप औरंगजेब को पैदा कर ताज के नीचे सो गई है। अज़ीज़
अकबर के नाम को कायम रख सकता था—वह आज किसी
ठोकर खाता फिरता होगा, आशना !
) उफ़ ! ज़ालिम औरंगजेब !! इस नालायक़ की वजह से
ाने कितने बुरे दिन देखने हैं।

जहाँनारा : बुरे ही दिन नहीं आशना, अकबर और दारा की शाह बुलन्दी आज ढहने जा रही है। उनके ख्वाब 'हिन्दुस्तान सारे जहाँ का रौशन, इल्म और तमद्दुन देने वाला सब मुल्कों का सरताज···।' लेकिन आह !···औरंगज़ेब, हिन्दू-मुसलमान दोनों का दुश्मन, इत्तहाद के धागे को तोड़ने वाला !···कितना बुरा है तू, शरियत का गला घोंटने वाला !!

[परेशान हो पलंग पर बैठ जाती है।]

आशना : (घबड़ाकर) शहज़ादी,···आप परेशान न हों···(आश्चर्य से) अरे ! आप तो पसीने से तर होती जा रही हैं। रुकिए मैं पंखा करती हूँ।

[आशना पंखा झलती है।]

जहाँनारा : (उसी मनःस्थिति में) आशना, तूने देखा होगा, औरंगज़ेब कितनी नमाजें पढ़ता रहता है। हमेशा हाथ में क़ुरान लिए फिरता है। जानती है, यह ढोंग वह क्यों करता है ?

आशना : नहीं, शहज़ादी !

जहाँनारा : वह अपने पापों के बोझ से दबता जा रहा है, इसलिए वह खुदा पाक से डरता है, मुहब्बत नहीं करता। ठीक इसी तरह हिन्दुस्तान की रियाया उससे डरती है, मुहब्बत नहीं करती। आशना, जो चीजें मुहब्बत की बुनियाद पर नहीं खड़ी होतीं···वे जल्दी ढह जाती हैं।

आशना : शहज़ादी, मैंने सुना है कि औरंगज़ेब मुहब्बत को नापाक समझता है···।

जहाँनारा : औरंगज़ेब खुद नापाक़ है आशना, आह ! मुहब्बत ! (तन्मयता से)··· रावराजा की मुहब्बत कितनी प्यारी है। उनकी याद आते ही मुझे ऐसा मालूम होता है कि क़िले की दीवारें पस्त हो गयी हैं। हम लोग एक-दूसरे से मिल रहे हैं। हर एक ज़र्रे से एक प्यार की आवाज़—"रावराजा छत्रसाल ! महारानी जहाँनारा ! महारानी जहाँनारा !!

आशना : लेकिन, शहज़ादी ! माफ करिएगा—मैं एक बात जानना चाहती हूँ, पूछ सकती हूँ ?

जहाँनारा : शौक़ से आशना।

आशना : शुक्रिया, हाँ, क्या रावराजा आपकी इस मुहब्बत को जानते हैं ? क्या उन्होंने कभी इसकी ओर तवज्जह दी है ?

जहाँनारा : इसे मत पूछ।···मुझसे ज्यादा वे मेरी मुहब्बत करते हैं। यही नहीं, अगर दारा औरंगज़ेब को इस लड़ाई में हरा देता है, और मुझे पूरी उम्मीद है कि दारा, वीर रावराजा की मदद से औरंगज़ेब को हरायेगा,···तब जानती है···आशना ! ···रावराजा ने क्या क़ौल की है ? वे मुझे अपनी रानी बनाएँगे—महारानी ! मेरी और उनकी शादी इसी (बाहर संकेत कर) ताज के सामने होगी।

आशना : (प्रसन्नता से) सच···शहज़ादी !···आपकी शादी !

जहाँनारा : (गंभीरता से) खबरदार आशना ! यह राज़ कहीं ज़ाहिर न होने पाए।

आशना : और अगर शहज़ादी, यहीं बगल से अब्बाजान ने इसे सुन लिया हो तो ?

जहाँनारा : मुझे यक़ीन है, वे इस खबर को सुनकर खुश होंगे। मेरी खुश होंगे। मेरी खुशी उनकी खुशी है···पर हाँ, तू अपनी ओर से खबरदार रहना। यह कहीं ख्वाब में भी ज़ाहिर न होने पाए। औरंगज़ेब से खतरा लेना जान देना है आशना !

[दूर से घंटे और गजर बजने की आवाज़ आती है।]

जहाँनारा : (उत्सुकता से) आशना, जल्दी देख कितना वक्त हो रहा है ?

आशना : (सोच कर) आधी रात होने में एक घंटा बाक़ी है, शहज़ादी !

जहाँनारा : (प्रसन्नता से उठकर) सिर्फ एक घंटा आशना !···बहुत अच्छी है तू !

[जहाँनारा प्रसन्नता से कभी खिड़की से बाहर, कभी अपने को···कभी शमादान को देखने लगती है।]

आशना : क्यों क्या बात है शहज़ादी ? आप तो अकेले खुशी से नाच रही हैं···मुझे भी बताइए क्या है ?

जहाँनारा : (इशारा कर) बता दूँ आशना ! आ जा, नज़दीक आ जा। (धीमी वाणी से) अभी-अभी ठीक आधी रात के वक्त रावराजा मुझसे मिलने आ रहे हैं।

आशना : (प्रश्न से, आश्चर्य के साथ) यहीं इस क़िले के कमरे में ?

जहाँनारा : हाँ इसी कमरे में आशना, वे बहुत बहादुर हैं।

आशना : (डर कर) लेकिन यह सब कैसे हो सकेगा शहज़ादी ?

जहाँनारा : (विश्वास से) सब हो जाएगा आशना···देखती रहना।···ओह ! अभी एक घंटा बाक़ी है !···आशना, आ तब तक हम सब इन सितारों से इबादत करें कि जल्दी आधी रात हो जाए···।

[दोनों थोड़ी देर तक इबादत करने की मुद्रा में]

जहाँनारा : (तन्मयता में) और तब अपने रावराजा को इस कमरे से बाहर नहीं जाने दूंगी। उन्हें यहीं छिपा के रखूंगी। (पूछती हुई) आशना, तू भी शादी करेगी न ?

आशना : (शरमा कर) नहीं, शहज़ादी, मैं आपके साथ रहूँगी।

जहाँनारा : (प्रसन्नता से) हाँ, ठीक है—पर शादी तो करेगी न ?···तेरी शादी रावराजा के मंत्री से होगी, ठीक है न ?

आशना : पर शहज़ादी, मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि आप अपनी परेशानी में आज कोई ख्वाब देख रही हैं।

जहाँनारा : नहीं,···सब सही है···मेरे रावराजा मेरे पास आएँगे···अभी देख लेना सब सही है, मैं कोई ख्वाब नहीं देख रही हूँ।

आशना : (प्रसन्नता से) सच शहज़ादी ?

जहाँनारा : हाँ, आशना। तू एक दिन यह भी देख लेगी कि मैं अज़ीज़ दारा को तख्त-ताऊस पर बिठाकर और रावराजा को अपना शहंशाह बनाकर दीवाने-ख़ास में एक शाही दरबार लगाऊँगी जिससे तमाम मुल्क सम
क़ौमियत है। मुग़ल, राजपूत, मराठे, सब एक; फिर आशना, मैं दिखा दूंगी कि 'अनलहक' की छ
हाज़ी योगी-पंडित-भक्त सब अपने मुख्तलिफ़ रास्
मज़हब, एक फ़लसफ़ा, इल्म और तमद्दुन की दि
कोने तक बहाएंगे—और इस तरह सारा हिन्
जाएगा। बहिश्त से महान अशोक और अकबर
हिन्दुस्तान को मुबारक़बाद देंगे।

आशना : (इबादत करती हुई) पाक परवरदिगार आप

[फिर घंटों और गजर की ध्वनि]

जहाँनारा : (खिड़की के पास जाकर) आशना, देख अ
सिरहाने रेशम की डोरी है···उसे मेरे हाथ में
होंगे (रस्सी देती है, फिर थोड़ी देर शान्ति) आ
कोई आ रहा है ? (तन्मयता से) वही आ रहे
शमादान को ठीक कर दे, गुलदस्तों को क़रीने से
देख तो ले; मेरा सब पोशाक ठीक है न ?

आशना : (डर से) सब ठीक है शहज़ादी, पर मेरा जी

जहाँनारा : (गंभीरता से) चुप रह आशना,···वह आ
पास आ गए। मुझे संभालना आशना, मैं उनको
रही हूँ।

[थोड़ी देर शान्ति, शाहज़ादी बीच की खिड़की
रावराजा क्षण भर में ऊपर चढ़ कर, खिड़की से

रावराजा : (क्षणिक निःश्वास भर कर) आ गया !
शहज़ादी ?

जहाँनारा : आपकी इन्तज़ारी !···जब से मैं यहाँ क़ैद
पाक़ सूरत को उस दिन दीवाने-आम में, बादश
करते हुए देखा था।

[थोड़ी देर तक एक-दूसरे को अपलक देखते हैं।

रावराजा : (आशना की ओर संकेत कर) यह कौन है

जहाँनारा : मेरी प्यारी बाँदी, आशना।

आशना : (झुक कर अदब से) आदाब मालिक !

रावराजा : (प्यार से) शहज़ादी, वह शुभ घड़ी कितनी
महारानी बनाऊँगा ?

जहाँनारा : (तन्मयता से) मेरे नूर ! इससे अच्छी घ

) खबरदार आशना ! यह राज़ कहीं ज़ाहिर न होने पाए।
ादी, यहीं बगल से अब्बाजान ने इसे सुन लिया हो तो ?
, वे इस खबर को सुनकर खुश होंगे। मेरी खुश होंगे। मेरी
···पर हाँ, तू अपनी ओर से खबरदार रहना। यह कहीं ख्वाब
पाए। औरंगज़ेब से खतरा लेना जान देना है आशना !
र बजने की आवाज़ आती है।]
) आशना, जल्दी देख कितना वक्त हो रहा है ?
धी रात होने में एक घंटा बाकी है, शहज़ादी !
उठकर) सिर्फ एक घंटा आशना !···बहुत अच्छी है तू !
से कभी खिड़की से बाहर, कभी अपने को···कभी शमादान
]
शहज़ादी ? आप तो अकेले खुशी से नाच रही हैं···मुझे भी
बता दूँ आशना ! आ जा, नज़दीक आ जा। (**धीमी वाणी**
आधी रात के वक्त रावराजा मुझसे मिलने आ रहे हैं।
र्य के साथ) यहीं इस क़िले के कमरे में ?
में आशना, वे बहुत बहादुर हैं।
न यह सब कैसे हो सकेगा शहज़ादी ?
सब हो जाएगा आशना···देखती रहना।···ओह ! अभी
···आशना, आ तब तक हम सब इन सितारों से इबादत करें
हो जाए···।
इबादत करने की मुद्रा में]
और तब अपने रावराजा को इस कमरे से बाहर नहीं जाने
ा के रखूंगी। (**पूछती हुई**) आशना, तू भी शादी करेगी न ?
हीं, शहज़ादी, मैं आपके साथ रहूँगी।
) हाँ, ठीक है—पर शादी तो करेगी न ?···तेरी शादी
होगी, ठीक है न ?
ो तो ऐसा मालूम हो रहा है कि आप अपनी परेशानी में आज
हैं।
ही है···मेरे रावराजा मेरे पास आएँगे···अभी देख लेना सब
नहीं देख रही हूँ।
सच शहज़ादी ?
तू एक दिन यह भी देख लेगी कि मैं अज़ीज़ दारा को तख्त-
और रावराजा को अपना शहंशाह बनाकर दीवाने-खास में एक

शाही दरबार लगाऊँगी जिससे तमाम मुल्क समझ जाएगा कि हिन्दुस्तान में एक क़ौमियत है। मुग़ल, राजपूत, मराठे, सब एक; गीता-वेद-कुरान सब एक; और फिर आशना, मैं दिखा दूँगी कि 'अनलहक' की छाया में—एक साथ सूफ़ी मुल्ला-हाजी योगी-पंडित-भक्त सब अपने मुख्तलिफ़ रास्तों से एक जगह पर आकर, एक मज़हब, एक फ़लसफ़ा, इल्म और तमद्दुन की दरिया हिन्द के एक कोने से दूसरे कोने तक बहाएँगे—और इस तरह सारा हिन्दुस्तान इत्तहाद के समुद्र में डूब जाएगा। बहिश्त से महान अशोक और अकबर आज़म खुश होकर अपने प्यारे हिन्दुस्तान को मुबारक़बाद देंगे।

आशना : (**इबादत करती हुई**) पाक परवरदिगार आपका ख्वाब पूरा करे शहज़ादी !

[फिर घंटों और गजर की ध्वनि]

जहाँनारा : (**खिड़की के पास जाकर**) आशना, देख आधी रात हो गयी। मेरे पलंग के सिरहाने रेशम की डोरी है···उसे मेरे हाथ में दे दे···अभी रावराजा आते ही होंगे (**रस्सी देती है, फिर थोड़ी देर शान्ति**) आशना, यहाँ आके देख तो···वह कोई आ रहा है ? (**तन्मयता से**) वही आ रहे हैं, मेरे रावराजा। आशना, शमादान को ठीक कर दे, गुलदस्तों को क़रीने से सजा दे। मुझे फिर एक बार देख तो ले; मेरा सब पोशाक ठीक है न ?

आशना : (**डर से**) सब ठीक है शहज़ादी, पर मेरा जी बहुत डर रहा है।

जहाँनारा : (**गंभीरता से**) चुप रह आशना,···वह आ गए मेरे रावराजा ! दीवार के पास आ गए। मुझे सँभालना आशना, मैं उनको ऊपर चढ़ने के लिए रस्सी लटका रही हूँ।

[थोड़ी देर शान्ति, शाहज़ादी बीच की खिड़की से नीचे रस्सी गिराती है—रावराजा क्षण भर में ऊपर चढ़ कर, खिड़की से कमरे में कूदते हैं।]

रावराजा : (**क्षणिक निःश्वास भर कर**) आ गया !···कब से मेरी इन्तज़ारी थी, शहज़ादी ?

जहाँनारा : आपकी इन्तज़ारी !···जब से मैं यहाँ क़ैद हूं—नहीं, नहीं, जब से मैंने इस पाक़ सूरत को उस दिन दीवाने-आम में, बादशाह सलामत के सामने कुछ क़ौल करते हुए देखा था।

[थोड़ी देर तक एक-दूसरे को अपलक देखते हैं।]

रावराजा : (**आशना की ओर संकेत कर**) यह कौन है ?

जहाँनारा : मेरी प्यारी बाँदी, आशना।

आशना : (**झुक कर अदब से**) आदाब मालिक !

रावराजा :(**प्यार से**) शहज़ादी, वह शुभ घड़ी कितनी अच्छी होगी जब मैं तुम्हें अपनी महारानी बनाऊँगा ?

जहाँनारा : (**तन्मयता से**) मेरे नूर ! इससे अच्छी घड़ी न जाने कब आए !···मैं तो

चाहती हूँ कि···। अब्बाजान भी इसी दगल के कमरे में सोए होंगे (**खिड़की के पास जाती हुई**) यह है उनसे मिलने की खिड़की। अगर आप हुक्म दें तो मैं आवाज दूं···और इसी समय···।

रावराजा : (हाथ पकड़ कर **समझाते हुए**) मेरी जहाँनारा ! घबड़ाओ नहीं। इसका भी समय जल्द आ रहा है। हम और दारा औरंगजेब से आखिरी लड़ाई लड़ने जा रहे हैं। इसमें औरंगजेब की शक्तियां हार होंगी···और तब···।

जहाँनारा : (घबड़ा कर) लड़ाई ! आखिरी लड़ाई !! (**पकड़ कर**) नहीं, नहीं, मेरे परवरदिगार नहीं ! ! मैं अब आपको यहाँ से नहीं जाने दूंगी···(**पलंग की ओर इशारा करके**) तशरीफ़ रखिए ' आराम करिए···मैं आपकी क्या खिदमत कर सकती हूँ ?

रावराजा : शहज़ादी ! ···मासूमियत की रानी ! अब मैं लौटने की इजाजत चाहूँगा। ···देख लिया तुम्हें। ईश्वर तुम्हें···।

जहाँनारा : (**रुँधे गले से**) नहीं, रावराजा ! नहीं, मैं आपको पाकर दूर नहीं जाने दूंगी—मेरी किस्मत फूट जाएगी···मेरे सपने···।

रावराजा :(**दुःख से**) मेरी जहाँनारा ! तुमसे मिलकर दूर जाने में मेरा दिल खुद बैठा जा रहा है। पर शहज़ादी ! कल से ही 'चम्बल की लड़ाई' की तैयारी करनी है। मैंने दारा का साथ दिया है···अन्त तक उसका साथ देना मेरा धर्म है, नहीं तो दोज़ख में भी मुझे जगह न मिलेगी शहज़ादी !

जहाँनारा—(**गंभीरता से**) और अगर आपके साथ चम्बल की लड़ाई में मैं भी चलूं तो ?

रावराजा : यह ठीक नहीं होगा, (**समझाते हुए**) सोचो, औरंगजेब कितना खूंखार है ? तब तो शाहजहाँ को न जाने कितनी तकलीफ़ देगा। शहज़ादी घबड़ाओ नहीं, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे जीवन का उत्सर्ग तुम्हारे लिए, दारा और शाहजहाँ के लिए होगा। तुम मेरी महारानी बनोगी···।

जहाँनारा : (**रुँधे गले से**) लेकिन आप मुझे फिर छोड़कर चले जाएँगे···। नहीं···नहीं चम्बल की खूंखार लड़ाई ! (**पकड़ कर**) मैं आपको नहीं जाने दूंगी।

रावराजा : खूंखार क्या···शहज़ादी ? अगर चम्बल की लड़ाई से मैं विजयी होकर लौटता हूँ तो तुम्हें उसी दम ताजमहल की छाया में अपनी महारानी बनाऊँगा।··· और अगर मर जाता हूँ तो चन्द्रलोक में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा और वहाँ तुम्हें अपनी महारानी बनाऊँगा !

जहाँनारा : (**सर थामकर नीचे बैठती हुई**) आह ! मैं क्या सुन रही हूँ ? ···आह ! आप मुझे बचाइए !

[घंटे और गजर बजने की आवाज]

रावराजा : (**जहाँनारा से गले मिलकर**) शहज़ादी ! अब मुझे विदा दो ! ईश्वर तुम्हें कुशल से रक्खे। मेरी···।

[रावराजा का रस्सी से बाहर उतर जाना]

जहाँनारा : (**रुँधे गले से खिड़की से रावराजा को विदा**
रावराजा को राहत देना ! ताज में सोई हुई अम्म
लिए खुदा से इबादत करना। (**पागल-सी**) सि
आशना ! ! ! मेरे सपने पूरे हों, इसके लिए ईश्वर

[बेहोश होकर कमरे में गिर पड़ती है]

आशना : (**चीखकर**) अरे ! मेरी शहज़ादी को क्या हो
पुकारूँ ? (**पानी का छींटा देती हुई**) अल्ला पाक
ला।

[थोड़ी देर शान्ति; पृष्ठभूमि में करुणतम संगीत

जहाँनारा : (**चीखकर उठती हुई**) आह ! बहुत बुरा ह
आशना ! ! मैंने बहुत बुरा ख्वाब देखा है। मुझे म
बाहर आसमान से एक बहुत बड़ा तारा टूट रहा
पुकार।

आशना : (**सँभालती हुई**) शहज़ादी ! खामोश हो जाएं

जहाँनारा : (**चीखकर जमीन पर पछाड़ खाकर गिरती**
दे ! मैंने ख्वाब में देखा है—चंबल की खूंखार
(**पागल-सी उठकर**) आशना, मुझे कूद कर मर जा
पाक चन्द्रलोक में उनकी राह देखूंगी। (**डरकर उ**
कर) वह फिर एक तारा टूट रहा है, आसमान का

[जहाँनारा और आशना डरी हुई पागलों की तरह
चीखती है]

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है

ब्बाजान भी इसी बगल के कमरे में सोए होंगे (**खिड़की के**
है उनसे मिलने की खिड़की। अगर आप हुक्म दें तो मैं
सी समय···।
कर समझाते हुए) मेरी जहाँनारा ! घबड़ाओ नहीं। इसका
रहा है। हम और दारा औरंगज़ेब से आखिरी लड़ाई लड़ने
ौरंगज़ेब की शतिया हार होगी···और तब···।
लड़ाई ! आखिरी लड़ाई !! (**पकड़ कर**) नहीं, नहीं, मेरे
! मैं अब आपको यहाँ से नहीं जाने दूँगी···(**पलंग की ओर**
ीफ़ रखिए ' आराम करिए···मैं आपकी क्या खिदमत कर

···मासूमियत की रानी ! अब मैं लौटने की इजाज़त चाहूँगा।
ईश्वर तुम्हें···।
) नहीं, रावराजा ! नहीं, मैं आपको पाकर दूर नहीं जाने
फूट जाएगी···मेरे सपने···।
ी जहाँनारा ! तुमसे मिलकर दूर जाने में मेरा दिल **खुद** बैठा
ज़ादी ! कल से ही 'चम्बल की लड़ाई' की तैयारी करनी है।
दिया है···अन्त तक उसका साथ देना मेरा धर्म है, नहीं तो
गह न मिलेगी शहज़ादी !
') और अगर आपके साथ चम्बल की लड़ाई में मैं भी चलूँ

होगा, (**समझाते हुए**) सोचो, औरंगज़ेब कितना खूँखार है ?
न जाने कितनी तकलीफ़ देगा। शहज़ादी घबड़ाओ नहीं, मैं
मेरे जीवन का उत्सर्ग तुम्हारे लिए, दारा और शाहजहाँ के
ी महारानी बनोगी···।
लेकिन आप मुझे फिर छोड़कर चले जाएँगे···। नहीं···नहीं
ड़ाई ! (**पकड़ कर**) मैं आपको नहीं जाने दूँगी।
···शहज़ादी ? अगर चम्बल की लड़ाई से मैं विजयी होकर
सी दम ताजमहल की छाया में अपनी महारानी बनाऊँगा।···
हूँ तो चन्द्रलोक में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा और वहाँ तुम्हें
ाऊँगा !
र **नीचे बैठती हुई**) आह ! मैं क्या सुन रही हूँ ?···आह !

ने की आवाज़]
गले मिलकर) शहज़ादी ! अब मुझे विदा दो ! ईश्वर तुम्हें
ी···।

[रावराजा का रस्सी से बाहर उतर जाना]

जहाँनारा : (**रुँधे गले से खिड़की से रावराजा को विदा देती हुई**) खुदा पाक ! मेरे रावराजा को राहत देना ! ताज में सोई हुई अम्मी ! मेरे छत्रसाल की जीत के लिए खुदा से इबादत करना। (**पागल-सी**) सितारो ! बहती हुई यमुना !! आशना ! ! ! मेरे सपने पूरे हों, इसके लिए ईश्वर से अर्ज़ करना।

[बेहोश होकर कमरे में गिर पड़ती है]

आशना : (**चीखकर**) अरे ! मेरी शहज़ादी को क्या हो गया ? (**पंखा करती हुई**) किसे पुकारूँ ? (**पानी का छींटा देती हुई**) अल्ला पाक ! शहज़ादी को जल्दी होश में ला।

[थोड़ी देर शान्ति; पृष्ठभूमि में करुणतम संगीत।]

जहाँनारा : (**चीखकर उठती हुई**) आह ! बहुत बुरा हुआ ! (**पागल सी**) आशना ! आशना !! मैंने बहुत बुरा ख्वाब देखा है। मुझे मर जाने दे,···आशना ! वह देख बाहर आसमान से एक बहुत बड़ा तारा टूट रहा है। आशना, अब्बाजान को पुकार।

आशना : (**सँभालती हुई**) शहज़ादी ! खामोश हो जाएँ···आराम करें।

जहाँनारा : (**चीखकर जमीन पर पछाड़ खाकर गिरती हुई**) आशना, मुझे मर जाने दे ! मैंने ख्वाब में देखा है—चंबल की खूँखार लड़ाई और रावराजा की मौत (**पागल-सी उठकर**) आशना, मुझे कूद कर मर जाने दे। मैं रावराजा से पहले उस पाक चन्द्रलोक में उनकी राह देखूँगी। (**डरकर उठती हुई**) देख आशना, (**संकेत कर**) वह फिर एक तारा टूट रहा है, आसमान का सबसे बड़ा तारा···।

[जहाँनारा और आशना डरी हुई पागलों की तरह बाहर देख रही हैं; जहाँनारा चीखती है]

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

□

ताजमहल के आँसू

पात्र

शाहजहाँ	:	औरंगज़ेब का क़ैदी पिता
जहाँनारा	:	शाहजहाँ की लड़की
जोहरत उन्निसा	:	दारा की लड़की
औरंगज़ेब	:	मुगल सम्राट
मुहम्मद सुल्तान	:	औरंगज़ेब का लड़का
दिलदार	:	एक दानिशमंद व्यक्ति

समय : सुबह होने में थोड़ी-सी र

[आगरा क़िले का शाही हरम। शाहजहाँ अपने
सिरहाने की ओर, दो तरफ शमादानों पर रोशनी
दीवार में संगमरमर की जालियों से बनी हुई एक
और ताजमहल दोनों भली भाँति दिखाई देते हैं। व
दान पर मुमताज़ की एक खूबसूरत तस्वीर रक्खी
क़ीमती फूलदान रक्खे हैं; जिसमें सजाई हुई फ
दायीं ओर कुछ किनारे पर, एक खुला हुआ दरवाज
है। यह दरवाजा उस कमरे में खुलता है; जहाँ
पायताने का दरवाजा बाहर खुलता है, जिस पर ए

पर्दा उठने पर, शाहजहाँ अपने पलंग पर अस
बिखरे हैं, दाढ़ी बेपरवाही से बढ़ गई है। मुँह मुझ
साटन का तकिया है; जिसके चारों ओर जरी के
शाहजहाँ, सफेद रेशम का लम्बा कुरता पहने है, न
शाहजहाँ दायीं करवट लेता हुआ, मानो कुछ अपने
हुए पड़ा है।

पृष्ठभूमि में, किले का आख़िरी रात का ग
ही कोई ऊँची आवाज़ में कहता है—

"आँ खुदाएस्त ताला मलिकुल्-मुल
कि तगयुर न कुनद मुम्लकिते जावे

आवाज़ दूर चली जाती है, फिर दूसरी आवा
हुआ और सिकुड़ जाता है। फिर दूसरी आवाज़ ब
कोई फ़जर की नमाज पढ़ता है।]

शाहजहाँ : (**एकाएक चौंककर जागता है, आधा उठक**
ताला !···फ़जर की नमाज !!···(**बैठकर···प्रस**
···मुमताज़ की आवाज़ (**इधर-उधर देखता हुआ प**
कहाँ छिप गई ?···कहाँ है तू ?···(**नीचे खड़ा हो**
गई ?···कहाँ है तू ?···(**खिड़की से बाहर देख**
···(**पीड़ा से पुकारकर**) मुमताज़ !···अर्जुमन्द ब

ताजमहल के आँसू

पात्र

हाँ	:	औरंगज़ेब का क़ैदी पिता
ारा	:	शाहजहाँ की लड़की
त उन्निसा	:	दारा की लड़की
ज़ेब	:	मुगल सम्राट
बद सुल्तान	:	औरंगज़ेब का लड़का
ार	:	एक दानिशमंद व्यक्ति

समय : सुबह होने में थोड़ी-सी रात वाकी

[आगरा क़िले का शाही हरम। शाहजहाँ अपने कमरे में पलंग पर लेटा है। सिरहाने की ओर, दो तरफ शमादानों पर रोशनी हो रही है। बायीं ओर की दीवार में संगमरमर की जालियों से बनी हुई एक खूबसूरत खिड़की, जिससे यमुना और ताजमहल दोनों भली भाँति दिखाई देते हैं। दायीं ओर की दीवार में आतिश-दान पर मुमताज़ की एक खूबसूरत तस्वीर रक्खी हुई है। इसके अगल-बगल में दो क़ीमती फूलदान रक्खे हैं; जिसमें सजाई हुई फूल और पत्तियाँ मुरझा गई हैं। दायीं ओर कुछ किनारे पर, एक खुला हुआ दरवाजा, जिस पर सफेद पर्दा झूल रहा है। यह दरवाजा उस कमरे में खुलता है; जहाँ जहाँनारा, जोहरत सो रही हैं। पायताने का दरवाजा बाहर खुलता है, जिस पर एक स्याह रंग का पर्दा पड़ा है।

पर्दा उठने पर, शाहजहाँ अपने पलंग पर अस्तव्यस्त सोया मिलता है। बाल बिखरे हैं, दाढ़ी बेपरवाही से बढ़ गई है। मुँह मुर्झाया हुआ है। सिरहाने क़ीमती साटन का तकिया है; जिसके चारों ओर जरी के काम की हल्की पट्टियाँ हैं? शाहजहाँ, सफेद रेशम का लम्बा कुरता पहने है, नीचे चुस्त मुगली पायजामा है। शाहजहाँ दायीं करवट लेता हुआ, मानो कुछ अपने दामन में बुरी तरह से छिपाए हुए पड़ा है।

पृष्ठभूमि में, किले का आखिरी रात का गजर बजता है और इसके बाद ही कोई ऊँची आवाज़ में कहता है—

"आँ खुदाएस्त ताला मलिकुल्-मुल्के क़दीम।
कि तगयुर न कुनद मुम्लकिते जावे दानश॥"

आवाज़ दूर चली जाती है, फिर दूसरी आवाज उठती है, शाहजहाँ···चौंकता हुआ और सिकुड़ जाता है। फिर दूसरी आवाज़ बहुत नज़दीक से उठती है, जैसे कोई फ़जर की नमाज पढ़ता है।]

शाहजहाँ : (**एकाएक चौंककर जागता है, आधा उठकर···आश्चर्य से**) आँ खुदाएस्त ताला !···फ़जर की नमाज !!···(**बैठकर···प्रसन्नता से**) ओह !···मुमताज़ !···मुमताज़ की आवाज़ (**इधर-उधर देखता हुआ पागल-सा**) लेकिन मेरी मुमताज़ कहाँ छिप गई ?···कहाँ है तू ?···(**नीचे खड़ा हो जाता है**) अरे !···कहाँ छिप गई ?···कहाँ है तू ?···(**खिड़की से बाहर देखकर**) आह ! खौफ़नाक़ सुबह !···(**पीड़ा से पुकारकर**) मुमताज़ !···अर्जुमन्द बानू !···बानू !···मुमताज़ !!

जहाँनारा : (**बगल के कमरे से, घबड़ा कर दौड़ती हुई**) अब्बा !···अब्बाजान ! ! ··· (**कमरे में प्रवेश कर**)···अब्बाजान ! ···क्या हो गया आपको ?···(**हाथ पकड़ कर**) क्या है अब्बाजान ?

शाहजहाँ : (**खिड़की के पास से, बाहर देखता हुआ**)···बेटी ! ···जहाँनारा ! ! रात बीतने जा रही है।

जहाँनारा : (**परेशान-सी**) तो···इससे क्या हुआ अब्बाजान ?···आप आराम कीजिए !

शाहजहाँ : (**दुःख से**) नहीं, बेटी नहीं···मेरी आँखों में किसी के आँसुओं का दर्द हो रहा है।

जहाँनारा : मैं इसके लिए क्या करूँ, अब्बाजान ?···मुझे कुछ हुक्म दीजिए···।

शाहजहाँ : (**प्रसन्नता से घूम कर बढ़ता हुआ**) शाबाश बेटी ! ···शाबाश···तू मुमताज का ही तो खून है !···(**तेजी से**) बेटी मैं चाहता हूँ कि इस जाती हुई रात को तू पकड़ ले ! और क़ैद कर ले इस क़िले में !···अब मेरी ज़िंदगी में कभी सुबह न हो बेटी ! (**गिरती हुई वाणी से**) कभी सुबह न हो !

जहाँनारा : क्यों ?···अब्बाजान, आप क्यों इतने परेशान हो रहे हैं ?

शाहजहाँ : (**खिड़की से बाहर देखता हुआ**) बेटी ! रात बीतने जा रही है, और वह देख,···तेरी अम्मी यहाँ से भागती चली जा रही है !···वह देख यमुना की सतह पर···। तूफ़ानी लहरों को पार करती हुई···बेटी !

जहाँनारा : (**पास आकर देखती हुई**) कहाँ अब्बाजान !···मैं तो कुछ नहीं देख पा रही हूँ···यह सब वहम है···आपका अब्बाजान !

शाहजहाँ : नहीं···बेटी, कैसी पागल है तू ?···अपनी अम्मी को नहीं देख पा रही है ! ···देख···मेरी आँखों से देख, बेटी !···वह देख ताजमहल के पास पहुँच रही है··· कितनी तेज़ी से भाग रही है !···देख, उसकी आसमानी ओढ़नी में सफ़ेद सल्मे और सितारे चमक रहे हैं···पन्नों की कमर पेटी में मेरा सुर्ख़ रंग का पोखराज चमक रहा है। वह देख, भागती जा रही है !···उसके सर के स्याह गेसू हवा में उड़ रहे हैं (**चीखकर पीड़ा से**) बेटी !···क़ैद कर ले इस जाती हुई रात को··· !

जहाँनारा : इससे क्या होगा अब्बाजान !

शाहजहाँ : (**घूमकर···जहाँनारा की ओर बढ़ता हुआ**) क्या होगा···बेटी !··· आह ! !···तेरी अम्मी फिर लौट आएगी··· (**तेजी से**) रात को पकड़ ले बेटी ! ···सुबह न होने दे !···सुबह ही से तो वह यहाँ से डरकर भाग रही है···शायद उसका बेटा औरंगज़ेब उसे भी न क़ैद कर ले !

जहाँनारा : क़ुदरत और क़ायनात किसी के वश में नहीं अब्बाजान !···इन्हें कौन क़ैद कर सकता है ?

शाहजहाँ : (**बीच ही में**) और शाहजहाँ को कौन क़ैद कर सकता था बेटी !···वह भी तो आज क़ैद में है।···जल्दी कर बेटी ! नहीं तो रात चली जाएगी···सुबह हो जाएगी···फिर वह न लौटेगी !

जहाँनारा : (**परेशान हो**) लेकिन, फिर रात होगी अब्बा

शाहजहाँ : (**दर्द से**) रात होगी बेटी !···लेकिन आज की अधूरी रह जाएँगी। मुझे फिर उसकी मुस्कराहट न जवाब मिल सकेगा !

जहाँनारा : कैसा जवाब ? कैसे आँसू अब्बाजान ! मुझे

शाहजहाँ : बेटी, तेरी अम्मी मेरे पास आई थी। वह जज़्ब थी कि उसकी आँखों से बेक़रारी के शोले निकल रहे दामन से चिपककर मुस्करा भी रही थी। लेकिन···बे

जहाँनारा : क्या है अब्बाजान ?···आप क्या···कहिए···।

शाहजहाँ : बेटी, मैं तो तड़प रहा था···और उठकर अपने लिए हुए था···औरंगज़ेब की मौत के लिए जा रहा थ भी रही थी और रो भी रही थी। और जैसे ही मैंने वह मेरे पैरों में लिपट गई। मैं उसे समझाता रहा, वह मुझे देखती रही। इस तरह हम लोग किसी भी नती बेटी !···इसलिए मैं तुझ से कह रहा हूँ···कि आज क तू न बीतने दे।

जहाँनारा : (**सम्हालती हुई**) अब्बाजान !···वह सब ख़्वाब हो रहे हैं ?

शाहजहाँ : (**बीच ही में पीड़ा से**) बेटी !···ओह ! रात ख़ वाली है···और तू सिर्फ़ बकवास कर रही है···जा मेरी

जहाँनारा : नहीं, अब्बाजान, आप परेशान न हों, आपको तलवार लेकर क्या करिएगा ?

शाहजहाँ : (**उफन कर**) मैं कहता हूँ कि मेरी तलवार औ आज यहीं से यमुना की सतह पर देखता रहूँगा; और जैसे हुआ ख़ूनी आफ़ताब निकलेगा; मैं उसे ख़ंजर मार दूँग हुई तलवार से आसमान को चीर दूँगा। फिर कभी सुब ही रात होगी (**गिरती हुई वाणी से**) मेरी मुमताज़ मे उसकी रज़ामन्दी से औरंगज़ेब का ख़ून करूँगा।

जहाँनारा : (**पीड़ा से चीखकर**) हुज़ूर अब्बाजान !···मेरे सर था (**सम्हालती हुई**) आप पलंग पे बैठें···यह सब ख़्वाब दिमाग़ में वहम बन गया है। सारी रात धोखा थी; और

शाहजहाँ : (**बीच ही में**) बेटी !···क्या बक रही है तू ? **देखकर**) ओह !···मुमताज़ अपने मक़बरे में छिप गई गया। मैं उसके ख़्यालात को न जान सका कि वह औ बेटा मानती है या उसकी मौत चाहती है।

र से, घबड़ा कर दौड़ती हुई) अब्बा !···अब्बाजान !! ···
···अब्बाजान !···क्या हो गया आपको ?···(**हाथ पकड़**
ा ?
स से, बाहर देखता हुआ)···बेटी !···जहाँनारा !! रात

तो···इससे क्या हुआ अब्बाजान ?···आप आराम

, बेटी नहीं···मेरी आँखों में किसी के आँसुओं का दर्द हो

या करूँ, अब्बाजान ?···मुझे कुछ हुक्म दीजिए···।
म कर बढ़ता हुआ) शाबाश बेटी !···शाबाश···तू मुमताज
··(**तेजी से**) बेटी मैं चाहता हूँ कि इस जाती हुई रात को तू
कर ले इस क़िले में !···अब मेरी ज़िदगी में कभी सुबह न हो
वाणी से) कभी सुबह न हो !
जान, आप क्यों इतने परेशान हो रहे हैं ?
हर देखता हुआ) बेटी ! रात बीतने जा रही है, और वह
हाँ से भागती चली जा रही है !···वह देख यमुना की सतह
ों को पार करती हुई···बेटी !
खती हुई) कहाँ अब्बाजान !···मैं तो कुछ नहीं देख पा रही
···आपका अब्बाजान !
सी पागल है तू ?···अपनी अम्मी को नहीं देख पा रही है !
ों से देख, बेटी !···वह देख ताजमहल के पास पहुँच रही है···
रही है !···देख, उसकी आसमानी ओढ़नी में सफ़ेद सल्मे
रहे हैं···पन्नों की कमर पेटी में मेरा सुर्ख़ रंग का पोखराज
देख, भागती जा रही है !···उसके सर के स्याह गेसू हवा में
र पीड़ा से) बेटी !···क़ैद कर ले इस जाती हुई रात

ा अब्बाजान !
हाँनारा की ओर बढ़ता हुआ) क्या होगा···बेटी !···
मी फिर लौट आएगी···(**तेजी से**) रात को पकड़ ले बेटी !
···सुबह ही से तो वह यहाँ से डरकर भाग रही है···शायद
ब उसे भी न क़ैद कर ले !
क़ायनात किसी के वश में नहीं अब्बाजान !···इन्हें कौन क़ैद

और शाहजहाँ को कौन क़ैद कर सकता था बेटी !···वह
है।···जल्दी कर बेटी ! नहीं तो रात चली जाएगी···सुबह

हो जाएगी···फिर वह न लौटेगी !

जहाँनारा : (**परेशान हो**) लेकिन, फिर रात होगी अब्बाजान !

शाहजहाँ : (**दर्द से**) रात होगी बेटी !···लेकिन आज की रात कभी न होगी,···बातें अधूरी रह जाएँगी । मुझे फिर उसकी मुस्कराहट न मिल सकेगी···न आँसुओं का जवाब मिल सकेगा !

जहाँनारा : कैसा जवाब ? कैसे आँसू अब्बाजान ! मुझे भी तो कुछ बताइए···!

शाहजहाँ : बेटी, तेरी अम्मी मेरे पास आई थी । वह जज़्बाती दर्द से इस तरह पागल थी कि उसकी आँखों से बेक़रारी के शोले निकल रहे थे। दूसरी ओर वह मेरे दामन से चिपककर मुस्करा भी रही थी । लेकिन···बेटी मैं···लेकिन बेटी मैं···।

जहाँनारा : क्या है अब्बाजान ?···आप क्या···कहिए···।

शाहजहाँ : बेटी, मैं तो तड़प रहा था···और उठकर अपने हाथों में ज़हर का प्याला लिए हुए था···औरंगज़ेब की मौत के लिए जा रहा था। लेकिन मुमताज़ मुस्करा भी रही थी और रो भी रही थी । और जैसे ही मैंने अपना क़दम आगे बढ़ाया वह मेरे पैरों में लिपट गई । मैं उसे समझाता रहा, वह सिर्फ़ ख़ामोश निगाहों से मुझे देखती रही। इस तरह हम लोग किसी भी नतीजे पर नहीं पहुँच सके थे; बेटी !···इसलिए मैं तुझ से कह रहा हूँ···कि आज की इस जाती हुई रात को तू न बीतने दे ।

जहाँनारा : (**सम्हालती हुई**) अब्बाजान !···वह सब ख़्वाब था, आप क्यों इतने बेचैनी हो रहे हैं ?

शाहजहाँ : (**बीच ही में पीड़ा से**) बेटी !···ओह ! रात ख़त्म हो रही है···सुबह होने वाली है···और तू सिर्फ़ बकवास कर रही है···जा मेरी तलवार ला !

जहाँनारा : नहीं, अब्बाजान, आप परेशान न हों, आपको आराम मिलना चाहिए··· तलवार लेकर क्या करिएगा ?

शाहजहाँ : (**उफन कर**) मैं कहता हूँ कि मेरी तलवार और खंजर दोनों ला !···मैं आज यहीं से यमुना की सतह पर देखता रहूँगा; और जैसे ही इसके पीछे मुस्कराता हुआ ख़ूनी आफ़ताब निकलेगा; मैं उसे खंजर मार दूँगा और अपनी लपलपाती हुई तलवार से आसमान को चीर दूँगा । फिर कभी सुबह न होगी, हश्र तक रात ही रात होगी (**गिरती हुई वाणी से**) मेरी मुमताज़ मेरे साथ होगी। और मैं उसकी रज़ामन्दी से औरंगज़ेब का ख़ून करूँगा।

जहाँनारा : (**पीड़ा से चीखकर**) हुज़ूर अब्बाजान !···मेरे सर की क़सम, यह सब ख़्वाब था (**सम्हालती हुई**) आप पलंग पे बैठें···यह सब ख़्वाब था, जो इस वक़्त आपके दिमाग़ में वहम बन गया है । सारी रात धोखा थी; और ख़्वाब···।

शाहजहाँ : (**बीच ही में**) बेटी !···क्या बक रही है तू ? (**दौड़ कर खिड़की से देखकर**) ओह !···मुमताज़ अपने मक़बरे में छिप गई···ताजमहल आबाद हो गया। मैं उसके ख़्यालात को न जान सका कि वह औरंगज़ेब को अब भी अपना बेटा मानती है या उसकी मौत चाहती है।

जहाँनारा : अम्मी ! ···अम्मी···औरंगज़ेब की मौत चाहती होगी ! औरंगज़ेब मेरी अम्मी का खून है; इसे कभी न कहिए अब्बाजान ! ···फिर औरंगज़ेब की मौत के बारे में क्या सोचना ? उसे किसी तरह क़त्ल कर डालना जायज़ है अब्बाजान !

शाहजहाँ : (जल्दी से) ओह ! यही बात तो मैं मुमताज़ के मुंह से सुनना चाहता था··· और वह इसकी मंजूरी भी देने वाली थी कि इधर सुबह हो गई।

जहाँनारा : सुबह नहीं ··अब्बाजान ! ···ख्वाब देखते-देखते आप की आँखें खुल गईं··· और कुछ बात नहीं है अब्बाजान !

शाहजहाँ : क्या बच्चों की तरह बातें करती है, बेटी ! ···(पुकार कर) जोहरत ! ··· जोहरत !!

जोहरत : (बगल के कमरे में अचानक उठती हुई) जी···हुजूर दादा जान !! (कमरे में प्रवेश कर) क्या है···दादाजान ? ···(रुककर) ओह ! आप कितने परेशान नज़र आ रहे हैं।

शाहजहाँ : (गंभीरता से) नूर चश्मी ! ···आज मैं आफ़ताब का खून करना चाहता हूँ !

जोहरत : (घबड़ाकर) यह क्यों दादा जान ! ···यह कैसी बात···क्यों ऐसी बातें कर रहे हैं ?

शाहजहाँ : (चिढ़कर) तू भी नहीं समझती ! मुमताज मेरे पास से भाग गई···और वह कुछ न कह सकी। मैं पूछता रहा···और सुबह हो गई (क्रोध से) इसी से मैं आज सुबह का खून करना चाहता हूँ।

जहाँनारा : (बीच ही में) यह सब रात-भर देखे हुए ख्वाब का असर है, जोहरत ! अब्बा को कैसे राहत दी जाए ?

शाहजहाँ : (बिगड़कर) नहीं; बेटी ! ···यह ख्वाब नहीं था···बिलकुल नहीं था।

जोहरत : (सम्हालकर, पलंग पर बैठाती हुई) आप लेट जाएँ हुजूर दादाजान ! ··· कुछ न सोचें, ख्वाब सिर्फ सोचकर भूल जाने के लिए होता है, जगकर सोचने के लिए नहीं !

शाहजहाँ : (बीच ही में) लेकिन, रात-भर मुमताज़ मेरे पास थी, यह कैसा ख्वाब था बेटी ?

जोहरत : यह एक तूफ़ानी जज़बाती ख्वाब था, दादाजान ! दिन-रात आपकी रूह में जो एक लड़ाई छिड़ी है, यह उसी का ख्वाब था ! सिर्फ ख्वाब था···।

शाहजहाँ : (दुःख से) आह ! वह ख्वाब था ! तुम दोनों सच कह रही हो ? ···वह ख्वाब था ? ···(धीरे से) 'आँ खुदाएस्त ताला कि···तग़पुर न कुनद···फजर की नमाज' यह सब किसी औरंगज़ेब के आदमी की आवाज़ थी !

जहाँनारा : हाँ, अब्बाजान ! ···यह सब औरंगज़ेब की आवाज़ थी; जिसे सुनकर आप चौंक उठे होंगे, वह भी औरंगज़ेब की आवाज़ थी !

शाहजहाँ : (पीड़ा से) औरंगज़ेब की आवाज़ !

[सुबह का गजर बजता है।]

शाहजहाँ : (चौंककर उठता हुआ) आह ! आफ़ताब हुई।

जहाँनारा : (सम्हाल कर बैठाती हुई) आप बिलकुल न उ करिए ··हो जाने दीजिए···सुबह·· निकलने दीजि सुनहरी किरनों से ताजमहल का रुखसार जैसे सुहाग आसमान परिन्दों के प्यारे नग़मों से भर जाएगा तब

शाहजहाँ : (पीड़ा से) नहीं बेटी ! कम से कम मैं आ लूं !

जहाँनारा : नहीं, अब्बाजान ! मैं आपको कैसे समझाऊँ नहीं होती, सिर्फ इन्सान खूनी होता है, औरंगज़ेब उ

शाहजहाँ : उसी खूनी को तो खत्म करने के लिए मैं···मु था।

जोहरत : इसमें रज़ामन्दी की क्या बात ?···इतना परेश औरंगज़ेब का खून होना चाहिए···होना चाहिए···।

शाहजहाँ : मैं भी इसका क़ायल हूँ···लेकिन सोचना पड़ रूह न रो दे···मुझसे मेरी मुमताज़···।

जहाँनारा : अब्बाजान ! ···आप फिर बहुत परेशान हो रहे को ! ···मैं आपको कुरान शरीफ़ सुना रही हूँ···सुनि

शाहजहाँ : नहीं बेटी ! ···कुरान शरीफ़ औरंगज़ेब पढ़ नहीं···

जहाँनारा : फिर आपका दिल कैसे बदल सकता है···अब्ब

शाहजहाँ : इसे मैं खुद नहीं जानता, बेटी !

जहाँनारा : क्यों अब्बाजान ?

शाहजहाँ : क्यों क्या ? ···तू फिर भी इसे पूछती है क्यों, कोशिश करूंगा।

जहाँनारा : ज़रूर अब्बाजान !

शाहजहाँ : बेटी जोहरत ! ···उस गुलदस्ते को मेरे हाथ मे

जोहरत : (पकड़ाती हुई) लीजिए दादाजान !

शाहजहाँ : (गुलदस्ते को देखता हुआ) बेटी ! ···देख रही में सजायी हुई हरी-हरी पत्तियाँ, मुस्कराते हुए फूल फिर तुम लोग इसे इसकी मुस्कराहट वापस ला सकोग

[नीचे रख देता है।]

जहाँनारा : ज़रा सोच लूं, अब्बाजान !

शाहजहाँ : सोचना क्या है बेटी, तुम इसे इसकी मुस्कराहट मेरी हालत है बेटी ! ···मैं चाहता हूँ कि मेरी बची

अम्मी···औरंगज़ेब की मौत चाहती होगी ! औरंगज़ेब मेरी
इसे कभी न कहिए अब्बाजान ! ···फिर औरंगज़ेब की मौत के
ा ? उसे किसी तरह क़त्ल कर डालना जायज़ है अब्बाजान !
ओह ! यही बात तो मैं मुमताज़ के मुह से सुनना चाहता था···
ज़ूरी भी देने वाली थी कि इधर सुबह हो गई ।
··अब्बाजान ! ···ख़्वाब देखते-देखते आप की आँखें खुल गईं···
ीं है अब्बाजान !
की तरह बातें करती है, बेटी ! ···(पुकार कर) जोहरत ! ···

मरे में अचानक उठती हुई) जी···हुजूर दादा जान !! (कमरे
ा है···दादाजान ? ···(रुककर) ओह ! आप कितने परेशान

)नूर चश्मी ! ···आज मैं आफ़ताब का खून करना चाहता हूँ !
यह क्यों दादा जान ! ···यह कैसी बात···क्यों ऐसी बातें कर

तू भी नहीं समझती ! मुमताज़ मेरे पास से भाग गई···और वह
। मैं पूछता रहा···और सुबह हो गई (क्रोध से) इसी से मैं आज
रना चाहता हूँ ।
में) यह सब रात-भर देखे हुए ख़्वाब का असर है, जोहरत !
हत दी जाए ?
) नहीं; बेटी ! ···यह ख़्वाब नहीं था···बिलकुल नहीं था ।
र, पलंग पर बैठाती हुई) आप लेट जाएँ हुज़ूर दादाजान ! ···
ाब सिर्फ़ सोचकर भूल जाने के लिए होता है, जगकर सोचने के

में) लेकिन, रात-भर मुमताज़ मेरे पास थी, यह कैसा ख़्वाब था

फ़ानी जज़्बाती ख़्वाब था, दादाजान ! दिन-रात आपकी रूह में
छिड़ी है, यह उसी का ख़्वाब था ! सिर्फ़ ख़्वाब था···।
आह ! वह ख़्वाब था ! तुम दोनों सच कह रही हो ? ···वह
धीरे से) 'अं ख़ुदाएस्त ताला कि···तगपुर न कुनद···फजर की
किसी औरंगज़ेब के आदमी की आवाज़ थी !
ाजान ! ···यह सब औरंगज़ेब की आवाज़ थी; जिसे सुनकर आप
वह भी औरंगज़ेब की आवाज़ थी !
) औरंगज़ेब की आवाज़ !

र बजता है ।]

शाहजहाँ : (**चौंककर उठता हुआ**) आह ! आफ़ताब निकल आया···मेरी शिकस्त हुई ।

जहाँनारा : (**सम्हाल कर बैठाती हुई**) आप बिलकुल न उठिए···अब्बाजान ! ···आराम करिए···हो जाने दीजिए···सुबह··· निकलने दीजिए आफ़ताब ! अभी इसकी सुनहरी किरनों से ताजमहल का रुख़सार जैसे सुहाग से रंग जाएगा । अभी यह सूना आसमान परिन्दों के प्यारे नग़मों से भर जाएगा तब अब्बाजान ! ···

शाहजहाँ : (**पीड़ा से**) नहीं बेटी ! कम से कम मैं आज ख़ूनी आफ़ताब को तो देख लूं !

जहाँनारा : नहीं, अब्बाजान ! मैं आपको कैसे समझाऊँ ? कुदरत की कोई चीज़ ख़ूनी नहीं होती, सिर्फ़ इन्सान ख़ूनी होता है, औरंगज़ेब उसका सबूत है ।

शाहजहाँ : उसी ख़ूनी को तो ख़त्म करने के लिए मैं···मुमताज़ से रज़ामन्दी ले रहा था ।

जोहरत : इसमें रज़ामन्दी की क्या बात ? ···इतना परेशान होने की क्या बात··· औरंगज़ेब का ख़ून होना चाहिए···होना चाहिए···।

शाहजहाँ : मैं भी इसका क़ायल हूँ···लेकिन सोचना पड़ता है कि कहीं उसकी माँ की रूह न रो दे···मुझसे मेरी मुमताज़···।

जहाँनारा : अब्बाजान ! ···आप फिर बहुत परेशान हो रहे हैं! ···जाने दीजिए इन बातों को ! ···मैं आपको कुरान शरीफ़ सुना रही हूँ···सुनिए अब्बाजान !

शाहजहाँ : नहीं बेटी ! ···कुरान शरीफ़ औरंगज़ेब पढ़ता है, मुझे उसकी ज़रूरत नहीं···

जहाँनारा : फिर आपका दिल कैसे बदल सकता है···अब्बाजान ?

शाहजहाँ : इसे मैं ख़ुद नहीं जानता, बेटी !

जहाँनारा : क्यों अब्बाजान ?

शाहजहाँ : क्यों क्या ? ···तू फिर भी इसे पूछती है क्यों, तब मैं इसका जवाब देने की कोशिश करूंगा ।

जहाँनारा : ज़रूर अब्बाजान !

शाहजहाँ : बेटी जोहरत ! ···उस गुलदस्ते को मेरे हाथ में पकड़ा दे···बेटी !

जोहरत : (पकड़ाती हुई) लीजिए दादाजान !

शाहजहाँ : (**गुलदस्ते को देखता हुआ**) बेटी ! ···देख रही हो न, देखो···इस गुलदस्ते में सजायी हुई हरी-हरी पत्तियाँ, मुस्कराते हुए फूल किस तरह मुरझा गए हैं । क्या फिर तुम लोग इसे इसकी मुस्कराहट वापस ला सकोगी । ···बोलो···जवाब दो ।

[नीचे रख देता है ।]

जहाँनारा : ज़रा सोच लूं, अब्बाजान !

शाहजहाँ : सोचना क्या है बेटी, तुम इसे इसकी मुस्कराहट नहीं दे सकोगी । ···ठीक यही मेरी हालत है बेटी ! ···मैं चाहता हूँ कि मेरी बची हुई ज़िन्दगी में रात ही रात

हो। मैं ख्वाब देखता रहूँ, मेरे ही हाथों से औरंगज़ेब की मौत होती हो···मुमताज़ खुश होकर दूर से देखती हो···फिर हमेशा के लिए···वह अपनी मौत पर मुस्कराए, मैं अपनी ज़िन्दगी पर रोऊँ !

जहाँनारा : ऐसा न कहिए···अब्बाजान ! आपकी ज़िन्दगी में फिर से बहार आएगी,··· मुझे यक़ीन है कि इस बार खिजराबाद की लड़ाई में दारा की फ़तह होगी और औरंगज़ेब की मौत होगी।

शाहजहाँ : (**प्रसन्नता से**) सच बेटी !···मेरी ज़िन्दगी में फिर से बहार !···बड़ी अच्छी है···तू ! ला, इस खुशी में वह दीवार के सहारे रक्खी हुई मेरी मुमताज़ की तस्वीर मुझे दे दें !

जहाँनारा : (**देती हुई**) लीजिए···अब्बाजान !

शाहजहाँ : (**तस्वीर देखते हुए**) आह ! मुमताज़ मुस्करा रही है !···औरंगज़ेब की मौत सुनते ही मुस्करा रही है। (**जल्दी से**) और तू जानती है बेटी ! इसकी खामोश आँखें क्या कह रही हैं ?

जहाँनारा : आपकी राहत के लिए खुदा से दुआ माँग रही है, अब्बाजान !

शाहजहाँ : (**झूठी हँसी के साथ**) नहीं, बेटी तू नहीं समझ सकी···ये आँखें कह रही हैं कि मेरी ज़िन्दगी में रात हो जाए, रोशनी बुझ जाएँ···और अँधेरे में, मैं और मेरे शहंशाह !···मेरे शहंशाह और मैं (**रुककर जल्दी से**) और बेटी !···तू यह बता सकती है इन पतली लबों पर क्या मुस्करा रहा है ?

जोहरत : आपके लिए इल्तिज़ा और दुआएँ मुस्करा रही हैं दादाजान !···और उन पै हसरत की किरणें फूट रही हैं।

शाहजहाँ : नहीं बेटी !···ये मुस्कराते हुए होंठ आज की सुबह को बददुआ दे रहे हैं।··· और···और···इन होंठों पर वे बातें साफ़ उभर आई हैं जिन्हें मुमताज़ मुझसे कहने वाली थी।

जहाँनारा : वे कौन बातें थीं अब्बाजान ?

शाहजहाँ : यही औरंगज़ेब की क़त्ल करने में उसकी रज़ामन्दी !···(**रुककर**) लेकिन ···क्या मैं ठीक रहा हूँ, बेटी ! तू तो मुमताज़ की ही रूह है···देख···तू भी देख ले···मैं ठीक कह रहा हूँ न !

जहाँनारा : (**तस्वीर लेती हुई**) हाँ, अब्बाजान ! आप ठीक कह रहे हैं।

[तस्वीर को आतिशदान पर रख देती है। सहसा पृष्ठभूमि में कोई पुकारता है—"जोहरत ! जोहरत !!"]

शाहजहाँ : (**जल्दी से**) बेटी···जोहरत !···जा बाहर देख, तुझे कोई पुकार रहा है।

जोहरत : (**जाती हुई**) बहुत अच्छा···दादाजान !···

शाहजहाँ : (**प्रसन्नता से···उठकर**)···दारा···तो नहीं आया !···लगता है, यह दारा की आवाज़ थी···मेरी आँखों का नूर दारा !···(**टहलता हुआ**) एक बार उसे दिल-भर देखने की आखिरी तमन्ना है। वह आता···तो मैं अपने हाथों से उसका मुँह धोता, उसे खाना खिलाता; उसके थके हुए
नग़मा गुनगुनाता (**जल्दी से भाव बदल क**
देख ले·· बाहर दारा ही तो नहीं आया है
हो, और बाहर ही आवाज़ देकर बेहोश हो

[सहसा चीखती हुई जोहरत का प्रवेश।]

जोहरत : (**घबराहट से**) दादा जान !···दादाजा
चिपक जाती है) शहंशाह···दादाजान !

शाहजहाँ : (**सम्हालता हुआ**) क्या हुआ बेटी !
कौन था बाहर ?

जोहरत : (**डर कर**)···दादाजान ! वह औरंगज़े

शाहजहाँ : (**आश्चर्य से**) मुहम्मद सुल्तान !···
आह ! चोरी करने तो नहीं आया था (**इधर**
तस्वीर तो है न !···हाँ···है तो ! (**जल्दी से**
कर तो नहीं आया था ?

जोहरत : नहीं, दादाजान !···वह मुझसे यह कहने
मुहब्बत करता हूँ।"

शाहजहाँ : (**आश्चर्य से**) मुहब्बत !

जोहरत : जी हाँ, दादाजान ! वह कहता था कि
पैग़ाम लेकर आया हूँ। वह मुझ से निकाह क

शाहजहाँ : (**परेशान**) उसने दारा के मुतालिक़ को

जोहरत : नहीं दादाजान ! वह तो अजीब तरह से,
कर रहा था।

शाहजहाँ : (**क्रोध में**) जोहरत !···तूने उसकी ज़ुब

जोहरत : नहीं, दादाजान मैं उसके खौफ़नाक चेहरे से

शाहजहाँ : (**उत्सुकता से**) बेटी, जहाँनारा !···ज़रा
तो नहीं खड़ा है ?

जहाँनारा : बहुत अच्छा अब्बाजान।

[बाहर चली जाती है; सहसा क़िले में शाही
बिगुल विजय-ध्वनि करता है।]

शाहजहाँ : (**घबड़ाकर पुकारता हुआ**) जहाँनारा
नारा !!

जहाँनारा : (**दौड़कर प्रवेश करती हुई**) आई अब्बाज
नहीं है !

शाहजहाँ : ख़ैर, जाने दो उसे···बेटी ! क़िले में यह

ता रहूँ, मेरे ही हाथों से औरंगज़ेब की मौत होती हो···मुमताज़
देखती हो···फिर हमेशा के लिए···वह अपनी मौत पर मुस्कराए,
पर रोऊँ !
हिए···अब्बाजान ! आपकी ज़िन्दगी में फिर से बहार आएगी,···
इस बार खिजराबाद की लड़ाई में दारा की फ़तह होगी और
त होगी।
से) सच बेटी !···मेरी ज़िन्दगी में फिर से बहार !···बड़ी
ला, इस खुशी में वह दीवार के सहारे रक्खी हुई मेरी मुमताज़ की
!
) लीजिए···अब्बाजान !
देखते हुए) आह ! मुमताज मुस्करा रही है !···औरंगज़ेब की
स्करा रही है। (जल्दी से) और तू जानती है बेटी ! इसकी
ा कह रही है ?
ाहत के लिए खुदा से दुआ माँग रही है, अब्बाजान !
के साथ) नहीं, बेटी तू नहीं समझ सकी···ये आँखें कह रही हैं कि
रात हो जाए, रोशनी बुझ जाएँ···और अँधेरे में, मैं और मेरे
शहंशाह और मैं (रुककर जल्दी से) और बेटी !···तू यह बता
ली लबों पर क्या मुस्करा रहा है ?
इल्तिज़ा और दुआएँ मुस्करा रही हैं दादाजान !···और उन पै
में फूट रही हैं।
!···ये मुस्कराते हुए होंठ आज की सुबह को बददुआ दे रहे हैं।···
इन होंठों पर वे बातें साफ़ उभर आई हैं जिन्हें मुमताज़ मुझसे कहने

ातें थीं अब्बाजान ?
गज़ेब की क़त्ल करने में उसकी रज़ामन्दी !···(रुककर) लेकिन
रहा हूँ, बेटी ! तू तो मुमताज़ की ही रूह है···देख···तू भी देख
ह रहा हूँ न !
लेती हुई) हाँ, अब्बाजान ! आप ठीक कह रहे हैं।

ातिशदान पर रख देती है। सहसा पृष्ठभूमि में कोई पुकारता है—
हरत !!"]
) बेटी···जोहरत !···जा बाहर देख, तुझे कोई पुकार रहा है।
ई) बहुत अच्छा···दादाजान !···
ा से···उठकर)···दारा···तो नहीं आया !···लगता है, यह दारा
···मेरी आँखों का नूर दारा !···(टहलता हुआ) एक बार उसे
की आखिरी तमन्ना है। वह आता···तो मैं अपने हाथों से उसका मुँह

धोता, उसे खाना खिलाता; उसके थके हुए पैर मलता। वह सोता···और मैं कोई नग़मा गुनगुनाता (जल्दी से भाव बदल कर) बेटी जहाँनारा ! जल्दी से तू ही देख ले·· बाहर दारा ही तो नहीं आया है !···वह कहीं घायल हो कर न आया हो, और बाहर ही आवाज़ देकर बेहोश हो गया हो !

[सहसा चीखती हुई जोहरत का प्रवेश।]

जोहरत : (घबराहट से) दादा जान !···दादाजान !! (डर से भागकर शाहजहाँ से चिपक जाती है) शहंशाह···दादाजान !

शाहजहाँ : (सम्हालता हुआ) क्या हुआ बेटी !···बोलो···जोहरत, क्या हुआ ?··· कौन था बाहर ?

जोहरत : (डर कर)···दादाजान ! वह औरंगज़ेब का नापाक खून सुल्तान था।

शाहजहाँ : (आश्चर्य से) मुहम्मद सुल्तान !···औरंगज़ेब का लड़का ! (दुःख से) आह ! चोरी करने तो नहीं आया था (इधर-उधर देखकर) मेरी मुमताज़ की तस्वीर तो है न !···हाँ···है तो ! (जल्दी से) फिर···फिर दीवार का कान बनकर तो नहीं आया था ?

जोहरत : नहीं, दादाजान !···वह मुझसे यह कहने आया था कि "जोहरत मैं तुझसे मुहब्बत करता हूँ।"

शाहजहाँ : (आश्चर्य से) मुहब्बत !

जोहरत : जी हाँ, दादाजान ! वह कहता था कि मैं तुम्हारे पास अपनी मुहब्बत का पैग़ाम लेकर आया हूँ। वह मुझ से निकाह करने के लिए कहता था !

शाहजहाँ : (परेशान) उसने दारा के मुतालिक़ कोई खबर न दी बेटी ?···

जोहरत : नहीं दादाजान ! वह तो अजीब तरह से, अपने पागलपन में बेहोशी की बातें कर रहा था।

शाहजहाँ : (क्रोध में) जोहरत !···तूने उसकी ज़ुबान क्यों नहीं खींच ली ?

जोहरत : नहीं, दादाजान मैं उसके खौफ़नाक चेहरे से डर गई···।

शाहजहाँ : (उत्सुकता से) बेटी, जहाँनारा !···ज़रा तू देख तो ले···वह अब तक बाहर तो नहीं खड़ा है ?

जहाँनारा : बहुत अच्छा अब्बाजान।

[बाहर चली जाती है; सहसा क़िले में शाही बाजे बजने लगते हैं; ऊँचे स्वर से बिगुल विजय-ध्वनि करता है।]

शाहजहाँ : (घबड़ाकर पुकारता हुआ) जहाँनारा !···बेटी जहाँनारा !! जहाँनारा !!

जहाँनारा : (दौड़कर प्रवेश करती हुई) आई अब्बाजान !···अब्बाजान बाहर तो कोई नहीं है !

शाहजहाँ : खैर, जाने दो उसे···बेटी ! क़िले में यह कैसा बाजा बज रहा है ?

जहाँनारा : क्यों, आप इससे इतना परेशान हो रहे हैं ? आप आराम से रहिए; बजने दीजिए इन बाजों को ? इसमें क्या रक्खा है ?

शाहजहाँ : बेटी !···आज शहंशाह शाहजहाँ को डर लग रहा है···इन खौफ़नाक़ बाजों को सुनकर । उसका दिल कँप रहा है !···बता बेटी···यह क्या है ?

जहाँनारा : कोई खास बात नहीं है अब्बाजान ! आप आराम कीजिए ।

शाहजहाँ : (**परेशान हो**) नहीं, बेटी !···तू नहीं समझती ! इस खौफ़नाक़ बाजे के पीछे ज़रूर कोई बात है ! (**रुककर, जल्दी से**) ओह ! ज़रा देख तो लूँ; मेरा ताजमहल उसी तरह मुस्करा रहा है न ! (**खिड़की से बाहर देखकर**) हाँ, मेरा ताज तो चमक रहा है···(**कमरे में घूमकर**) और मेरी मुमताज़ की तस्वीर भी तो है !···तब···तब···(**जल्दी से**) बेटी ! बता, तब क्या बात है ?

जहाँनारा : क्या बात हो सकती है, अब्बाजान !···ज्यादा से ज्यादा औरंगज़ेब को कहीं फ़तहयाबी मिली होगी !

शाहजहाँ : (**बढ़कर···उसके मुँह पर हाथ रखकर**)···ऐसी दुआ मत दे बेटी !··· बल्कि यह कह दे कि औरंगज़ेब की दूसरी शादी हो रही है !···और वह अपने बाप शहंशाह शाहजहाँ को क़ैद करने की खुशी में···शाही बाजे बजवा रहा है ?

[महमा पायताने के दरवाजे के बाहर से आवाज़ ।]

आवाज़ : (**अदब से**) शहंशाह !···क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

शाहजहाँ : (**चौंककर**) आ सकते हो !···(**पुकारकर**) दारा ! दारा !!

[दिलदार का प्रवेश ।]

दिलदार : (**आदाब करके**) शहंशाह ! मैं दारा नहीं···मेरा नाम दिलदार है !

शाहजहाँ : (**प्यार से**) दिलदार और दारा ! दारा और दिलदार !···दोनों कितने नज़दीक हैं ।

दिलदार : (**दुःख से**) शहंशाह ! खुदा आपको राहत दे !

शाहजहाँ : (**आश्चर्य से दिलदार की ओर बढ़ते हुए**) दिलदार···! दिलदार !!···तुम इस तरह मुझे क्यों देख रहे हो ? घबड़ाओ नहीं, बोलो···तुम पर कौन-सी मुसीबत आन पड़ी है ?···बोलो, मैं क़ैदी हूँ···फिर भी शहंशाह शाहजहाँ हूँ, साफ-साफ बताओ, डरो नहीं···मैं किसी भी तरह सही,···तुम्हारी मदद करूँगा । बोलो··· बोलो···तुम्हें दौलत चाहिए !···इन्साफ चाहिए···प्यार···चाहिए,···बोलो···!

शाहजहाँ : (**दुःख से**) पाक-शहंशाह ! मुझे कुछ नहीं चाहिए ! मेरी किस्मत पर मुझे बददुआ मिलनी चाहिए···।

शाहजहाँ : (**दुःख से**) क्यों, ऐसा कह रहे हो दिलदार ?···साफ बताओ, मैं तुम्हारी रोती हुई किस्मत को मुस्कराहट लुटा सकता हूँ ।

दिलदार : (**पीड़ा और रुँधे गले से**) शहंशाह !

शाहजहाँ : (**उत्सुकता से**) हाँ, हाँ, बोलो !···रुक क्यों गए ? (**आश्चर्य से**) अरे ! तुम्हारी आँखें इस तरह रो रही हैं ? (**प्यार से न**
मालूम हो गया; औरंगज़ेब ने तुम्हारा घर जलवा
मरवा डाला होगा, और तुम्हें ज़िन्दगी भर रोने के
लेकिन घबड़ाओ नहीं, तुम्हारी आँखें एक शहंशाह
शहंशाह हर तरह से राहत देगा !···घबड़ाओ नहीं

दिलदार : (**और पीड़ा से**) शहंशाह! आह, आप कितन
लेकिन शहंशाह ! मैं अर्ज़ करता हूँ कि आप अप
दीजिए···मैं आपको एक बहुत बुरी खबर देने आय

शाहजहाँ : (**आश्चर्य से**) दिल्ली का तख्त तो नहीं जल

दिलदार : नहीं, आलमपनाह !···उससे भी बुरी खबर
को···।

[वाद्यस्वर की तीखी झंकार; दिलदार बाहर चला

शाहजहाँ : (**पीड़ा से चीखकर**) आह ! कत्ल कर डाल

[दर्द से सर थामकर बैठ जाता है, जहाँनारा
दर्द भरी आवाज से पृष्ठभूमि भर जाती है ।]

आह ! दारा मर गया ! आह ! दारा शिकोह !
शाहजहाँ तू अब भी जिन्दा है !

[स्वयं सँभलकर जहाँनारा और जोहरत को सँभा

खामोश हो जाओ बेटी···जोहरत ! अभी मैं
चश्मी ! खुदा को याद कर !

जोहरत : (**पीड़ा से**) दादाजान !···मेरे अब्बा कहाँ हैं

शाहजहाँ : (**समझाता हुआ**) घबड़ाओ नहीं जोहरत !
ज़रा इस खिड़की से बाहर तो देख !···आसमान
टुकड़े-टुकड़े हो गया है। जमुना में तूफ़ान तो नहीं
पर अब भी इन्सान चल रहे हैं ?

जहाँनारा : (**पीड़ा से**) अब्बा ! हम लोगों की मौत क
दारा !!

शाहजहाँ : (**उठकर**) नहीं बेटा···ज़रा उठ के देख तो
रहा है ?

[सब चुप होकर देखते हैं ।]

जहाँनारा : कुछ नहीं, अब्बाजान !···आप अपने दिमाग़
आपका ताजमहल तो हमेशा की तरह मुस्करा रहा

शाहजहाँ : (**पागलों की तरह घूमकर**) और,···यह मु

इससे इतना परेशान हो रहे हैं ? आप आराम से रहिए; बजने
को ? इसमें क्या रक्खा है ?
आज शहंशाह शाहजहाँ को डर लग रहा है···इन खौफ़नाक बाजों
का दिल काँप रहा है ! ···बता बेटी···यह क्या है ?
वात नहीं है अब्बाजान ! आप आराम कीजिए ।
ी) नहीं, बेटी ! ···तू नहीं समझती ! इस खौफ़नाक बाजे के
बात है ! (**रुककर, जल्दी से**) ओह ! ज़रा देख तो लूँ; मेरा
रह मुस्करा रहा है न ! (**खिड़की से बाहर देखकर**) हाँ, मेरा
ा है···(**कमरे में घूमकर**) और मेरी मुमताज़ की तस्वीर भी तो
···(**जल्दी से**) बेटी ! बता, तब क्या बात है ?
ो सकती है, अब्बाजान ! ···ज्यादा से ज्यादा औरंगज़ेब को कहीं
होगी !
(**उसके मुँह पर हाथ रखकर**)···ऐसी दुआ मत दे बेटी ! ···
कि औरंगज़ेब की दूसरी शादी हो रही है ! ···और वह अपने
ज़हाँ को क़ैद करने की खुशी में···शाही बाजे बजवा रहा है ?
के दरवाजे के बाहर से आवाज़ ।]
हंशाह ! ···क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?
आ सकते हो ! ···(**पुकारकर**) दारा ! दारा !!
श ।]
रके) शहंशाह ! मैं दारा नहीं···मेरा नाम दिलदार है !
दिलदार और दारा ! दारा और दिलदार ! ···दोनों कितने
शहंशाह ! खुदा आपको राहत दे !
(**दिलदार की ओर बढ़ते हुए**) दिलदार···! दिलदार !! ···तुम
देख रहे हो ? घबड़ाओ नहीं, बोलो···तुम पर कौन-सी मुसीबत
बोलो, मैं क़ैदी हूँ···फिर भी शहंशाह शाहजहाँ हूँ, साफ-साफ
···मैं किसी भी तरह नहीं,···तुम्हारी मदद करूँगा । बोलो···
त चाहिए ! ···इन्साफ चाहिए···प्यार···चाहिए,···बोलो···!
ाक-शहंशाह ! मुझे कुछ नहीं चाहिए ! मेरी किस्मत पर मुझे
ाहिए···।
क्यों, ऐसा कह रहे हो दिलदार ? ···साफ बताओ, मैं तुम्हारी
को मुस्कराहट लुटा सकता हूँ ।
रुँधे गले से) शहंशाह !
) हाँ, हाँ, बोलो ! ···रुक क्यों गए ? (**आश्चर्य से**) अरे !

तुम्हारी आँखें इस तरह रो रही हैं ? (**प्यार से नजदीक जाकर**) मत रोओ, मुझे मालूम हो गया; औरंगज़ेब ने तुम्हारा घर जलवा दिया होगा ? तुम्हारे बच्चों को मरवा डाला होगा, और तुम्हें ज़िन्दगी भर रोने के लिए अकेला छोड़ दिया होगा··· लेकिन घबड़ाओ नहीं, तुम्हारी आँखें एक शहंशाह के सामने रोई हैं ! तुम्हें यह शहंशाह हर तरह से राहत देगा ! ···घबड़ाओ नहीं !

दिलदार : (**और पीड़ा से**) शहंशाह ! आह, आप कितनी बुलंदी पर हैं ! (**जल्दी से**) लेकिन शहंशाह ! मैं अर्ज़ करता हूँ कि आप अपने ही हाथों से मुझे क़त्ल कर दीजिए···मैं आपको एक बहुत बुरी खबर देने आया हूँ !

शाहजहाँ : (**आश्चर्य से**) दिल्ली का तख्त तो नहीं जल गया ?

दिलदार : नहीं, आलमपनाह ! ···उससे भी बुरी खबर—औरंगज़ेब ने शाहजहाँ दारा को···।

[वाद्यस्वर की तीखी झंकार; दिलदार बाहर चला जाता है ।]

शाहजहाँ : (**पीड़ा से चीखकर**) आह ! कत्ल कर डाला !

[दर्द से सर थामकर बैठ जाता है, जहाँनारा और जोहरत दोनों चीखती हैं । दर्द भरी आवाज से पृष्ठभूमि भर जाती है ।]

आह ! दारा मर गया ! आह ! दारा शिकोह ! ···दारा ! ···दारा ! ! ···आह, शाहजहाँ तू अब भी ज़िन्दा है !

[स्वयं सँभलकर जहाँनारा और जोहरत को सँभालता हुआ ।]

खामोश हो जाओ बेटी···जोहरत ! अभी मैं ज़िन्दा हूँ बेटी जहाँनारा···नूर चश्मी ! खुदा को याद कर !

जोहरत : (**पीड़ा से**) दादाजान ! ···मेरे अब्बा कहाँ हैं ? ···आह ! मेरी अम्मी !!

शाहजहाँ : (**समझाता हुआ**) घबड़ाओ नहीं जोहरत ! (**पुकार कर**) बेटी जहाँनारा··· ज़रा इस खिड़की से बाहर तो देख ! ···आसमान उसी तरह खामोश है कि फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया है । जमुना में तूफ़ान तो नहीं आया ? ···देख बेटी···सड़क पर अब भी इन्सान चल रहे हैं ?

जहाँनारा : (**पीड़ा से**) अब्बा ! हम लोगों की मौत क्यों नहीं हो जाती ? ···आह ! दारा !!

शाहजहाँ : (**उठकर**) नहीं बेटा···ज़रा उठ के देख तो ले···कहीं ताजमहल तो नहीं रो रहा है ?

[सब चुप होकर देखते हैं ।]

जहाँनारा : कुछ नहीं, अब्बाजान ! ···आप अपने दिमाग़ पर इसका असर न डालें ! ··· आपका ताजमहल तो हमेशा की तरह मुस्करा रहा है ! ···अब्बाजान ! ···

शाहजहाँ : (**पागलों की तरह घूमकर**) और,···यह मुमताज़ की तस्वीर तो नहीं रो

रही है !···(**तस्वीर के पास जाकर**) मुमताज़ !···औरंगज़ेब ने तेरे दारा का क़त्ल कर डाला !! (**सहसा रुककर**) ओह, ओ !!···बेटी अब समझा,··· मुमताज़ तो गुस्से से सुर्ख़ हो गई है, वह औरंगज़ेब को फौरन मौत की सज़ा दे रही है देख बेटी ! तू भी देख ले···मैं ठीक कह रहा हूँ न !···इसके लबों से औरंगज़ेब को फौरन क़त्ल के हुक्म की आवाज़ आ रही है न !

जहाँनारा : अब्बाजान !···हुज़ूर अब्बाजान !

शाहजहाँ (**साँसें लेता हुआ**) अच्छा खुदा हाफ़िज़ ! मुमताज़ की ही तो रज़ामन्दी की मुझे देर थी···। अच्छा···खुदा हाफ़िज़ ! (**पुकारकर**) दिलदार ! दिलदार !!

दिलदार : (**प्रवेश कर**) हुक्म···जहाँपनाह !

शाहजहाँ : (**गंभीरता से**) सुनो, दिलदार !···मैं इस वक्त औरंगज़ेब से मिलना चाहता हूँ···तुम फौरन औरंगज़ेब के पास जाओ···और उससे कहो कि शाहजहाँ की मौत हो रही है, और वह आखिरी वक्त तुम्हें देखना चाहता है !···जाओ, जल्दी उसे भेजो !

दिलदार : (**जाता हुआ, अदब से**) बेहतर···जहाँपनाह !

शाहजहाँ : (**चारों ओर देखकर, गंभीरता से**) बेटी ! जहाँनारा ! जोहरत···!

सम्मिलित स्वर में : जी; क़िब्लेआलम ।

शाहजहाँ : इधर आ जाओ, पास आ जाओ,···सुनो···पास आ जाओ···सुनो, मैं अपनी ज़हरीली कटार कुर्ते की आस्तीन में छिपा रहा हूँ ।

जहाँनारा : (**डर से**) अब्बा !

शाहजहाँ : घबड़ाओ नहीं बेटी !···सुनो···तुम जल्दी से ओढ़नी में मेरा तीखा खंजर छिपाओ और बेटी जोहरत !

जोहरत : जी,···दादाजान !

शाहजहाँ : मेरी नागन-सी भुजाली तुम अपनी कमर में छिपाओ ! जल्दी करो ।

दोनों मिलकर : (**उत्सुकता और भय से**) इससे क्या होगा अब्बाजान !

शाहजहाँ : (**साँस लेकर**) इससे बहुत बड़ा काम होगा, बाप अपने दुश्मन बेटे से बदला लेगा, उसकी अम्मी खुश होगी···। औरंगज़ेब मुझसे मिलने आ रहा है, मैं आज उससे गले मिलूंगा । वह इस खुशी में पागल होगा, मैं उसे सीने से चिपकाकर गले मिलूंगा (**जल्दी से**) और अपनी ज़हरीली कटार उसके सीने में भोंक दूंगा !

जहाँनारा : (**प्रसन्नता से**) बहुत अच्छे अब्बाजान !

जोहरत : सच, अब्बाजान !

शाहजहाँ : हाँ, बेटी !···उसी वक्त तुम अपना तीखा खंजर और तुम अपनी नागन-सी भुजाली उसके पेट में भोंक देना । और तब यह होगा दारा के खून का बदला, अब्बा के आँसुओं का बदला, नादिरा के सुहाग का बदला ! सिपर और सुलेमान, दो नन्हे शाहज़ादों की भूख और तड़पन का बदला !

[दोनों जल्दी से अपने कमरे में जाती हैं और अपना-अपना हथियार छिपाकर लौटती है शाहजहाँ को कटार देती हुई]

दोनों : हम सब तैयार हैं अब्बाजान ! इसके लिए

शाहजहाँ : (**कटार को अस्तीन में छिपाता हुआ**) बे
हो रही है ?···नहीं, रोशनी बुझा दो !···ह
चाहिए···।

जोहरत : (**बुझाती हुई**) अच्छा दादाजान !

शाहजहाँ : ठीक !···शाबाश शाहज़ादियो !···
दुश्मनियों का बदला लिया जायगा,···और
मुमताज़ की यह तस्वीर खुश हो जायेगी ।

[कमरे के बाहर किसी के आने की आहट]

बाहर से आवाज़ : अब्बाजान !···क्या औरंगज़ेब

शाहजहाँ : (**प्रसन्नता से**) ओह !···बेटा···आओ
प्रवेश करके) आदाब अब्बाजान !

शाहजहाँ : खुदा हाफ़िज़···बेटा···आओ···आओ
देखे !!

औरंगज़ेब : मुझे माफ़ कीजिएगा अब्बाजान ! मैं
लिए किया है !

शाहजहाँ : (**बीच ही में**) शाबाश बेटा ! मैं तु
सल्तनत भाई के खून और अब्बा के आँसुओं से
बेटा···आज मैं तुझसे गले मिलूंगा !

औरंगज़ेब : (**प्रसन्नता से**) मेरी खुशक़िस्मती अ
(**हाथ बढ़ाकर**) आइए अब्बाजान, आज बेटे
लिए उसी तरह मचल रहा है; जैसे मैं बचपन
मचला करता था ।

शाहजहाँ : (**काँपती हुई वाणी से**) अच्छा, बेटा आ
काँप कर हटते हुए) नहीं···बेटा···रुको···
(**तस्वीर की ओर मुड़कर**) यह मुमताज़ की

[मुमताज़ की तस्वीर देखने लगता है]

औरंगज़ेब : अब्बाजान !···क्या तकलीफ़ हो गई
क्या कर रहे हैं आप ?

शाहजहाँ : (**काँपकर**) मैं ज़रा मुमताज़ की तस्वीर
तस्वीर ही तो है !

[तस्वीर को पलट देता है ।]

जहाँनारा : अब्बाजान !···अम्मी की तस्वीर आप
जान से गले मिलिए ।

वीर के पास जाकर) मुमताज़ ! ···औरंगज़ेब ने तेरे दारा का
!! (**सहसा रुककर**) ओह, ओ !!···बेटी अब समझा,···
से सुर्ख़ हो गई है, वह औरंगज़ेब को फौरन मौत की सज़ा दे रही
भी देख ले···मैं ठीक कह रहा हूँ न !···इसके लबों से औरंगज़ेब
के हुक्म की आवाज़ आ रही है न !
!···हुज़ूर अब्बाजान !
हुआ) अच्छा खुदा हाफ़िज़ ! मुमताज़ की ही तो रज़ामन्दी की
अच्छा···खुदा हाफ़िज़ ! (**पुकारकर**) दिलदार ! दिलदार !!
) हुक्म···जहाँपनाह !
से) सुनो, दिलदार !···मैं इस वक्त औरंगज़ेब से मिलना चाहता
औरंगज़ेब के पास जाओ···और उससे कहो कि शाहजहाँ की मौत
ह आखिरी वक्त तुम्हें देखना चाहता है !···जाओ, जल्दी उसे

ा, अदब से) बेहतर···जहाँपनाह !
र देखकर, गंभीरता से) बेटी ! जहाँनारा ! जोहरत···!
ो; क़िब्लेआलम ।
ाओ, पास आ जाओ,···सुनो···पास आ जाओ···सुनो, मैं अपनी
कुर्ते की आस्तीन में छिपा रहा हूँ ।
अब्बा !
हीं बेटी !···सुनो···तुम जल्दी से ओढ़नी में मेरा तीखा खंजर
ी जोहरत !
जान !
-सी भुजाली तुम अपनी कमर में छिपाओ ! जल्दी करो ।
कता और भय से) इससे क्या होगा अब्बाजान !
र) इससे बहुत बड़ा काम होगा, बाप अपने दुश्मन बेटे से बदला
ी खुश होगी···। औरंगज़ेब मुझसे मिलने आ रहा है, मैं आज
। वह इस खुशी में पागल होगा, मैं उसे सीने से चिपकाकर गले
) और अपनी ज़हरीली कटार उसके सीने में भोंक दूँगा !
से) बहुत अच्छे अब्बाजान !
ान !
···उसी वक्त तुम अपना तीखा खंजर और तुम अपनी नागन-सी
में भोंक देना । और तब यह होगा दारा के खून का बदला,
का बदला, नादिरा के सुहाग का बदला ! सिपर और सुलेमान,
ों की भूख और तड़पन का बदला !
अपने कमरे में जाती हैं और अपना-अपना हथियार छिपाकर
ी को कटार देती हुई]

दोनों : हम सब तैयार हैं अब्बाजान ! इसके लिए जल्दी की जाय···।

शाहजहाँ : (**कटार को अस्तीन में छिपाता हुआ**) बेटी ! शमादान पर अब तक रोशनी हो रही है ?···नहीं, रोशनी बुझा दो !···हमें रोशनी नहीं चाहिए···हमें अँधेरा चाहिए···।

जोहरत : (**बुझाती हुई**) अच्छा दादाजान !

शाहजहाँ : ठीक !···शाबाश शाहज़ादियो !···डरना नहीं···आज न जाने कितनी दुश्मनियों का बदला लिया जायगा,···और अभी ताजमहल मुस्कराएगा, अभी मुमताज़ की यह तस्वीर खुश हो जायेगी ।

[कमरे के बाहर किसी के आने की आहट]

बाहर से आवाज़ : अब्बाजान !···क्या औरंगज़ेब अन्दर आ सकता है ?

शाहजहाँ : (**प्रसन्नता से**) ओह !···बेटा···आओ मेरे लख्ते जिगर आओ··· (**औरंगज़ेब प्रवेश करके**) आदाब अब्बाजान !

शाहजहाँ : खुदा हाफ़िज़···बेटा···आओ···आओ मेरे फ़तहयाब बेटा ! तुझे खुदा देखे !!

औरंगज़ेब : मुझे माफ़ कीजिएगा अब्बाजान ! मैंने जो कुछ किया है, वह सल्तनत के लिए किया है !

शाहजहाँ : (**बीच ही में**) शाबाश बेटा ! मैं तुझसे बहुत खुश हूँ; सच है बेटा··· सल्तनत भाई के खून और अब्बा के आँसुओं से लाखों गुना कीमती है ।···आओ··· बेटा···आज मैं तुझसे गले मिलूँगा !

औरंगज़ेब : (**प्रसन्नता से**) मेरी खुशक़िस्मती अब्बाजान ! खुदा आपको राहत दे । (**हाथ बढ़ाकर**) आइए अब्बाजान, आज बेटे का दिल अब्बा के दिल से मिलने के लिए उसी तरह मचल रहा है; जैसे मैं बचपन में प्यारी अम्मी की गोद के लिए मचला करता था ।

शाहजहाँ : (**काँपती हुई वाणी से**) अच्छा, बेटा आओ···गले मिलें··· (**समीप आते ही काँप कर हटते हुए**) नहीं···बेटा···रुको···अभी गले मिल रहा हूँ, रुक जाओ··· (**तस्वीर की ओर मुड़कर**) यह मुमताज़ की तस्वीर···।

[मुमताज़ की तस्वीर देखने लगता है]

औरंगज़ेब : अब्बाजान !···क्या तकलीफ़ हो गई आपको···? आइए मुझसे मिलिए··· क्या कर रहे हैं आप ?

शाहजहाँ : (**काँपकर**) मैं जरा मुमताज़ की तस्वीर देखने लगा था—(**स्वयं से**) तस्वीर तस्वीर ही तो है !

[तस्वीर को पलट देता है ।]

जहाँनारा : अब्बाजान !···अम्मी की तस्वीर आपने क्यों उलट दी !···जल्दी भाई-जान से गले मिलिए ।

शाहजहाँ : (**औरंगज़ेब की ओर बढ़कर**) अब मिलता हूँ बेटी ! ···(**औरंगज़ेब को ओर हाथ बढ़ाकर**)आओ बेटा,···अब गले मिल लूं आओ(**जैसे ही मिलने लगता है··· फौरन चौंककर हटता हुआ**)···नहीं···नहीं···बेटा !···रुक जाओ···एक लम्हा रुक जाओ···अभी···अभी !

[दौड़कर खिड़की से ताजमहल को देखने लगता है।]

जहाँनारा : (**घबड़ाकर**) अब्बाजान ! आप क्या कह रहे हैं ? इसी वक्त ताजमहल भी देखने की ज़रूरत पड़ गई ? जल्दी भाईजान से गले मिलिए !

शाहजहाँ : (**घूमकर···पागलों की भाँति चीख उठता है**) औरंगज़ेब की अम्मी रो रही है !···जोहरा ! मेरा ताजमहल रो रहा है !···बेटी !···बेटी !

[शाहजहाँ लड़खड़ाकर गिरने लगता है···औरंगज़ेब बढ़कर उसे बचाता है; सहसा उसकी आस्तीन से कटार नीचे गिरती है।]

❑

पर्वत के पी

पात्र

राजीव
अंजलि
मदन
नीरा
सामू
डॉक्टर

बढ़कर) अब मिलता हूँ बेटी ! ··· (**औरंगज़ेब की ओर**
,···अब गले मिल लूँ आओ (**जैसे ही मिलने लगता है···**
त) ···नहीं···नहीं···वेटा ! ···रुक जाओ···एक लम्हा
ी !

महल को देखने लगता है।]

जान ! आप क्या कह रहे हैं ? इसी वक्त ताजमहल
गई ? जल्दी भाईजान से गले मिलिए !
की भाँति चीख उठता है) औरंगज़ेब की अम्मी रो रही
ाजमहल रो रहा है ! ···बेटी ! ···बेटी !

रने लगता है···औरंगज़ेब बढ़कर उसे बचाता है; सहसा
र नीचे गिरती है।]

□

पर्वत के पीछे

पात्र

राजीव
अंजलि
मदन
नीरा
सामू
डॉक्टर

[एक ऊँचे पहाड़ पर जून के वे दिन, जब इसकी अनुपम गोद सौन्दर्य और शांति के तमाम अंगों से भर गया है। कहीं ऊँची चोटियों से पिघलता हुआ बर्फ धीरे-धीरे धरती पर उतर रहा है, कहीं सौरभ से घुले हुए हरे-भरे, घने जंगल हिल रहे हैं और कहीं फूलों से ढकी हुई वादी है, कहीं नील झील, कहीं संगीत करता हुआ झरना। ऐसे पहाड़ पर बने हुए तमाम अमीरों के बंगले, हवाखोरों की हवेलियाँ और ऊँचे व्यापारियों के तमाम होटल और बार-रेस्ट्राँ, मैदान से आए हुए व्यक्तियों से भर गए हैं। सड़कें साफ और महकती हुई सी लग रही है। एक तरह से पूरा पहाड़ तो अपने में जवान ही लग रहा है लेकिन आजकल इसके प्रत्येक क्षण भी जवान हैं। सड़क और कोठियों में जिस तरह संगीत और आनन्द भरे क़हक़हे उठ रहे हैं, उससे बिल्कुल अलग, पहाड़ का आकाश नीला और गम्भीर है।

हाँ, तो ऐसे सुखी पहाड़ पर एक सबसे अलग, छोटे से बंगले में राजीव अपनी मात्र प्यारी बेटी अंजलि के साथ रुका हुआ है। राजीव का यह बँगला अन्य बँगलों की अपेक्षा पूर्ण शाँत तथा कुछ और ऊँचाई पर है। राजीव की अवस्था 40 वर्ष की है लेकिन उसके व्यक्तित्व से लगता है कि वह अधिक-से-अधिक प्रायः 30 वर्ष का युवक है। गौर वर्ण, खूब भरा हुआ स्वस्थ शरीर, सुन्दर रतनारी आँखें। धन-धान्य की भी दृष्टि से यह बहुत बड़ा व्यक्ति है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से इसका जीवन एकाकी ही नहीं बल्कि इसके जीवन-दर्शन में अपूर्व क्रांति हुई है। अब राजीव अपनी अंजो के सहारे जी रहा है। अंजो इसकी प्राण-शक्ति है और चित्रकला इसके परिवर्तित जीवन-दर्शन का रूप। अंजो की अवस्था लगभग 17 वर्ष की होगी लेकिन इसमें उगते हुए सितारे की पहली किरन जैसी मासूमियत और पवित्र भोलापन है। इसके व्यक्तित्व पर दो आत्माओं का प्रकाश है—पहला राजीव के व्यक्तित्व का वह प्रकाश जब वह प्रायः 22 वर्ष का था, दूसरी ओर इसकी स्वर्गीय माँ शकुन के अद्वितीय रूप और यौवन का प्रकाश जब वह 18 वर्ष की थी अर्थात् अंजो, तरुण राजीव और उसकी दुल्हन माँ की पवित्र स्मृति है।

प्रातःकाल 8 बजे का समय है। पर्दा राजीव के जिस कमरे में उठेगा, वहीं उसकी चित्रकला का स्टूडियो भी है और उसका ड्राइंग-रूम भी। कमरा अपने क्षेत्रफल में औसत दर्जे का है। दायीं ओर खुली हुई चौड़ी खिड़की है, जिस पर रेशमी पर्दा एक किनारे चुन दिया गया है। इससे ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, घने हरे-भरे जंगल, खूबसूरत नदियाँ और दूर के पर्वत-शिखर स्पष्ट दिख रहे हैं। पीछे की ओर भीतर जाने का दरवाज़ा है जिस पर मोटा पर्दा पड़ा है। बाईं ओर का

दरवाज़ा बिल्कुल खुला हुआ है। कमरे का पूरा
है। इसके बीचो-बीच एक सफेद चद्दर बिछी है जि
दो क़ीमती काउच लगे हैं। और बीच में, चादर
आसन है। पीछे एक सफ़ेद मसनद और सामने एक
पर राजीव अपने चित्र बनाता है। सामने से पिछले
पर स्वर्गीय शकुन और अंजो के तैलचित्र दीवार के

पर्दा उठने पर अंजो के चित्र पर एक सफेद फ़
देता है। स्टेज क्षण-भर के लिए बिल्कुल सूना है।
साथ आरती-वाद्य-यन्त्र बज उठते हैं। और भावुक
आवाज़ उठती है—

> या कुन्देन्दु तुषार हार धवला, या
> या वीणावर्दण्डमंडित करा या श्वेत
> या ब्रह्माच्युत शंकर प्रभातिर्भ, देवै
> साममपातु सरस्वती भगवती निशेष

आवाज़ धीरे-धीरे डूब जाती है और क्षणिक
ओर से प्रवेश करता है। उसके दोनों हाथों में दो
हार को वह ज्यों ही अंजो के चित्र पर चढ़ाने के लि
के चित्र पर डाले हुए पुष्पहार पर पड़ती है और व
मुस्कराता हुआ अपने पुष्पहार से उसकी तुलना
पुकारता है।]

राजीव : अरे !···सामू !!

सामू : (**बायें दरवाज़े से**) क्या है बाबू जी···?

राजीव : (**प्यार से हँसता हुआ**) सामू !···ज़रा इधर,
मेरी दुलारी अंजो ने स्वयं अपने चित्र पर पुष्पहार

[हँसने लगता है।]

सामू : जी···

राजीव : लगता है कि आज मुझे मेरी पूजा में देरी हो ग
चित्र पर पुष्पहार चढ़ा लिया है। (**हँसता हुआ**)··
है !···

सामू : (**समर्थन के स्वर में**)···जी···जी बाबू जी !

राजीव : (**बीच ही में आश्चर्य से**) लेकिन सामू !···बे
तो कोई हार नहीं चढ़ाया है···!

सामू : जी बिट्टी भूल गई होगी···।

राजीव : (**प्रसन्नता से**) ठीक···बिल्कुल ठीक सामू। वो

पर जून के वे दिन, जब इसकी अनुपम गोद सौन्दर्य और शांति
भर गया है। कहीं ऊँची चोटियों से पिघलता हुआ बर्फ धीरे-
तर रहा है, कहीं सौरभ से घुले हुए हरे-भरे, घने जंगल हिल रहे
ों से ढकी हुई वादी है, कहीं नील झील, कहीं संगीत करता हुआ
ड़ पर बने हुए तमाम अमीरों के बंगले, हवाखोरों की हवेलियाँ
रियों के तमाम होटल और बार-रेस्ट्राँ, मैदान से आए हुए
गए हैं। सड़कें साफ और महकती हुई सी लग रही है। एक तरह
अपने में जवान ही लग रहा है लेकिन आजकल इसके प्रत्येक क्षण
क और कोठियों में जिस तरह संगीत और आनन्द भरे क़हक़हे
बिल्कुल अलग, पहाड़ का आकाश नीला और गम्भीर है।
सुखी पहाड़ पर एक सबसे अलग, छोटे से बंगले में राजीव
बेटी अंजलि के साथ रुका हुआ है। राजीव का यह बँगला अन्य
पूर्ण शांत तथा कुछ और ऊँचाई पर है। राजीव की अवस्था
किन उसके व्यक्तित्व से लगता है कि वह अधिक-से-अधिक प्राय:
है। गौर वर्ण, खूब भरा हुआ स्वस्थ शरीर, सुन्दर रतनारी
की भी दृष्टि से यह बहुत बड़ा व्यक्ति है। लेकिन पिछले कुछ
न एकाकी ही नहीं बल्कि इसके जीवन-दर्शन में अपूर्व क्रांति हुई
पनी अंजो के सहारे जी रहा है। अंजो इसकी प्राण-शक्ति है
मके परिवर्तित जीवन-दर्शन का रूप। अंजो की अवस्था लगभग
लेकिन इसमें उगते हुए सितारे की पहली किरन जैसी मासूमियत
न है। इसके व्यक्तित्व पर दो आत्माओं का प्रकाश है—पहला
व का वह प्रकाश जब वह प्राय: 22 वर्ष का था, दूसरी ओर
शकुन के अद्वितीय रूप और यौवन का प्रकाश जब वह 18 वर्ष
, तरुण राजीव और उसकी दुल्हन माँ की पवित्र स्मृति है।
बजे का समय है। पर्दा राजीव के जिस कमरे में उठेगा, वहीं
का स्टूडियो भी है और उसका ड्राइंग-रूम भी। कमरा अपने
दर्जे का है। दायीं ओर खुली हुई चौड़ी खिड़की है, जिस पर
नारे चुन दिया गया है। इससे ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, घने हरे-
त नदियाँ और दूर के पर्वत-शिखर स्पष्ट दिख रहे हैं। पीछे की
का दरवाज़ा है जिस पर मोटा पर्दा पड़ा है। बाईं ओर का

दरवाज़ा बिल्कुल खुला हुआ है। कमरे का पूरा फर्श खूबसूरत कालीन से ढका है। इसके बीचो-बीच एक सफेद चद्दर बिछी है जिसके दायें-बायें दोनों सिरों पर दो क़ीमती काउच लगे हैं। और बीच में, चादर के पिछले सिरे पर राजीव का आसन है। पीछे एक सफ़ेद मसनद और सामने एक छोटी, नीची-सी बंद टेबुल, जिस पर राजीव अपने चित्र बनाता है। सामने से पिछले दरवाज़े के दायें-बायें आसनों पर स्वर्गीय शकुन और अंजो के तैलचित्र दीवार के सहारे रखे हुए हैं।

पर्दा उठने पर अंजो के चित्र पर एक सफेद फूलों का हार डाला हुआ दिखाई देता है। स्टेज क्षण-भर के लिए बिल्कुल सूना है। सहसा पृष्ठभूमि में शंखध्वनि के साथ आरती-वाद्य-यन्त्र बज उठते हैं। और भावुक स्वर में किसी के स्तुतिगान की आवाज़ उठती है—

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला, या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमंडित करा या श्वेत पद्मासन:॥
या ब्रह्माच्युत शंकर प्रभातिर्भ, देवै: सदावन्दिता।
साममपातु सरस्वती भगवती निशेष जाड्यापहा॥

आवाज़ धीरे-धीरे डूब जाती है और क्षणिक अन्तराल के बाद राजीव बायीं ओर से प्रवेश करता है। उसके दोनों हाथों में दो सफेद पुष्पों के हार हैं। दायें हार को वह ज्यों ही अंजो के चित्र पर चढ़ाने के लिए बढ़ता है, उसकी दृष्टि अंजो के चित्र पर डाले हुए पुष्पहार पर पड़ती है और वह सहसा रुक जाता है। और मुस्कराता हुआ अपने पुष्पहार से उसकी तुलना करने लगता है। फिर सामू को पुकारता है।]

राजीव : अरे !···सामू !!

सामू : (**बायें दरवाज़े से**) क्या है बाबू जी···?

राजीव : (**प्यार से हँसता हुआ**) सामू !···ज़रा इधर, इधर तो आके देख···आज तो मेरी दुलारी अंजो ने स्वयं अपने चित्र पर पुष्पहार चढ़ा लिया है।

[हँसने लगता है।]

सामू : जी···

राजीव : लगता है कि आज मुझे मेरी पूजा में देरी हो गयी और बिट्टी ने स्वयं अपने चित्र पर पुष्पहार चढ़ा लिया है। (**हँसता हुआ**)···वह फूलों की राजकुमारी जो है!···

सामू : (**समर्थन के स्वर में**)···जी···जी बाबू जी !

राजीव : (**बीच ही में आश्चर्य से**) लेकिन सामू !···बेटी ने अपनी माँ की तस्वीर पर तो कोई हार नहीं चढ़ाया है···!

सामू : जी बिट्टी भूल गई होगी···।

राजीव : (**प्रसन्नता से**) ठीक···बिल्कुल ठीक सामू। वो जरूर भूल गई होगी। कितनी

भोली है (**हँसने लगता है, और चित्रों की ओर बढ़ता हुआ**) अच्छा···अब मैं अपना पुष्पहार चढ़ा देता हूँ (**अंजो के चित्र पर हार डालता हुआ**) बेटी के गले में आज दो-दो हार··· (शकुन के चित्र पर) माँ के गले में एक हार···(**खड़े-खड़े देखता हुआ**)···मेरी अंजो···मेरी शकुन···!

सामू : (**जाता हुआ**) बाबू जी···मैं जा रहा हूँ···!

राजीव : (**जगकर**)···अरे सामू !···अंजो कहाँ है ?

सामू : (**हिचकिचाता हुआ**)···वे···वे बेटी···।

राजीव : हाँ···हाँ···मेरी अंजलि !

सामू : पेगोरा टहलने गई है···।

राजीव : (**आश्चर्य से**)···पेगोरा फाल पर टहलने !···और अकेले···!! तूने मुझे क्यों नहीं···बताया···या तुम स्वयं उसके साथ···।

सामू : (**शांत स्वर में**)···परेशान न होइए बाबूजी, बेटी अकेले नहीं गई है।

राजीव : फिर···!

सामू : मदन बाबू के साथ।

राजीव : (**शान्त होकर**)···ओह ! तब ऐसा क्यों नहीं कहते···(**रुककर**) मेरा तो जी धक् हो गया।

सामू : नहीं···ऐसी कोई चिन्ता की बात नहीं···!

राजीव : हाँ···हाँ···कोई बात नहीं। मेरी अंजो पेगोरा फाल पर सूरज की पहली किरन देखने गई होगी···भोली कहीं की !···एक दिन भी उसे नहीं छोड़ सकती ···और सामू ! आज मेरी नींद भी काफी देर में टूटी···!

सामू : जी·····।

राजीव : तो तुम्हें खूब मालूम है न,···अंजो अकेले तो कहीं नहीं गई है !

सामू : नहीं बाबू जी ! कैसी बात कर रहे हैं !···मदन बाबू आज बहुत सवेरे आए थे···और रानी बिटिया आज शायद उनकी प्रतीक्षा में भी थी···बड़े तड़के सब पेगोरा गए हैं।

राजीव : सब साथ !···और भी कोई था क्या ?

सामू : जी, मदन बाबू का टाइगर भी साथ था···!

[राजीव दायीं खिड़की से बाहर शून्य में देखता है।]

सामू : बाबू जी, आप सोचने क्या लगे···?

राजीव : कुछ नहीं सामू; तुम अभी दौड़ कर पेगोरा चले आओ···और अंजो को लौटा लाओ···वह जरूर जल्दी मेरे सुबह न उठने के कारण मुझसे रूठी होगी···!

सामू : नहीं तो बाबू जी···बिल्कुल ऐसी बात नहीं···वे लोग तो जाते-जाते इतना हँस रहे थे कि इन चीड़ के पेड़ों के परे तक उनके कहकहे गूँज रहे थे···।

राजीव : (**परेशान होकर**)···ओ हो सामू !···तू मेरी अंजो को कभी नहीं समझ सकता···मैं अंजो के जीवन के पहले दिन से आज सत्तरह वर्षों से उसे अपनी पलकों की छाँव में रखकर पाल रहा हूँ। सिर्फ रूठती है···मासूम छुई-मुई की तरह···(**रुककर**) होगी, नहीं तो वह मदन के साथ पेगोरा कभी नहीं

सामू : जी···।

राजीव : (**हँसकर**)···अब समझे···जा जल्दी जा···।

[सामू तेज़ी से चला जाता है, राजीव फिर घूमकर लगता है और तस्वीर के सामने बैठकर अंजो के को निकालकर देखता है और फिर उसके गले में आसन पर बैठ जाता है। सामने छोटी मेज को और एक कपड़े की बहुत खूबसूरत डिब्बी को खो में यह आवाज़ उठने लगती है, मानो अंजो आग्रह है—'चलिए···। कमरे तक चलिए न।'···'चलिए छिपते हैं। चलिए···।' फिर सम्मिलित हँसी आ आवाज़—'नहीं···मिस अंजलि, थैंक्यू वेरी मच, अ हँसी उठती है और वातावरण में खो जाती है। इ चीजें रख देता है तथा बढ़कर अंजो को पुकारता हुआ करता है।]

अंजो : (**द्वार ही से प्रसन्नता के साथ**)···पापा !

राजीव : अंजो !···

अंजो : (**प्रवेश कर राजीव के अंक में समाकर**)···पापा,

राजीव : (**अंजो के सर पर हाथ फेरकर**)···सच, मैं तो गई है···लेकिन मेरी बेटी बहुत अच्छी है···बहुत अ

अंजो : (**बाएँ सोफे पर बैठती हुई दुलार से**) पापा···आ दुनिया में सबसे खूबसूरत चीज़ है···।

राजीव : (**खड़े-खड़े**) और मुझे लगा कि दुनिया में तुमसे है···समझी···।

अंजो : (**दुलार से ठुनककर**)···क्या समझी···कुछ भी न भोली···नहीं, दुधमुँही, बच्ची···बच्ची ही तो समझ

राजीव : (**प्यार से पास आकर**) अरे मेरी लाड़ली !··· है···।

अंजो : नन्ही-सी ?

राजीव : (**दुलार से उसके सर को पकड़कर उसकी आँ नन्ही-सी···बहुत बच्ची···देख मेरी आँखों में अपने क में तेरी नन्ही-सी तस्वीर है न···।

अंजो : जी पापा ! (**हँस देती है।**)

लगता है, और चित्रों की ओर बढ़ता हुआ) अच्छा···अब मैं
बढ़ा देता हूँ (अंजो के चित्र पर हार डालता हुआ) बेटी के गले में
ए···(शकुन के चित्र पर) माँ के गले में एक हार···(खड़े-खड़े
मेरी अंजो···मेरी शकुन···!
बाबू जी···मैं जा रहा हूँ···!
···अरे सामू !···अंजो कहाँ है ?
हुआ)···वे···वे बेटी···।
मेरी अंजलि !
गई है···।
से)···पेगोरा फाल पर टहलने !···और अकेले···!! तूने मुझे
याया···या तुम स्वयं उनके साथ···।
हीं)···परेशान न होइए बाबूजी, बेटी अकेले नहीं गई है।

के साथ।
कर)···ओह ! तब ऐसा क्यों नहीं कहते···(रुककर) मेरा तो
ा।
कोई चिन्ता की बात नहीं···!
'कोई बात नहीं। मेरी अंजो पेगोरा फाल पर सूरज की पहली
ई होगी···भोली कहीं की !···एक दिन भी उसे नहीं छोड़ सकती
! आज मेरी नींद भी काफी देर में टूटी···!

खूब मालूम है न,···अंजो अकेले तो कहीं नहीं गई है !
ी ! कैसी बात कर रहे हैं !···मदन बाबू आज बहुत सबेरे आए
ो बिटिया आज शायद उनकी प्रतीक्षा में भी थी···बड़े तड़के सब

!···और भी कोई था क्या ?
ाबू का टाइगर भी साथ था···!
खिड़की से बाहर शून्य में देखता है।]
ाप सोचने क्या लगे···?
सामू; तुम अभी दौड़ कर पेगोरा चले आओ···और अंजो को लौटा
जरूर जल्दी मेरे सुबह न उठने के कारण मुझसे रूठी होगी···!
बू जी···बिल्कुल ऐसी बात नहीं···वे लोग तो जाते-जाते इतना हंस
चीड़ के पेड़ों के परे तक उनके कहकहे गूंज रहे थे···।
होकर)···ओ हो सामू !···तू मेरी अंजो को कभी नहीं समझ
अंजो के जीवन के पहले दिन से आज सत्तरह वर्षों से उसे अपनी

पलकों की छाँव में रखकर पाल रहा हूँ। सिर्फ मैं उसे जानता हूँ···वह बहुत रूठती है···मासूम छुई-मुई की तरह···(रुककर) देख लेना वह मुझसे जरूर रूठी होगी, नहीं तो वह मदन के साथ पेगोरा कभी नहीं जाती···।

सामू : जी···।

राजीव : (हँसकर)···अब समझे···जा जल्दी जा···।

[सामू तेजी से चला जाता है, राजीव फिर घूमकर अंजो की तस्वीर की ओर देखने लगता है और तस्वीर के सामने बैठकर अंजो के गले में डाले हुए पहले पुष्पहार को निकालकर देखता है और फिर उसके गले में डाल देता है और उठकर अपने आसन पर बैठ जाता है। सामने छोटी मेज को खोलकर एक पत्थर का टुकड़ा और एक कपड़े की बहुत खूबसूरत डिब्बी को खोलने लगता है, सहसा पृष्ठभूमि में यह आवाज उठने लगती है, मानो अंजो आग्रह के शब्दों में मदन से कह रही है—'चलिए···। कमरे तक चलिए न।'···'चलिए···आप पापा से क्यों इस तरह छिपते हैं। चलिए···।' फिर सम्मिलित हँसी आती है। फिर जैसे मदन की आवाज—'नहीं···मिस अंजलि, थैंक्यू वेरी मच, अच्छा बाई-बाई···।' और फिर हँसी उठती है और वातावरण में खो जाती है। इधर राजीव फिर टेबुल में दोनों चीजें रख देता है तथा बढ़कर अंजो को पुकारता हुआ गद्‌गद कण्ठ से उसका स्वागत करता है।]

अंजो : (द्वार ही से प्रसन्नता के साथ)···पापा !

राजीव : अंजो !···

अंजो : (प्रवेश कर राजीव के अंक में समाकर)···पापा, मैं पेगोरा से आ रही हूँ !

राजीव : (अंजो के सर पर हाथ फेरकर)···सच, मैं तो डर गया था कि तू मुझसे रूठ गई है···लेकिन मेरी बेटी बहुत अच्छी है···बहुत अच्छी···।

अंजो : (दाएँ सोफे पर बैठती हुई दुलार से) पापा···आज मुझे लगा कि पेगोरा फाल दुनिया में सबसे खूबसूरत चीज है···।

राजीव : (खड़े-खड़े) और मुझे लगा कि दुनिया में तुमसे बढ़कर कोई और भोली नहीं है···समझी···।

अंजो : (दुलार से ठुनककर)···क्या समझी···कुछ भी नहीं···आप हरदम तो मुझे भोली···नहीं, दुधमुँही, बच्ची···बच्ची ही तो समझते हैं और क्या ?

राजीव : (प्यार से पास आकर) अरे मेरी लाड़ली !···तू मेरी नन्ही-सी बेटी तो है···।

अंजो : नन्ही-सी ?

राजीव : (दुलार से उसके सर को पकड़कर उसकी आँखों में देखता हुआ) हाँ, हाँ नन्ही-सी···बहुत बच्ची···देख मेरी आँखों में अपने को देख। आँखों के काले तिल में तेरी नन्ही-सी तस्वीर है न···।

अंजो : जी पापा ! (हँस देती है।)

राजीव : बस···देख···फिर तू कितनी नन्ही है।

[अंजो अपना सर छुड़ाकर जोर से हंस उठती है।]

अंजो : पापा···! आज पेगोरा फाल पर बहुत मजा आया। क्या कहने !

राजीव : सच।

अंजो : मदन बाबू ने एक ऐसे स्थान पर ले जाकर···बिल्कुल फाल के धरातल से नीचे एक शिलाखंड पर बैठाकर, हम लोगों ने उसके टूटते हुए पानी को देखा है।

राजीव : ऐसा न किया कर बेटी ! इसमें बहुत खतरा है।

अंजो : (कुछ ठुनककर) बस आपको तो चारों ओर खतरा-ही-खतरा है। (रुककर) पापा ! सच, फाल की टूटती हुई धार पर सूरज की पहली किरण आज बिजली की तरह थिरककर रह गई। नीचे से उसे देखते हुए ऐसा लगता था कि जैसे पेगोरा पिघला हुआ सच्चा तपाया हुआ सोना उगल रहा है। और मैं आनन्द में भूली हुई उन किरनों के साथ···।

राजीव : (बीच ही में) और रोज जब तू मेरे साथ वहाँ सूरज की पहली किरन देखने जाती थी···तब ? क्या मुझे ऐसा नहीं लगता था ?

अंजो : (दुलार से) कहाँ लगता था पापा ! आप तो वहाँ पहुँचने पर फाल से ऊँचे दूर, बस एक जगह खड़े हो जाते थे और ब्रह्म, प्रकृति और माया की न जाने क्या बातें करते रहते थे ?

राजीव : लेकिन तू तो एकाग्र दृष्टि से फाल की धार ही देखती रहती थी ?

अंजो : कहाँ आज की तरह नीचे उतर कर देख पाती थी और फिर तो आप उसमें अपनी चित्रकला की भी तो बातें जोड़ने लगते थे।

राजीव : (सहसा उसे जैसे कुछ स्मरण हो आता है) अच्छा···खैर तूने आज बहुत अच्छा किया !···बस न···अब खूब प्रसन्न हो जा। मैं बेटी आज···अपना नया चित्र आरंभ कर रहा हूँ; समझी ?

अंजो : (दुलार से) मैं नहीं समझी।

राजीव : (पास जाकर उसे गुदगुदाता हुआ) क्या नहीं समझी···बोल तू क्या नहीं समझती ?

अंजो : (हँसती हुई अपने को छुड़ाकर) पापा ! मैं अब रोज मदन के साथ टहलने जाया करूँगी।

[राजीव गंभीर मुस्कराहट में खड़ा देखता रह जाता है।]

अंजो : मदन बाबू कह रहे थे कि···तुम्हारा जीवन कितना घिरा हुआ है ! जैसे एक खूबसूरत चीज किसी संदूक में बन्द करके रख दी गई हो।

राजीव : तो···तूने क्या कहा ?

अंजो : मैंने तो बस साफ बात कह दी कि मेरे पापा को यही सीमित दृष्टिकोण ही पसंद है···बस जीवन से दूर, अलग···पवित्र, जीवन, उसकी गहराई और मानसिक विकास।

राजीव : और अपने पसंद की बात भी तो !

अंजो : हाँ, मुझे वास्तविक जीवन की बातें बहुत पसन्द

राजीव : (दुःख से) तब !

अंजो : मैं रोज मदन बाबू के साथ टहलने जाया करूँगी

राजीव : हर सुबह !

अंजो : जी और शाम को भी···मदन बाबू कहते थे तपस्विनी बन गई हो···तुम्हें शायद पता नहीं कि और आकर्षक है···? यहाँ पहाड़ पर बाल डांस होते से भी बढ़कर···। यहाँ के थियेटर···यहाँ की दुक अच्छी-अच्छी बातें बता रहे थे पापा !

[राजीव पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहकर इस त सुन रहा है और वह दूर देखता हुआ मानो अपनी लिए समझा रहा है।]

अंजो : पापा ! आप चुप क्यों हैं ?

राजीव : (मानो जगकर गंभीर वाणी से) बेटी ! मैं अप चित्र की पृष्ठभूमि, परिपार्श्व और चित्र में विभिन्न

अंजो : (रूठती हुई) आप तो हमेशा अपना चित्र ही सो कहाँ सुनने लगे ?

राजीव : नहीं ऐसी बात नहीं, रूठो नहीं, मैं पिछले कई दि प्रेरणा ग्रहण कर रहा था···और आज वाणी की व चित्र आरम्भ करने की प्रेरणा मिली है।

अंजो : तो आप पूजा समाप्त करके यहाँ बैठे हैं···?

राजीव : हाँ, इसीलिए तो मैंने तुझे यहाँ जल्दी से बुलवा लि

अंजो : (एकाएक आश्चर्य से) अरे पापा ! आपने इसे न पर दो-दो पुष्पहार चढ़े हैं···।

राजीव : (मुस्कराता हुआ) हाँ, हाँ, क्यों नहीं, जो तू अब गई है !···अब मैं स्वयं कल से तुम्हारे चित्र पर दो-दो ठीक···!

अंजो : (आश्चर्य से) कल से ?···और यह आज किसने दो

राजीव : (दुलार से) एक मेरी लाड़ली बेटी ने···जिस अंजलि···और एक मैंने···।

[अंजो हँस पड़ती है लेकिन फिर आश्चर्यमिश्रित गंभी

अंजो : सच, पापा, मैंने अपने चित्र पर कोई पुष्प नहीं चढ़ा ने चढ़ाया होगा और मुझे मुफ्त में बना रहे हैं।

फिर तू कितनी नन्ही है।

छुड़ाकर जोर से हँस उठती है।]

पेगोरा फाल पर बहुत मज़ा आया। क्या कहने !

क ऐसे स्थान पर ले जाकर···बिल्कुल फाल के धरातल से नीचे बैठाकर, हम लोगों ने उसके टूटते हुए पानी को देखा है।

कर बेटी ! इसमें बहुत खतरा है।

) बस आपको तो चारों ओर खतरा-ही-खतरा है। (रुककर) न की टूटती हुई धार पर सूरज की पहली किरण आज बिजली र रह गई। नीचे से उसे देखते हुए ऐसा लगता था कि जैसे आ सच्चा तपाया हुआ सोना उगल रहा है। और मैं आनन्द में नों के साथ···।

) और रोज जब तू मेरे साथ वहाँ सूरज की पहली किरन देखने ? क्या मुझे ऐसा नहीं लगता था ?

हाँ लगता था पापा ! आप तो वहाँ पहुँचने पर फाल से ऊँचे दूर, ड़े हो जाते थे और ब्रह्म, प्रकृति और माया की न जाने क्या बातें

एकाग्र दृष्टि से फाल की धार ही देखती रहती थी ?

तरह नीचे उतर कर देख पाती थी और फिर तो आप उसमें की भी तो बातें जोड़ने लगते थे।

(जैसे कुछ स्मरण हो आता है) अच्छा···खैर तूने आज बहुत बस न···अब खूब प्रसन्न हो जा। मैं बेटी आज···अपना नया रहा हूँ; समझी ?

नहीं समझी।

र उसे गुदगुदाता हुआ) क्या नहीं समझी···बोल तू क्या नहीं

पने को छुड़ाकर) पापा ! मैं अब रोज मदन के साथ टहलने

मुस्कराहट में खड़ा देखता रह जाता है।]

ह रहे थे कि···तुम्हारा जीवन कितना घिरा हुआ है ! जैसे एक किसी संदूक में बन्द करके रख दी गई हो।

या कहा ?

साफ बात कह दी कि मेरे पापा को यही सीमित दृष्टिकोण ही जीवन से दूर, अलग···पवित्र, जीवन, उसकी गहराई और मानसिक

राजीव : और अपने पसंद की बात भी तो !

अंजो : हाँ, मुझे वास्तविक जीवन की बातें बहुत पसन्द हैं···मैंने तो हमेशा कहा है।

राजीव : (दुःख से) तब !

अंजो : मैं रोज मदन बाबू के साथ टहलने जाया करूँगी !

राजीव : हर सुबह !

अंजो : जी और शाम को भी···मदन बाबू कहते थे कि अंजो ! तुम तो मुफ़्त में तपस्विनी बन गई हो···तुम्हें शायद पता नहीं कि आज का जीवन कितना रंगीन और आकर्षक है···? यहाँ पहाड़ पर बाल डांस होते हैं, कथाकली और गर्वा नृत्य से भी बढ़कर···। यहाँ के थियेटर···यहाँ की दुकानें और सड़कें···। वे बहुत अच्छी-अच्छी बातें बता रहे थे पापा !

[राजीव पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहकर इस तरह चुप है जैसे वह कुछ नहीं सुन रहा है और वह दूर देखता हुआ मानो अपनी अंजो को कहीं से लौट आने के लिए समझा रहा है।]

अंजो : पापा ! आप चुप क्यों हैं ?

राजीव : (मानो जगकर गंभीर वाणी से) बेटी ! मैं अपने नये चित्र को सोचने लगा, चित्र की पृष्ठभूमि, परिपार्श्व और चित्र में विभिन्न रंगों का अनुपात···।

अंजो : (रूठती हुई) आप तो हमेशा अपना चित्र ही सोचते रहते हैं···आप मेरी बातें कहाँ सुनने लगे ?

राजीव : नहीं ऐसी बात नहीं, रूठो नहीं, मैं पिछले कई दिनों से चित्र आरम्भ करने की प्रेरणा ग्रहण कर रहा था···और आज वाणी की वन्दना करते समय मुझे अपने चित्र आरम्भ करने की प्रेरणा मिली है।

अंजो : तो आप पूजा समाप्त करके यहाँ बैठे हैं···?

राजीव : हाँ, इसीलिए तो मैंने तुझे यहाँ जल्दी से बुलवा लिया है।

अंजो : (एकाएक आश्चर्य से) अरे पापा ! आपने इसे नहीं देखा, आज तो मेरे चित्र पर दो-दो पुष्पहार चढ़े हैं···।

राजीव : (मुस्कराता हुआ) हाँ, हाँ, क्यों नहीं, जो तू अब अन्नी बेटी से अंजो बेटी हो गई है !···अब मैं स्वयं कल से तुम्हारे चित्र पर दो-दो पुष्पहार चढ़ाया करूँगा··· ठीक···!

अंजो : (आश्चर्य से) कल से ?···और यह आज किसने दो-दो पुष्पहार चढ़ाये हैं ?

राजीव : (दुलार से) एक मेरी लाड़ली बेटी ने···जिसका नाम है···अन्नी, अंजो, अंजलि···और एक मैंने···।

[अंजो हँस पड़ती है लेकिन फिर आश्चर्यमिश्रित गंभीरता से सँभल जाती है।]

अंजो : सच, पापा, मैंने अपने चित्र पर कोई पुष्प नहीं चढ़ाया है···(दुलार से) आप ही ने चढ़ाया होगा और मुझे मुफ़्त में बना रहे हैं।

राजीव : (**गंभीरतापूर्ण आश्चर्य से**) सच, तूने नहीं चढ़ाया है ?···अरे ! (**रुककर**) खैर, (**मुस्कराकर**) साक्षात कलामूर्ति सरस्वती ने मेरी बेटी को यह प्रसाद दिया होगा, भाग्यशाली जो है तू···अच्छा, अब तू शान्ति से काउच पर बैठ जा···मैं चित्र आरम्भ करने जा रहा हूँ !

अंजो : (**जिज्ञासा से**) पापा, क्या आप बिना मेरी उपस्थिति के कोई चित्र नहीं आरम्भ कर सकते ?

राजीव : (**स्नेह से हँसकर**) नहीं···नहीं···कोई चित्र नहीं···पिछले कितने वर्षों से तू इस सत्य को देखती आ रही है और हर वर्ष यह खामोश पर्वत भी देखता है।

अंजो : ऐसा क्यों है ?

राजीव : इसका उत्तर शकुन है···तेरी स्वर्गीय माँ···जिसकी स्मृति में मेरी यह कला है और जिसकी आत्मा का रूप तू है; इसलिए यह कला बार-बार जन्म लेने के समय अपनी आत्मा ढूँढ़ती है···!

अंजो : (**तंग आकर**) पापा···आप फिर आत्मा की बातों में पहुँच गए···मदन बाबू की एक प्यारी बात···!

राजीव : (**बीच ही में काटता हुआ**) समय नष्ट न कर बेटी···मैं चित्र आरम्भ करने जा रहा हूँ।

अंजो : लेकिन पापा, एक बात···एक बात मान लीजिएगा न !

राजीव : आज तू कैसी अनजानों की तरह बातें कर रही है बेटी ! तेरी खुशी ही में तो मेरा प्राण बँधा है।

अंजो : मैं मदन बाबू के साथ टहलने जाया करूँगी न !···पेगोरा पर तो आज आनन्द आ गया पापा !···मदन बहुत अच्छे हैं···कितनी जिन्दगी है उनमें···।

राजीव : (**क्षण भर शून्य में मौन होकर देखने के बाद**) मदन···मदन की बातें कर रही है बेटी ?

अंजो : जी पापा ! मदन बाबू की बात···उनका टाइगर कितना अच्छा है (**रुककर**) अरे···आप चुप क्यों हो गए पापा ?

राजीव : (**ठंडी साँस लेकर**) कुछ नहीं, अब तू शान्त हो जा···।

अंजो : (**पिछली बातों का सिलसिला जारी है**) बेचारे मदन बाबू कह रहे थे कि मैं अकेले अपने बँगले में और चारों ओर अपने जीवन में बहुत कुछ सूना-सूना अनुभव करता हूँ···(**दुलार से**) पापा, मैं उनके साथ जाया करूँगी न···बोलिए···(**रुककर रूठे स्वरों में**) जाइए आप बोलते ही नहीं···मैं भी अब नहीं बोलूँगी···जाइए···।

राजीव : (**जैसे कुछ बड़ी कड़वी चीज़ निगलता हुआ**) अच्छा···रूठो नहीं···चली जाना···लेकिन सामू को भी साथ ले लेना···पहाड़ी प्रदेश है न (**रुककर**) अब तो खुश हो जा···खुश होकर देख बेटी, मैं चित्र आरम्भ करने जा रहा हूँ।

[अंजो रूठी हुई चुप बैठी रहती है।]

राजीव : अच्छा जा···बेटी···जिसमें तेरी खुशी है
मेरी ओर देख बेटी···(**अंजो प्रसन्नता से राजी**
अच्छा, अब मैं अपना चित्र आरम्भ करूँ न ?

अंजो : जी पापा !

[सहसा भीतर से सामू की आवाज़ आती है।]

आवाज़ : बेटी, दूध गरम है !

राजीव : अच्छा जा, जल्दी से दूध पीकर आ जा।

[अंजो तेजी से भीतर चली जाती है। राजीव अ
के पर्दे को पकड़कर बाहर देखने लगता है।]

राजीव : न जाने क्यों···मुझे इन ऊँचे पहाड़ों को देख
मेरी दृष्टि इन बर्फीले शिखरों से फिसलती है
के उत्तुंग शिखर से गिरता हुआ नीचे···बहुत न
जहाँ धरती का सीना फट गया है और उससे
नीचे से पिघल रहा है।

[बाहर से जैसे आँखें फेरकर कमरे में मौन टहल
है और राजीव फिर घूमकर खिड़की के पास
खिड़की पर पर्दा खींचकर अपने आसन पर लौट

अंजो : (**खड़ी-खड़ी राजीव को देखती हुई**) आप कि
रहे थे ?

राजीव : किसी से नहीं बेटी।

अंजो : लेकिन आपने एकाएक खिड़की पर पर्दा क्यों ख
बताइए···आप परेशान भी तो बहुत लग रहे हैं

राजीव : कोई बात नहीं बेटी ! कोई बात नहीं···मैं अ

अंजो : (**बीच ही में परेशानी से**) नहीं पापा !···जरू
ओर जाती है) मैं देखती हूँ कि इस खिड़की
दुश्मन कौन है ?···देखती हूँ मैं।

[पर्दा खोल कर बाहर देखती है।]

राजीव : वहाँ तुझे कोई नजर नहीं आएगा बेटी···लौ

अंजो : (**लौटकर काउच पर चिन्ता से बैठती हुई**
बताइए, नहीं तो मैं आप से रूठ जाऊँगी···।

राजीव : (**सूखी हँसी के बाद**)···सच बड़ी नटखट है त

अंजो : जिससे आप इतना परेशान लग रहे हैं।

राजीव : (**गंभीरता से टहलता हुआ**) बेटी···मैंने आ

आश्चर्य से) सच, तूने नहीं चढ़ाया है ?···अरे ! (**रुककर**)
साक्षात कलामूर्ति सरस्वती ने मेरी बेटी को यह प्रसाद दिया
जो है तू···अच्छा, अब तू शान्ति से काउच पर बैठ जा···मैं
जा रहा हूँ !
पापा, क्या आप बिना मेरी उपस्थिति के कोई चित्र नहीं आरम्भ

कर) नहीं···नहीं···कोई चित्र नहीं···पिछले कितने वर्षों से तू
ी आ रही है और हर वर्ष यह खामोश पर्वत भी देखता है।

शकुन है···तेरी स्वर्गीय माँ···जिसकी स्मृति में मेरी यह कला
ात्मा का रूप तू है; इसलिए यह कला बार-बार जन्म लेने के
ा ढूंढ़ती है···!
पापा···आप फिर आत्मा की बातों में पहुँच गए···मदन बाबू
त···!
काटता हुआ) समय नष्ट न कर बेटी···मैं चित्र आरम्भ करने

एक बात···एक बात मान लीजिएगा न !
अनजानों की तरह बातें कर रही है बेटी ! तेरी खुशी ही में तो
।
के साथ टहलने जाया करूँगी न !···पेगोरा पर तो आज आनन्द
···मदन बहुत अच्छे हैं···कितनी जिन्दगी है उनमें···।
शून्य में मौन होकर देखने के बाद) मदन···मदन की बातें कर

दन बाबू की बात···उनका टाइगर कितना अच्छा है (**रुककर**)
क्यों हो गए पापा ?
लेकर) कुछ नहीं, अब तू शान्त हो जा···।
तों का सिलसिला जारी है) बेचारे मदन बाबू कह रहे थे कि मैं
ाले में और चारों ओर अपने जीवन में बहुत कुछ सूना-सूना
···(**दुलार से**)पापा, मैं उनके साथ जाया करूँगी न···बोलिए···
वरों में) जाइए आप बोलते ही नहीं···मैं भी अब नहीं बोलूँगी···

बड़ी कड़वी चीज निगलता हुआ) अच्छा···रूठो नहीं···चली
सामू को भी साथ ले लेना···पहाड़ी प्रदेश है न (**रुककर**) अब तो
खुश होकर देख बेटी, मैं चित्र आरम्भ करने जा रहा हूँ।

चुप बैठी रहती है।]

राजीव : अच्छा जा···बेटी···जिसमें तेरी खुशी है···उसी में मैं खुश हूँ···अब तो मेरी ओर देख बेटी···(**अंजो प्रसन्नता से राजीव को देखकर मुस्करा देती है**) अच्छा, अब मैं अपना चित्र आरम्भ करूँ न ?

अंजो : जी पापा !

[सहसा भीतर से सामू की आवाज आती है।]

आवाज : बेटी, दूध गरम है !

राजीव : अच्छा जा, जल्दी से दूध पीकर आ जा।

[अंजो तेजी से भीतर चली जाती है। राजीव अपने आसन से उठकर दायीं खिड़की के पर्दे को पकड़कर बाहर देखने लगता है।]

राजीव : न जाने क्यों···मुझे इन ऊँचे पहाड़ों को देखकर डर लगता है और जब कभी मेरी दृष्टि इन बर्फीली शिखरों से फिसलती है तब मुझे लगता है कि मैं इस पर्वत के उत्तुंग शिखर से गिरता हुआ नीचे···बहुत नीचे एक ऐसी वादी में पहुँचता हूँ जहाँ धरती का सीना फट गया है और उससे निकलती हुई लपटों से यह पर्वत नीचे से पिघल रहा है।

[बाहर से जैसे आँखें फेरकर कमरे में मौन टहलने को है, सहसा अंजो प्रवेश करती है और राजीव फिर घूमकर खिड़की के पास जाता है, बाहर देखता है और खिड़की पर पर्दा खींचकर अपने आसन पर लौट आता है।]

अंजो : (**खड़ी-खड़ी राजीव को देखती हुई**) आप खिड़की से बाहर किससे बातें कर रहे थे ?

राजीव : किसी से नहीं बेटी।

अंजो : लेकिन आपने एकाएक खिड़की पर पर्दा क्यों खींच दिया ? क्या बात है पापा ! बताइए···आप परेशान भी तो बहुत लग रहे हैं।

राजीव : कोई बात नहीं बेटी ! कोई बात नहीं···मैं अपना चित्र···

अंजो : (**बीच ही में परेशानी से**) नहीं पापा !···जरूर कोई बात है···(**खिड़की की ओर जाती है**) मैं देखती हूँ कि इस खिड़की से बाहर आपकी भावनाओं का दुश्मन कौन है ?···देखती हूँ मैं।

[पर्दा खोल कर बाहर देखती है।]

राजीव : वहाँ तुझे कोई नजर नहीं आएगा बेटी···लौट आ···।

अंजो : (**लौटकर काउच पर चिन्ता से बैठती हुई**) तो क्या है पापा ! आप ही बताइए, नहीं तो मैं आप से रूठ जाऊँगी···।

राजीव : (**सूखी हँसी के बाद**)···सच बड़ी नटखट है तू ! बोल क्या बताऊँ तुझे ?

अंजो : जिससे आप इतना परेशान लग रहे हैं।

राजीव : (**गंभीरता से टहलता हुआ**) बेटी···मैंने आज रात को स्वप्न में देखा है कि

यह पहाड़ नीचे धरती की लपटों से पिघल रहा है और ऊपर इसके शिखरों और पहाड़ियों में एक बहुत बड़ा तूफान आया है, प्रचंड वर्षा और तेज आँधी,···लेकिन पर्वत का कुछ न बिगड़ सका। ऊपर की वर्षा से नीचे धरती की आग बुझ गयी और आँधी इन पहाड़ियों और शिखरों से टकराकर रह गयी।···

अंजो : (अपूर्व उत्सुकता से) फिर क्या हुआ ?

राजीव : फिर पर्वत मुस्कराने लगा और इस पर चाँदनी फैल गयी···।

अंजो : फिर···।

राजीव : सहसा इस पहाड़ पर रुपयों की झंकार हुई और धीरे-धीरे चाँद पर एक बहुत पतला भूरा बादल छा गया। और क्षण भर में बेटी, मैं क्या देखने लगता हूँ कि यह अजेय पर्वत धीरे-धीरे पिघलता हुआ छोटा होने लगता है···मैं डर गया। और मेरी आँखें खुल गयीं···इसी खौफनाक स्वप्न ने मुझे इस समय भी क्षण भर के लिए परेशान कर दिया था (रुककर) लेकिन इसमें कोई बात नहीं बेटी···यह तो निरा स्वप्न है···और बेटी, तुझे तो स्वप्न में विश्वास भी नहीं है···।

अंजो : जी हाँ···वह तो ठीक है···लेकिन मैंने आपको देखा, आप इस समय भी डर गए थे।

राजीव : डर क्या गया बेटी···मदन के साथ पेगोरा फाल पर तेरे जाने की बात सोचने लगा। फिर एकाएक मुझे यह स्वप्न याद आ गया और मैं बाहर इस पर्वत को देखकर समवेदना से सिहर गया।

अंजो : और अब···?

राजीव : (आसन पर बैठता हुआ) अब तो कोई बात नहीं···अब मैं अपना चित्र शुरू कर रहा हूँ।

अंजो : लेकिन पापा,···आप फिर भी बहुत परेशान हैं···मैं तो आपसे प्रार्थना करूँगी कि इस वर्ष आप कोई चित्र न बनाइए। हर वर्ष तो आप एक न एक चित्र बनाते ही रहते हैं, जाने दीजिए इस वर्ष···।

[राजीव आश्चर्य से अंजो को देखता है।]

अंजो : कोई चित्र न बनाइए पापा (रुककर) मदन बाबू कहते थे कि दुनिया मैदान से पहाड़ पर आनन्द करने आती है, तपस्या करने नहीं, और तुम्हारे पापा जी ऐसे हैं कि पहाड़ पर हर वर्ष साधना करने आते हैं, चित्रकला में सर खपाने। पापा, मैं भी सोचती हूँ इन्हीं सब कारणों से आप इतने अच्छे पर्वत की गोदी में भी बैठकर इतना भयानक स्वप्न देखते हैं।

राजीव : (एक लम्बी-सी सूखी हँसी हँसकर) मेरी भोली अंजो ! कितनी बच्ची है तू···। (उठकर टहलता हुआ) तुझे शायद मैंने बताया होगा कि मैं पहाड़ पर क्यों आता हूँ और पहाड़ पर हर वर्ष क्यों एक नया चित्र बनाता हूँ···बताया है न···?

अंजो : (ठुनक कर) कहाँ बताया है ?

राजीव : (बीच ही में अपनी हँसी से अंजो की आवाज
बताया होगा, तुझे भूल गया हो, यह दूसरी
भूलना।···(टहलता हुआ) जिस वर्ष शकुन मे
साथ पहाड़ आया और इसी बँगले में रुका, फि
बेटी !···अब भी मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं
थी और मैं भी दौलत के पंजों में था। मेरी उम
हर चाल के पीछे इसकी मस्ती थी। मुझे शकु
आकर्षण, खूबसूरत झीलें, फूलों से भरी वादियाँ
ऊँचे होटलों, थियेटरों आदि सब ऊँची सकिलों से
सबकी आत्माएँ देखी हैं···।

अंजो : (जिज्ञासा से) आत्माएँ !

राजीव : हाँ बेटी ! मैं इस पहाड़ पर आने वाले व्यक्ति
हूँ क्योंकि मैं स्वयं एक दिन इन्हीं आत्माओं का दो
प्रिय था, मैं इससे कभी नहीं ऊबता था, लेकिन
ऊब करके आँसू बहा देती थी और कभी तो क
बन्द रहकर कुछ ऐसे नये-नये चित्र बनाती थी, ज
मेरे वस्तुवादी दृष्टिकोण पर चोट डालते थे···(
सुकुमार चोटों से मेरे वस्तुवादी दृष्टिकोण की दी
एक दिन मुझे एक नये इन्सान का रूप दिया और
भी आई···लेकिन अफसोस वह चली गई, क्यों
अपना दैवी कार्य करके चला जाना था।

[कंठ भर जाता है और वह बाहर शून्य में देखने ल

अंजो : पापा···कोच पर मेरे पास आ जाइए···।

राजीव : (उसी तरह टहलता हुआ) तब से बेटी !···
पालता रहा। और तुम्हारे जन्म से सात वर्षों त
लेकिन पिछले दस वर्षों से मैं फिर बराबर पहाड़
पहाड़ न आता लेकिन शकुन की पवित्र स्मृति
लगता है कि शकुन की इसी बँगले में बसी हुई प्रत्ये
है। यही कारण है बेटी! कि हर वर्ष मैं उस महाश
चेतना के फलस्वरूप इस पर्वत पर एक नया चित्र

[अंजो चुप है।]

राजीव : तू उसी महाशक्ति का अंश है बेटी !···तुझे
उठना है···तू मेरी प्रेरणा है···!

[अंजो चुप है।]

धरती की लपटों से पिघल रहा है और ऊपर इसके शिखरों और
बहुत बड़ा तूफान आया है, प्रचंड वर्षा और तेज आँधी,···लेकिन
बिगड़ सका। ऊपर की वर्षा से नीचे धरती की आग बुझ गयी
पहाड़ियों और शिखरों से टकराकर रह गयी।···

ता से) फिर क्या हुआ ?

मुस्कराने लगा और इस पर चाँदनी फैल गयी···।

पहाड़ पर रुपयों की झंकार हुई और धीरे-धीरे चाँद पर एक बहुत
ल छा गया। और क्षण भर में बेटी, मैं क्या देखने लगता हूँ कि
धीरे-धीरे पिघलता हुआ छोटा होने लगता है···मैं डर गया।
खुल गयी···इसी खौफनाक स्वप्न ने मुझे इस समय भी क्षण भर
कर दिया था (रुककर) लेकिन इसमें कोई बात नहीं बेटी···यह
है···और बेटी, तुझे तो स्वप्न में विश्वास भी नहीं है···।

तो ठीक है···लेकिन मैंने आपको देखा, आप इस समय भी डर

या बेटी···मदन के साथ पेगोरा फाल पर तेरे जाने की बात सोचने
काएक मुझे यह स्वप्न याद आ गया और मैं बाहर इस पर्वत को
ना से सिहर गया।

र बैठता हुआ) अब तो कोई बात नहीं···अब मैं अपना चित्र शुरू

···आप फिर भी बहुत परेशान हैं···मैं तो आपसे प्रार्थना करूँगी
प कोई चित्र न बनाइए। हर वर्ष तो आप एक न एक चित्र बनाते
ने दीजिए इस वर्ष···।

र्य से अंजो को देखता है।]

बनाइए पापा (रुककर) मदन बाबू कहते थे कि दुनिया मैदान से
न्द करने आती है, तपस्या करने नहीं, और तुम्हारे पापा जी ऐसे
हर वर्ष साधना करने आते हैं, चित्रकला में सर खपाने। पापा,
हूँ इन्हीं सब कारणों से आप इतने अच्छे पर्वत की गोदी में भी बैठकर
स्वप्न देखते हैं।

ी-सी सूखी हँसी हँसकर) मेरी भोली अंजो ! कितनी बच्ची है
र टहलता हुआ) तुझे शायद मैंने बताया होगा कि मैं पहाड़ पर
ौर पहाड़ पर हर वर्ष क्यों एक नया चित्र बनाता हूँ···बताया है

कहाँ बताया है ?

राजीव : (**बीच ही में अपनी हँसी से अंजो की आवाज को दबा देता है**) मैंने तुझे जरूर बताया होगा, तुझे भूल गया हो, यह दूसरी बात है।···अच्छा सुन, अब न भूलना।··· (टहलता हुआ) जिस वर्ष शकुन से मेरी शादी हुई उसी वर्ष मैं उसके साथ पहाड़ आया और इसी बँगले में रुका, फिर आगे भी इसी में रुकता रहा। बेटी !···अब भी मुझे किसी चीज की कमी नहीं, लेकिन तब दौलत मेरे पैरों तले थी और मैं भी दौलत के पंजों में था। मेरी उमंगों में रुपयों की झंकार थी, मेरी हर चाल के पीछे इसकी मस्ती थी। मुझे शकुन के साथ इस पहाड़ के तमाम आकर्षण, खूबसूरत झीलें, फूलों से भरी वादियाँ झरने, ग्लेशियर और इधर तमाम ऊँचे होटलों, थियेटरों आदि सब ऊँची सर्किलों से पूरा-पूरा परिचय था और मैंने सबकी आत्माएँ देखी हैं···।

अंजो : (**जिज्ञासा से**) आत्माएँ !

राजीव : हाँ बेटी ! मैं इस पहाड़ पर आने वाले व्यक्तियों के हर एक साँस से परिचित हूँ क्योंकि मैं स्वयं एक दिन इन्हीं आत्माओं का दोस्त था, मुझे भी यह वातावरण प्रिय था, मैं इससे कभी नहीं ऊबता था, लेकिन मेरी स्वर्गीय शकुन बुरी तरह से ऊब करके आँसू बहा देती थी और कभी तो कई दिनों तक इसी बँगले में अकेले बन्द रहकर कुछ ऐसे नये-नये चित्र बनाती थी, जो मेरे पागल हृदय में चुभ कर मेरे वस्तुवादी दृष्टिकोण पर चोट डालते थे··· (रुककर) बेटी ! धीरे-धीरे उसकी सुकुमार चोटों से मेरे वस्तुवादी दृष्टिकोण की दीवार ढहती गई, फिर शकुन ने एक दिन मुझे एक नये इन्सान का रूप दिया और साथ ही साथ उसकी गोद में तू भी आई···लेकिन अफसोस वह चली गई, क्योंकि वह महाशक्ति थी···उसे अपना दैवी कार्य करके चला जाना था।

[कंठ भर जाता है और वह बाहर शून्य में देखने लगता है।]

अंजो : पापा···कोच पर मेरे पास आ जाइए···।

राजीव : (**उसी तरह टहलता हुआ**) तब से बेटी !···मैं तुझे अपनी पलकों में रखकर पालता रहा। और तुम्हारे जन्म से सात वर्षों तक मैं पहाड़ फिर न आ सका, लेकिन पिछले दस वर्षों से मैं फिर बराबर पहाड़ आने लगा हूँ। बेटी ! मैं फिर पहाड़ न आता लेकिन शकुन की पवित्र स्मृति से मैं विवश हूँ। मुझे हमेशा लगता है कि शकुन की इसी बँगले में बसी हुई प्रत्येक साँस मुझे पागल किए रहती है। यही कारण है बेटी! कि हर वर्ष मैं उस महाशक्ति की स्मृति में, अपनी नयी चेतना के फलस्वरूप इस पर्वत पर एक नया चित्र बनाता हूँ।

[अंजो चुप है।]

राजीव : तू उसी महाशक्ति का अंश है बेटी !···तुझे तो इस आकाश से भी ऊँचा उठना है···तू मेरी प्रेरणा है···!

[अंजो चुप है।]

राजीव : बेटी मुझे तुझ पर पूरा विश्वास भी है, ये पहाड़ी कांटे तेरे पवित्र पैरों में कभी नहीं चुभ सकते···!

अंजो : पापा !

राजीव : तू हमेशा स्वतंत्र है बेटी ! मैं किसी भी तरह तेरे व्यक्तित्व के विकास में बाधक नहीं बनना चाहता···लेकिन तुझे मेरे कीमती अनुभवों का सदुपयोग करना चाहिए···इनमें तू लाभ उठा !

अंजो : तो पापा, आपको मदन बाबू अच्छे नहीं लगते ?

राजीव : और तुझे ?

[अंजो चुप है ।]

राजीव : मुझे अफसोस है बेटी ! कि तेरा मासूम सर चक्कर क्यों नहीं खा रहा है ?···

अंजो : तो आप मुझसे अप्रसन्न हो रहे हैं पापा जी ?

राजीव : तुझसे क्यों···अपने से नाराज़ हो रहा हूँ ।

अंजो : ऐसा न कीजिए पापाजी ।

[सहसा सामू का प्रवेश]

सामू : (**विनय से**) बाबू जी···नाश्ते के लिए कोई और चीज़ बना दी जाए या नीरा देवी ने जो नाश्ता बनाकर भिजवाया है···वही···।

राजीव : बस नीरा का ही काफी है···।

[सामू उलटे पाँव चला जाता है ।]

अंजो : आपको नीरा देवी कितना मानती हैं···कितनी अच्छी हैं !···वे कौन हैं पापा आपकी···?

राजीव : (**झुंझला कर**) कुछ नहीं···बेटी मुझे चित्र आरम्भ करने में देरी हो रही है, इस समय मुझे अन्य बातें न सोचने दे ।

अंजो : (**दुलार से रूठती हुई**) नहीं, देखिए पापा जी, आप बता दीजिए···वे मुझे बहुत प्यार करती हैं···देखिए हरदम तो हमारे बंगले में आती रहती हैं···आपसे··· तो···।

राजीव : (**अपनी व्यंग्य-भरी हँसी में सहसा उसकी बात काटता हुआ**) तेरे सामने अंजो, मेरे जीवन में कोई रहस्य नहीं है, किसी के प्रति । मैं सोचता था कि तू नीरा को अच्छी तरह जानती है···उसके दिल और दिमाग़ दोनों को···(**रुककर**) खैर, मैं फिर बताऊँगा···।

[सहसा खिड़की के बाहर दायीं ओर से ऊपर चढ़ते हुए, घोड़े पर चढ़े हुए किसी व्यक्ति के आने की आहट होती है, राजीव अपनी उसी मुद्रा में है जैसे उसने कुछ भी नहीं सुना, लेकिन अंजो आहट मात्र से भावविह्वल होकर खिड़की के पास दौड़ती है ।]

अंजो : (**आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से चीखकर**) मदन

[बाहर से आवाज सुनाई देती है आओ···जल्दी च

अंजो : इतनी जल्दी समय हो गया ? (**घूमकर**) पापा

राजीव : क्या है ?

अंजो : (**पास आकर बहुत दुलार से**) पापा जी···बाहर

राजीव : (**गंभीरता से**) तो···!

अंजो : मैं उनके साथ सिंधा ग्लेशियर देखने जाऊँगी ।

राजीव : (**अपने आसन से उठता हुआ**) जरा मदन को

[अंजो तेज़ी से बाहर चली जाती है, राजीव घूमक डाले हुए पुष्पहार को देखने लगता है ।]

राजीव : (**अपने आप**) तो यह मदन का पुष्पहार है, अ

अंजो : (**तेज़ी से वापस आकर**) मदन बाबू घोड़े पर च बदमाश है···उसे अकेले बाहर छोड़कर वे भीतर क

राजीव : (**तीखे स्वर में**) तब तू कैसे बाहर जा सकती कह आ कि मैं अकेले पापा को छोड़कर इस समय न आ···खड़ी क्यों है···मुझे इस समय चित्र आरम्भ **जाती है ।**)

राजीव : (**फिर अंजो के चित्र की ओर घूमकर**) शायद है···मुझे लगता है ये फूल आसमान से तोड़े गए अंजो···

[अंजो के साथ मदन का प्रवेश । मदन प्रायः बाईस भरे हुए गोरे चेहरे पर बनावटी मुस्कराहट है तथा नखरे से वह जैसे कोई ऐसा फिल्मी नायक लगता तैयार है ।]

मदन : (**अंजो के साथ प्रवेश करते ही शिष्टता से**) नम

राजीव : नमस्ते···आओ बैठो, बाहर तुम्हारे घोड़े को कि

मदन : सब ठीक है, चिन्ता न कीजिए ।

[और कोच पर बैठ जाता है । ठीक उसको देखती सहारे खड़ी है ।]

राजीव : कहाँ की तैयारी है मदन ?

मदन : (**बिल्कुल बेतकल्लुफी से**)···कहीं नहीं···बस यह थी कि मैं इन्हें सिंधा ग्लेशियर दिखा लाऊँ, इन्होंने·

अंजो : (**घबड़ाकर बीच ही में**) मदन !

झ पर पूरा विश्वास भी है, ये पहाड़ी कांटे तेरे पवित्र पैरों में कभी
···!

स्वतंत्र है बेटी ! मैं किसी भी तरह तेरे व्यक्तित्व के विकास में
ना चाहता···लेकिन तुझे मेरे कीमती अनुभवों का सदुपयोग करना
तू लाभ उठा !
पको मदन बाबू अच्छे नहीं लगते ?

]

स है बेटी ! कि तेरा मासूम सर चक्कर क्यों नहीं खा रहा है ?···
ते अप्रसन्न हो रहे हैं पापा जी ?
··अपने से नाराज़ हो रहा हूँ।
ए पापाजी।

ा प्रवेश]

बाबू जी···नाश्ते के लिए कोई **और** चीज बना दी जाए या नीरा
ता बनाकर भिजवाया है···वही···।
ा ही काफी है···।

व चला जाता है।]

देवी कितना मानती हैं···कितनी अच्छी हैं !···वे कौन हैं पापा

कर) कुछ नहीं···बेटी मुझे चित्र आरम्भ करने में देरी हो रही है,
अन्य बातें न सोचने दे।

ठती हुई) नहीं, देखिए पापा जी, आप बता दीजिए···वे मुझे बहुत
··देखिए हरदम तो हमारे बंगले में आती रहती हैं···आपसे···

य-भरी हँसी में सहसा उसकी बात काटता हुआ) तेरे सामने अंजो,
ोई रहस्य नहीं है, किसी के प्रति। मैं सोचता था कि तू नीरा को
नती है···उसके दिल और दिमाग़ दोनों को···(**रुककर**) खैर, मैं
··।

के बाहर दायीं ओर से ऊपर चढ़ते हुए, घोड़े पर चढ़े हुए किसी
की आहट होती है, राजीव अपनी उसी मुद्रा में है जैसे उसने कुछ
लेकिन अंजो आहट मात्र से भावविह्वल होकर खिड़की के पास

अंजो : (**आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से चीखकर**) मदन बाबू !

[बाहर से आवाज सुनाई देती है आओ···जल्दी चलो···!]

अंजो : इतनी जल्दी समय हो गया ? (**घूमकर**) पापा जी !

राजीव : क्या है ?

अंजो : (**पास आकर बहुत दुलार से**) पापा जी···बाहर मदन बाबू खड़े हैं···!

राजीव : (**गंभीरता से**) तो···!

अंजो : मैं उनके साथ सिधा ग्लेशियर देखने जाऊँगी।

राजीव : (**अपने आसन से उठता हुआ**) जरा मदन को बुलाना तो बेटी !

[अंजो तेजी से बाहर चली जाती है, राजीव घूमकर फिर अंजो के चित्र पर पहले डाले हुए पुष्पहार को देखने लगता है।]

राजीव : (**अपने आप**) तो यह मदन का पुष्पहार है, अब समझा···!

अंजो : (**तेजी से वापस आकर**) मदन बाबू घोड़े पर चढ़कर आए हैं, कह रहे हैं घोड़ा बदमाश है···उसे अकेले बाहर छोड़कर वे भीतर कैसे आ सकते हैं।

राजीव : (**तीखे स्वर में**) तब तू कैसे बाहर जा सकती है ! (**रुककर**) जाकर तू भी कह आ कि मैं अकेले पापा को छोड़कर इस समय बाहर नहीं जा सकती···जा कह आ···खड़ी क्यों है···मुझे इस समय चित्र आरम्भ करना है (**अंजो बाहर चली जाती है**।)

राजीव : (**फिर अंजो के चित्र की ओर घूमकर**) शायद इस पुष्पहार में सुगन्धि नहीं है···मुझे लगता है ये फूल आसमान से तोड़े गए हैं। (**रुककर पुकारता है**) अंजो···

[अंजो के साथ मदन का प्रवेश। मदन प्रायः बाईस वर्ष का खूबसूरत नौजवान है। भरे हुए गोरे चेहरे पर बनावटी मुस्कराहट है तथा उसके वेश-विन्यास, चाल और नखरे से वह जैसे कोई ऐसा फिल्मी नायक लगता है जो बिल्कुल शूटिंग के लिए तैयार है।]

मदन : (**अंजो के साथ प्रवेश करते ही शिष्टता से**) नमस्ते राजी बाबू !

राजीव : नमस्ते···आओ बैठो, बाहर तुम्हारे घोड़े को किसने सम्हाला है ?

मदन : सब ठीक है, चिन्ता न कीजिए।

[और कोच पर बैठ जाता है। ठीक उसको देखती हुई अंजो सामने अपने कोच के सहारे खड़ी है।]

राजीव : कहाँ की तैयारी है मदन ?

मदन : (**बिल्कुल बेतकल्लुफी से**)···कहीं नहीं···बस यही कि अंजलि की बहुत इच्छा थी कि मैं इन्हें सिधा ग्लेशियर दिखा लाऊँ, इन्होंने···!

अंजो : (**घबड़ाकर बीच ही में**) मदन !

मदन : (**अपनी बात को सम्हाल कर दूसरे रंग में रँगता हुआ**) जी नहीं, और इन्फ़ेक्ट राजी बाबू ! बात यह थी कि आज अभी ओपेन आइस पर स्केटिंग शो क्या··· समझ लीजिए कम्पटीशन सा है। मैं उसमें भाग लेने जा रहा हूँ···सोचा कि अंजलि को भी लेता चलूँ और उधर ही से इन्हें सिधा ग्लेशियर भी दिखा दूँगा !

राजीव : ओह ! (**रूखी हँसी हँसता है और फिर गंभीरता से**) मदन !

मदन : जी !

राजीव : ये अंजो के चित्र पर आज सुबह तुमने पुष्पहार चढ़ाया है ?

मदन : (**घबड़ा कर हिचकिचाता हुआ**) मैं···मैं···मैं···नहीं तो···मैं क्यों राजी बाबू ?

राजीव : कोई बात नहीं···मैंने वैसे ही पूछा (**रुककर**) तो अंजो !···तू मदन बाबू के साथ जा रही है न ! बोल चुप क्यों हो गई ? (**हँसता हुआ**) पगली, जाना चाहती है तभी नहीं बोल रही है !

मदन : (**बीच ही में**) राजी बाबू ! हम लोग बहुत जल्द लौट आएँगे !

राजीव : लेकिन आज मैंने अपना नया चित्र आरम्भ करने का व्रत लिया था···!

मदन : नया चित्र !···इस वर्ष आप कौन-सा चित्र बनाइएगा ?

अंजो : (**बीच ही में दुलार से अपने चित्र की ओर संकेत कर**) मदन बाबू, गत वर्ष पापा ने मेरी यह तस्वीर बनाई थी···!

मदन : यह तो मुझे भी मालूम है ! (**रुककर**) राजी बाबू ! इस वर्ष आप क्या बना रहे हैं ?

राजीव : (**गंभीरता से**) एक पत्थर की तस्वीर !

मदन : पत्थर की तस्वीर !···यह तो बड़ी नायाब चीज होगी राजी बाबू ! इसे इतनी जल्दी में शुरू करना ठीक नहीं, हम लोग बहुत जल्द लौट आएँगे···तब···।

राजीव : क्यों बेटी ?

अंजो : जी हाँ पापा···मैं बहुत जल्द लौटूँगी···!

राजीव : लेकिन मुझे आज ही चित्र आरम्भ करना है बेटी ! मैं तब तक अपना आसन नहीं छोड़ सकता···!

अंजो : तो !

राजीव : तो क्या···तू जा बेटी, मैं तब तक यहीं बैठे-बैठे तेरी प्रतीक्षा करूँगा और !

[मदन जल्दी से उठकर बाहर जाने लगता है, अंजो दुश्चिता में राजीव को देखती खड़ी है।]

राजीव : (**आसन पर बैठता हुआ**) जा बेटी जा ! खड़ी क्यों है जा !

[अंजो प्रसन्नता से मदन के साथ होकर बाहर जाती है और राजीव शून्य में कुछ देखता हुआ अपने आसन पर बैठा रहता है और धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[अँधेरा हो चुका है। बस्ती में चारों ओर बिज रंगीनियाँ तथा चहल-पहल है। स्थान स्थान से गानों की आवाज़ आ रही है। पर्दा फिर राजीव में दो बल्ब जल रहे हैं, एक राजीव के आसन के दूसरा टेबुल लैम्प में, राजीव के आसन के पास

पर्दा उठने पर राजीव चिन्तित अपने मस उसकी आँखों में अनन्त प्रतीक्षा और होंठों पर समूचे मुख पर गम्भीरता के प्रकाश में विश्वास रहने के बाद वह उठकर दाईं खिड़की के पर्द फिर कमरे में टहलता हुआ बार-बार मानो अ कहता है :

मुझे मेरी अंजो पर विश्वास है।
मुझे उस पर विश्वास है···वह महाशक्ति
उसे कोई काँटों में नहीं घसीट सकता···!

[सहसा बायें दरवाजे पर सामू आता है।]

सामू : (**डरता हुआ अत्यन्त विनय के स्वर में**) बाबू

राजीव : (**घूमकर**) क्या है सामू ?

सामू : (**प्रार्थना के स्वर में**) कम से कम थोड़ी-सी चाय शाम के सात बज चुके, पूरा दिन बीत गया पिया है।

राजीव : और तुझे मेरी अंजो की चिन्ता नहीं ! वह भ गई है।

सामू : मदन ने बेटी को ज़रूर खाना खिलाया होगा !

राजीव : (**मानो दुःख से चीख कर**) सामू ! मत ऐस तक भूखी होगी···वह मेरे बिना किसी के घर नहीं चाय गर्म रख सामू ! वह आ ही रही होगी।

सामू : (**चिन्ता के स्वर में**) बेटी को अकेले नहीं भेजन

राजीव : (**चौंककर**) क्यों ?

सामू : मदन मुझे बिल्कुल नहीं पसन्द हैं···उनकी चा

राजीव : (**बीच ही में तेज वाणी से**) सामू ! मेरे विश

[सामू चुप रहता है।]

राजीव : मेरी अंजो गंगा की धार है···मेरा यह वि

ी बात को सम्हाल कर दूसरे रंग में रँगता हुआ)जी नहीं, और इन्फ़ेक्ट
बू ! बात यह थी कि आज अभी ओपेन आइस पर स्केटिंग शो क्या···
जिए कम्पटीशन सा है। मैं उसमें भाग लेने जा रहा हूँ···सोचा कि
ी भी लेता चलूं और उधर ही से इन्हें सिधा ग्लेशियर भी दिखा दूँगा !
! (रूखी हँसी हँसती है और फिर गंभीरता से) मदन !

जो के चित्र पर आज सुबह तुमने पुष्पहार चढ़ाया है ?
। कर हिचकिचाता हुआ) मैं···मैं···मैं···नहीं तो···मैं क्यों राजी

बात नहीं···मैंने वैसे ही पूछा (रुककर) तो अंजो !···तू मदन बाबू के
रही है न ! बोल चुप क्यों हो गई ? (हँसता हुआ) पगली, जाना चाहती
हीं बोल रही है !
ही में) राजी बाबू ! हम लोग बहुत जल्द लौट आएँगे !
न आज मैंने अपना नया चित्र आरम्भ करने का व्रत लिया था···!
त्र !···इस वर्ष आप कौन-सा चित्र बनाइएगा ?
ी में दुलार से अपने चित्र की ओर संकेत कर) मदन बाबू, गत वर्ष पापा
ह तस्वीर बनाई थी···!
मुझे भी मालूम है ! (रुककर) राजी बाबू ! इस वर्ष आप क्या बना

ीरता से) एक पत्थर की तस्वीर !
की तस्वीर !···यह तो बड़ी नायाब चीज़ होगी राजी बाबू ! इसे इतनी
शुरू करना ठीक नहीं, हम लोग बहुत जल्द लौट आएँगे···तब···।
बेटी ?
ी पापा···मैं बहुत जल्द लौटूंगी···!
न मुझे आज ही चित्र आरम्भ करना है बेटी ! मैं तब तक अपना आसन
ड़ सकता···!

क्या···तू जा बेटी, मैं तब तक यहीं बैठे-बैठे तेरी प्रतीक्षा करूँगा और !
जल्दी से उठकर बाहर जाने लगता है, अंजो दुश्चिंता में राजीव को देखती
।]
ासन पर बैठता हुआ) जा बेटी जा ! खड़ी क्यों है जा !
प्रसन्नता से मदन के साथ होकर बाहर जाती है और राजीव शून्य में कुछ
हुआ अपने आसन पर बैठा रहता है और धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[**अँधेरा** हो चुका है। बस्ती में चारों ओर बिजलियाँ जल रही हैं और चारों ओर रंगीनियाँ तथा चहल-पहल है। स्थान स्थान से फ़िल्मी रेकार्ड्स और रेडियो से गानों की आवाज़ आ रही है। पर्दा फिर राजीव के उसी कमरे में उठता है। कमरे में दो बल्ब जल रहे हैं, एक राजीव के आसन के पीछे दीवार में, दरवाजे के ऊपर, दूसरा टेबुल लैम्प में, राजीव के आसन के पास छोटे से टेबुल पर।

पर्दा उठने पर राजीव चिन्तित अपने मसनद के सहारे टिका हुआ बैठा है। उसकी आँखों में अनन्त प्रतीक्षा और होंठों पर बेबसी की रेखाएँ उभरी हैं लेकिन समूचे मुख पर गम्भीरता के प्रकाश में विश्वास की छाप स्पष्ट है। क्षण भर मौन रहने के बाद वह उठकर दाईं खिड़की के पर्दे को हटाकर बाहर देखता है और फिर कमरे में टहलता हुआ बार-बार मानो अपने को समझाता हुआ स्वयं से कहता है :

मुझे मेरी अंजो पर विश्वास है।
मुझे उस पर विश्वास है···वह महाशक्ति है !
उसे कोई काँटों में नहीं घसीट सकता···!

[सहसा बायें दरवाजे पर सामू आता है।]

सामू : (**डरता हुआ अत्यन्त विनय के स्वर में**) बाबू जी !
राजीव : (**घूमकर**) क्या है सामू ?
सामू : (**प्रार्थना के स्वर में**) कम से कम थोड़ी-सी चाय ही पी लीजिए बाबू जी···देखिए शाम के सात बज चुके, पूरा दिन बीत गया और अभी आपने पानी तक नहीं पिया है।
राजीव : और तुझे मेरी अंजो की चिन्ता नहीं ! वह भी तो सुबह सिर्फ दूध ही पीकर गई है।
सामू : मदन ने बेटी को ज़रूर खाना खिलाया होगा !
राजीव : (**मानो दुःख से चीख कर**) सामू ! मत ऐसी बातें सोच···मेरी अंजो अभी तक भूखी होगी···वह मेरे बिना किसी के घर नहीं खा सकती।···वह भूखी होगी, चाय गर्म रख सामू ! वह आ ही रही होगी।
सामू : (**चिन्ता के स्वर में**) बेटी को अकेले नहीं भेजना था बाबू जी !
राजीव : (**चौंककर**) क्यों ?
सामू : मदन मुझे बिल्कुल नहीं पसन्द है···उनकी चाल···!
राजीव : (**बीच ही में तेज वाणी से**) सामू ! मेरे विश्वास पर मत चोट कर !

[सामू चुप रहता है।]

राजीव : मेरी अंजो गंगा की धार है···मेरा यह विश्वास कभी कमज़ोर नहीं पड़

सकता, समझे !

[सामू चुप है।]

राजीव : चुप क्यों है···समझे नहीं···मेरी अंजो गंगा की धार है और मदन···बस, एक छोटा-सा तिनका···!

सामू : देहात की एक कहावत है बाबू जी, कि तिनके ही से पहाड़ बनता है।

राजीव : (**कड़े स्वर में**) मेरे विश्वास के प्रति तर्क न कर सामू। मेरी अंजो आ ही रही होगी···अभी मासूम बच्ची ही तो है···टहलने घूमने का समय भी है···इधर-उधर कुछ देखने लगी होगी··· (**बढ़कर दायीं खिड़की से फिर बाहर देखता है**) वह आ ही रही होगी !

सामू : जी !

राजीव : (**एकाएक प्रसन्नता से**) सामू···वह देख···मेरी अंजो आ रही है। (**घूमकर प्रसन्नता से**) जल्दी बाहर दौड़ जा और उसे साथ ला···उसे समझा देना कि तेरे पापा तुझसे बिल्कुल नाराज़ नहीं हैं।

[सामू बाहर जाता है। राजीव टेबुल लैम्प को अपने आसन के पास ठीक से रखता हुआ फिर स्वयं अपने से दो बार कहता है 'मेरे विश्वास में बल है, मेरे विश्वास में शक्ति है, तब तक बाहर सामू के साथ और किसी की बातचीत की आवाज़ आती है। राजीव अपने विश्वास से प्रेरित, स्नेह को लुटाता हुआ प्यार से चीख उठता है।]

राजीव : (**बाहर बढ़ता हुआ**) मेरी अंजो बेटी !

आवाज़ : (**बहुत समीप से**) इसी तरह आदमी पागल हो जाता है।

[इस आवाज़ के साथ ही साथ नीरा का प्रवेश, उम्र प्रायः 25 वर्ष, यह उस स्तर की युवतियों में से है जो शिक्षा, रूप और धन के मद में इतनी स्वतंत्र हो जाती हैं कि पहले अपने अहं में सबकी उपेक्षा करती हैं लेकिन कुछ ही दिनों में अपनी सहज निर्बलता के कारण किसी पुरुष के पीछे अपना पूरा जीवन बर्बाद कर डालने के लिए सोच बैठती हैं और परिस्थितियों के थपेड़े में आगे बढ़ती रहती हैं।]

नीरा : (**कमरे में प्रवेश करते ही**) देखिए···अंजो अभी तक नहीं आई।

राजीव : (**दुःख को पीता हुआ**) कोई बात नहीं···आ ही रही होगी···अभी तो टहलने-घूमने का समय है···लोग पहाड़ पर आते इसलिए ही हैं।

नीरा : (**व्यंग्य से**) सच !

राजीव : अब मैं अपनी अंजो को स्वयं टहलाऊँगा।···वह कहती थी कि पापा !··· मुझे वास्तविक जीवन बहुत पसंद है, आपका सीमित···हवाई दृष्टिकोण नहीं···। वह सच कहती थी, क्योंकि उसे आज के जीवन में रहना है।

नीरा : (**अपना निशाना पाते ही**) तो पहले आप वास्तविक जीवन में उतरिए।

राजीव : (रुककर) मुझे हटाओ नीरा···(रुककर) बै

[दायें कोच पर नीरा और सामने राजीव बैठते

राजीव : तुम्हें अंजो का कुछ पता लगा !

नीरा : आप तो कह रहे हैं कि वह अभी आ रही है···

राजीव : यह मैं कहाँ कह रहा हूँ···? यह तो मेरा वि पूछ रहा हूँ कि तुम्हें कुछ पता है !

नीरा : मेरे ब्रदर से तो इतना पता चला है कि सुबह वे स्केटिंग ग्राउण्ड गए थे और ग्यारह बजे तक वहाँ

राजीव : और मेरी अंजो···किसी सुरक्षित जगह पर थी न !

नीरा : और कर ही क्या सकती थी ! इतना ही क्या क

राजीव : खैर, हटाओ यह उसका बचपना है ! फिर···

नीरा : इसके बाद वे लोग सिधा ग्लेशियर भी गए थे···

राजीव : (**जैसे उसकी साँस फूल गई हो, उठकर खिड़क** नहीं···वह जल्दी ही आ रही होगी।

नीरा : ईश्वर करे वह जल्दी आ जाए···लेकिन आप तब

राजीव : (**कोच के पास आकर**) मेरी चिंता न करो नी

नीरा : क्यों···फिर मैं किसकी चिन्ता करूँ···व्यक्ति ही

राजीव : लेकिन मेरे ऐसे व्यक्ति के पीछे चिन्ता करने स्थिर हूँ, भावुक और कमजोर, और कभी-कभी मैं भावना की इतनी पूजा करने लगता हूँ कि कोई

नीरा : यही तो आपका सौंदर्य है।

राजीव : (**सूखी, लम्बी हँसी के बाद**) खूब, खूब, वाह तु सत्य और मरीचिका का ज्ञान नहीं।

नीरा : खैर,···आप मेरी बात छोड़िए···मैं आप से हाथ कप चाय पी लीजिए। (**पुकार कर**) सामू !

राजीव : (**व्यग्रता से**) देखो, नीरा, हठ न करो···मेर एक नया चित्र आरम्भ करूँ। लेकिन अंजो चली हो सका (**रुककर**) मुझे मेरे व्रत की भी तो चिन्ता

नीरा : अवश्य···क्यों नहीं,··· (**रुककर**) इस वर्ष आप क

राजीव : (**तड़प कर**) पूछो न नीरा, इस वर्ष मुझे वह चि का गौरव होगा···और युग के शव की सबसे ऊँची

नीरा : मेरे तन, मन से उसकी मंगल कामना···राजीव ब

राजीव : (**भावविह्वल हो अपने आसन पर बैठकर टेबुल**

समझे नहीं···मेरी अंजो गंगा की धार है और मदन···बस, एक
·!
हावत है बाबू जी, कि तिनके ही से पहाड़ बनता है।
मेरे विश्वास के प्रति तर्क न कर सामू। मेरी अंजो आ ही रही
म बच्ची ही तो है···टहलने घूमने का समय भी है···इधर-उधर
ोगी···(बढ़कर दायीं खिड़की से फिर बाहर देखता है) वह आ

नता से) सामू···वह देख···मेरी अंजो आ रही है। (घूमकर
ो बाहर दौड़ जा और उसे साथ ला···उसे समझा देना कि तेरे
ल नाराज़ नहीं हैं।

है। राजीव टेबुल लैम्प को अपने आसन के पास ठीक से रखता
पने से दो बार कहता है 'मेरे विश्वास में बल है, मेरे विश्वास
तक बाहर सामू के साथ और किसी की बातचीत की आवाज़
अपने विश्वास से प्रेरित, स्नेह को लुटाता हुआ प्यार से चीख

ा हुआ) मेरी अंजो बेटी !
से) इसी तरह आदमी पागल हो जाता है।

ाथ ही साथ नीरा का प्रवेश, उम्र प्रायः 25 वर्ष, यह उस स्तर
है जो शिक्षा, रूप और धन के मद में इतनी स्वतंत्र हो जाती हैं
हूं में सबकी उपेक्षा करती हैं लेकिन कुछ ही दिनों में अपनी सहज
ण किसी पुरुष के पीछे अपना पूरा जीवन बर्बाद कर डालने के
हैं और परिस्थितियों के थपेड़े में आगे बढ़ती रहती हैं।]

ा करते ही) देखिए···अंजो अभी तक नहीं आई।
ता हुआ) कोई बात नहीं···आ ही रही होगी···अभी तो टहलने-
···लोग पहाड़ पर आते इसलिए ही हैं।
व !
ा अंजो को स्वयं टहलाऊँगा।···वह कहती थी कि पापा !···
ीवन बहुत पसंद है, आपका सीमित···हवाई दृष्टिकोण नहीं···।
ी, क्योंकि उसे आज के जीवन में रहना है।
ा पाते ही) तो पहले आप वास्तविक जीवन में उतरिए।

राजीव : (रुककर) मुझे हटाओ नीरा···(रुककर) बैठो···।

[दायें कोच पर नीरा और सामने राजीव बैठते हैं।]

राजीव : तुम्हें अंजो का कुछ पता लगा !

नीरा : आप तो कह रहे हैं कि वह अभी आ रही है···फिर !

राजीव : यह मैं कहाँ कह रहा हूँ···? यह तो मेरा विश्वास कह रहा है। मैं तो तुमसे पूछ रहा हूँ कि तुम्हें कुछ पता है !

नीरा : मेरे ब्रदर से तो इतना पता चला है कि सुबह वे लोग यहाँ से सीधे जिमखाना स्केटिंग ग्राउण्ड गए थे और ग्यारह बजे तक वहाँ स्केटिंग होती रही।

राजीव : और मेरी अंजो···किसी सुरक्षित जगह पर बैठकर सिर्फ़ तमाशा ही देख रही थी न !

नीरा : और कर ही क्या सकती थी ! इतना ही क्या कम है !

राजीव : खैर, हटाओ यह उसका बचपना है ! फिर···!

नीरा : इसके बाद वे लोग सिधा ग्लेशियर भी गए थे···फिर पता नहीं···।

राजीव : (जैसे उसकी साँस फूल गई हो, उठकर खिड़की से देखता हुआ) कोई बात नहीं···वह जल्दी ही आ रही होगी।

नीरा : ईश्वर करे वह जल्दी आ जाए···लेकिन आप तब तक कुछ खा-पी लीजिए।

राजीव : (कोच के पास आकर) मेरी चिंता न करो नीरा !

नीरा : क्यों···फिर मैं किसकी चिन्ता करूँ···व्यक्ति ही की तो चिन्ता की जाती है।

राजीव : लेकिन मेरे ऐसे व्यक्ति के पीछे चिन्ता करने से कुछ नहीं होगा क्योंकि मैं स्थिर हूँ, भावुक और कमजोर, और कभी-कभी मैं व्यक्ति से भी ऊपर उठ कर भावना की इतनी पूजा करने लगता हूँ कि कोई हठयोगी क्या करेगा ?

नीरा : यही तो आपका सौंदर्य है।

राजीव : (सूखी, लम्बी हँसी के बाद) खूब, खूब, वाह तुम भी कितनी भोली हो,···तुम्हें सत्य और मरीचिका का ज्ञान नहीं।

नीरा : खैर,···आप मेरी बात छोड़िए···मैं आप से हाथ जोड़ती हूँ, आप कम से कम एक कप चाय पी लीजिए। (पुकार कर) सामू !

राजीव : (व्यग्रता से) देखो, नीरा, हठ न करो···मेरा प्रातःकाल का व्रत था कि मैं एक नया चित्र आरम्भ करूँ। लेकिन अंजो चली गई···और मेरा चित्र आरंभ न हो सका (रुककर) मुझे मेरे व्रत की भी तो चिन्ता है !

नीरा : अवश्य···क्यों नहीं,···(रुककर) इस वर्ष आप कौन सा चित्र बनाइएगा ?

राजीव : (तड़प कर) पूछो न नीरा, इस वर्ष मुझे वह चित्र बनाना है···जो मेरी साधना का गौरव होगा···और युग के शव की सबसे ऊँची समाधि होगी।

नीरा : मेरे तन, मन से उसकी मंगल कामना···राजीव बाबू !

राजीव : (भावविह्वल हो अपने आसन पर बैठकर टेबुल खोलता हुआ) युग के शव की

सबसे ऊँची समाधि होगी,···इसे सुनकर तुम्हारी आत्मा में कोई झनझनाहट नहीं हुई नीरा !

नीरा : मेरा दिल भर आया है।

राजीव : तब तुममें कला की परख है।

[राजीव टेबुल में से वही पत्थर का टुकड़ा और एक डिब्बी निकालता है।]

राजीव : (दिखलाता हुआ) नीरा, देखो···यह पत्थर का एक टुकड़ा है, और इस डिब्बी में एक···!

नीरा : इसमें एक क्या !

राजीव : समझो कि इसमें भी एक पत्थर का फूल है,···इन्हीं दोनों का चित्र मुझे बनाना है।

[नीरा अपूर्व जिज्ञासा से चुप है।]

राजीव : चुप क्यों हो ? नहीं समझ रही हो मेरे चित्र के रूपक को !

नीरा : नहीं !

राजीव : तब इसकी पृष्ठभूमि में तुम क्या जा सकोगी !

[नीरा चुप है।]

राजीव : कोई बात नहीं, मैं तुम्हें इसकी पृष्ठभूमि बताऊँगा।

नीरा : यह मेरा सौभाग्य होगा।

राजीव : (अपने आसन से उठकर टहलता हुआ) आज से पाँच वर्ष पहले इसी पहाड़ पर एक अपूर्व परिवार आया था। पति तीस वर्ष का रूखापन नवयुवक, कई मिलों और कारखानों का मालिक था और उसकी पत्नी जो उसे प्रेम-विवाह के रूप में मिली थी, अनुपम रूपवती और शिष्ट थी। दोनों इस पहाड़ के सबसे आलीशान बँगले में रहते थे। परस्पर उन दोनों को देखने से लगता था कि एक गंधर्व है एक अप्सरा। और दोनों संसार की आँखों में एक-दूसरे को प्यार भी करते थे। पति इस पहाड़ की घाटियों में स्वयं घूम-घूम कर फूल चुनता था और हर सुबह को वह फूलों के ढेर को अपने सच्चे प्रेम के सौरभ में बाँधकर उसे भेंट करता था, और पत्नी··· (जोर से रूखी हँसी हँसकर) और पत्नी···!

नीरा : हाँ-हाँ बताइए और पत्नी !

राजीव : (हँसता हुआ) विश्वास करोगी नीरा ! और पत्नी, उसकी प्रेमिका हर शाम चाय के प्याले में अपनी लाल मुस्कराहटों के साथ अपने प्रेमी पति को 'स्लो प्वाइज़निंग' (Slow poisoning) करती थी।

नीरा : (चौंककर) आह ! आप यह क्या कह रहे हैं ?

राजीव : चौंको नहीं, समझो इसे, भावों की मौत की कहानी कह रहा हूँ।

राजीव : (चौंककर फिर अपनी चिंता पर आता हुआ) मेरी बेटी आ रही है।

नीरा : सच,···सच आ रही है···मुझे तो नहीं लगता।

राजीव : (बढ़कर पुकारता हुआ) अंजो बेटी !

[सामू चिन्तित मुद्रा में प्रवेश करता है।]

सामू : (प्रवेश करते ही) बाबू जी, बेटी का कुछ भी पता बँगला देखता हुआ लम्बी सड़क को पार करके च नहीं।

राजीव : यह मुझसे क्यों कह रहा है तू ? बोल मैं क्या क

[सामू पलकें गिरा लेता है, जैसे वह रो रहा है।]

राजीव : ओह ! सामू तू रोने लगा, अच्छा परेशान मत

नीरा : जी !

राजीव : चलो हम लोग अंजो को ढूँढ़ लाएँ···शायद वह उसे मना लाएँ···उठो !

[दोनों तेजी से बाहर निकल जाते हैं, सामू क्षणभर भीतर चला जाता है, थोड़ी देर तक स्टेज सूना रहत अँधेरे में किसी के जोर से हँसने की आवाज उभरत हुई कमरे के समीप चली आती है। सामू भीतर से है।]

सामू : (सशंकित स्वर में) यह बाहर कौन हँस रहा

[सहसा मदन के साथ मुस्कराती हुई अंजो का प्रवेश

अंजो : (प्रवेश करते ही) ओह, सामू डर गए क्या ? हमी

सामू : (चिंतायुक्त प्रसन्नता से) ओह, अंजो बेटी ! कहाँ

अंजो : (बीच ही में) क्यों क्या हुआ, पापा जी कहाँ हैं ?

सामू : नीरा जी के साथ तुझे ढूँढ़ने गए हैं।

[दोनों आमने-सामने कोच पर बैठ जाते हैं।]

अंजो : सामू ! जा दो कप चाय ला।

[सामू का प्रस्थान]

अंजो : पापा नीरा देवी के साथ मुझे ढूँढ़ने गए हैं। (दोनों नीरा जी को जानते हैं ?

मदन : जी, मैं तो खूब जानता हूँ (हँसता हुआ) नीरा औ बुरी तरह से प्रेम।

अंजो : (आश्चर्य से) सच !

मदन : और क्या, ये नैतिकवादी दूसरों को ही ऊँची-ऊँची

होगी,···इसे सुनकर तुम्हारी आत्मा में कोई झनझनाहट नहीं

या है।
की परख है।
वही पत्थर का टुकड़ा और एक डिब्बी निकालता है।]
ा) नीरा, देखो···यह पत्थर का एक टुकड़ा है, और इस

में भी एक पत्थर का फूल है,···इन्हीं दोनों का चित्र मुझे

सा से चुप है।]
नहीं समझ रही हो मेरे चित्र के रूपक को !

ठभूमि में तुम क्या जा सकोगी !

ं, मैं तुम्हें इसकी पृष्ठभूमि बताऊँगा।
य होगा।
से उठकर टहलता हुआ) आज से पाँच वर्ष पहले इसी पहाड़
वार आया था। पति तीस वर्ष का रूखापन नवयुवक, कई मिलों
का मालिक था और उसकी पत्नी जो उसे प्रेम-विवाह के रूप में
रूपवती और शिष्ट थी। दोनों इस पहाड़ के सबसे आलीशान
परस्पर उन दोनों को देखने से लगता था कि एक गंधर्व है एक
नों संसार की आँखों में एक-दूसरे को प्यार भी करते थे। पति
टियों में स्वयं घूम-घूम कर फूल चुनता था और हर सुबह को वह
अपने सच्चे प्रेम के सौरभ में बाँधकर उसे भेंट करता था, और
से रूखी हँसी हँसकर) और पत्नी···!
और पत्नी !
) विश्वास करोगी नीरा ! और पत्नी, उसकी प्रेमिका हर शाम
में अपनी लाल मुस्कराहटों के साथ अपने प्रेमी पति को 'स्लो
low poisoning) करती थी।
वाह ! आप यह क्या कह रहे हैं ?
समझो इसे, भावों की मौत की कहानी कह रहा हूँ।
फिर अपनी चिंता पर आता हुआ) मेरी बेटी आ रही है।

नीरा : सच,···सच आ रही है···मुझे तो नहीं लगता।

राजीव : (**बढ़कर पुकारता हुआ**) अंजो बेटी !

[सामू चिन्तित मुद्रा में प्रवेश करता है।]

सामू : (**प्रवेश करते ही**) बाबू जी, बेटी का कुछ भी पता नहीं चला। मैं मदन बाबू का बँगला देखता हुआ लम्बी सड़क को पार करके चला आ रहा हूँ, पर कोई पता नहीं।

राजीव : यह मुझसे क्यों कह रहा है तू ? बोल मैं क्या करूँ···बता !

[सामू पलकें गिरा लेता है, जैसे वह रो रहा है।]

राजीव : ओह ! सामू तू रोने लगा, अच्छा परेशान मत हो। (**पुकार कर**) नीरा ?

नीरा : जी !

राजीव : चलो हम लोग अंजो को ढूँढ़ लाएँ···शायद वह रूठकर कहीं बैठी हो। चलो उसे मना लाएँ···उठो !

[दोनों तेजी से बाहर निकल जाते हैं, सामू क्षणभर वहीं खड़ा रहता है और फिर भीतर चला जाता है, थोड़ी देर तक स्टेज सूना रहता है। सहसा बँगले के सामने अँधेरे में किसी के जोर से हँसने की आवाज़ उभरती है और वही हँसी, बढ़ती हुई कमरे के समीप चली आती है। सामू भीतर से दौड़ता हुआ कमरे में आता है।]

सामू : (**सशंकित स्वर में**) यह बाहर कौन हँस रहा है ?

[सहसा मदन के साथ मुस्कराती हुई अंजो का प्रवेश।]

अंजो : (**प्रवेश करते ही**) ओह, सामू डर गए क्या ? हमीं लोग तो हैं।

सामू : (**चिंतायुक्त प्रसन्नता से**) ओह, अंजो बेटी ! कहाँ थी तू अब तक ?

अंजो : (**बीच ही में**) क्यों क्या हुआ, पापा जी कहाँ हैं ?

सामू : नीरा जी के साथ तुझे ढूँढ़ने गए हैं।

[दोनों आमने-सामने कोच पर बैठ जाते हैं।]

अंजो : सामू ! जा दो कप चाय ला।

[सामू का प्रस्थान]

अंजो : पापा नीरा देवी के साथ मुझे ढूँढ़ने गए हैं। (**दोनों हँसते हैं**) मदन बाबू, आप नीरा जी को जानते हैं ?

मदन : जी, मैं तो खूब जानता हूँ (**हँसता हुआ**) नीरा और राजीव बाबू से प्रेम है··· बुरी तरह से प्रेम।

अंजो : (**आश्चर्य से**) सच !

मदन : और क्या, ये नैतिकवादी दूसरों को ही ऊँची-ऊँची शिक्षाएँ देते हैं, सीमाओं में

जकड़ते हैं···स्वयं तो (**हँसता है**)

अंजो : यह आप क्या कह रहे हैं ?

मदन : मैं सच कह रहा हूँ। राजो बाबू ने तो मुझसे सैकड़ों बार कहा है कि बीच में अगर अंजो बेटी न होती तो मैं नीरा से विवाह कर लेता।

अंजो (**आश्चर्यचकित हो**) ओह-ओ···सच !

मदन : सच···देख लेना···तुम्हारे हटते ही यह विवाह हो जाएगा।

अंजो : अरे, पापा ने मुझे इसका कभी पता तक न दिया !

मदन : तुम्हें क्या पता देते ? साधु अपनी लड़की को संन्यासी बनाता है।···तुमने केवल हिन्दी पढ़ी है, अगर अंग्रेज़ी पढ़ी होती तो पता चलता कि अंग्रेज़ी में एक कवि शेली है। उसने लिखा है, यह सारा विश्व प्रेममय है। इसके अणु-अणु एक-दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। इससे कोई बाहर नहीं है और इससे बाहर रहना महापाप है। तब हम और तुम···!

[सहसा दो कप चाय के साथ सामू दिखाई पड़ता है और मदन की ज़बान जहाँ थी वहीं रुक जाती है। सामू एक छोटे से टेबुल पर चाय रख देता है।]

अंजो : (**चाय उठाती हुई**) सामू ! जा पापा को बुला ला।

मदन : (**एकाएक डरकर**) देखो अभी नहीं, मैं चाय खत्म कर लूं तब ?

अंजो : अच्छी बात है, सामू, दो मिनट रुक जा।

[सामू अन्दर चला जाता है।]

मदन : (**चाय की लम्बी घूंट लेकर स्फुट स्वर से**) अंजलि !···जिस बात के लिए मैं शाम ही से तुमसे कह रहा हूँ, उसका कितना अच्छा मौका है। हम लोग इसी रात में निकल चलें।

[अंजो चुप है।]

मदन : बोलो अंजलि, क्या सोच रही हो, मुझे भी बताओ !

अंजो : मैं यही सोच रही हूँ कि इसकी आवश्यकता ही क्या ? पापा मेरी इच्छा क्या, मेरे संकेत मात्र को भी कभी नहीं टाल सकते···बस हम लोगों की शादी हो जाएगी।

मदन : फिर वही बात, मैं कितनी मर्तबा कहूँ, वे मेरे साथ तुम्हारी शादी कभी नहीं करेंगे···वे तुम्हें संन्यासी बनाएँगे···संन्यासी !

अंजो : यह कैसे ?

मदन : मुझे मालूम है···वे तुम्हारी शादी एक हवाखोर के साथ करेंगे।

अंजो : (**जिज्ञासा से**) हवाखोर क्या ?

मदन : हवाखोर नहीं जानती ? (**हँसता है**) हवाखोर ! एक दुबला-पतला आदमी··· आदर्शवादी···सिर्फ लेटे-लेटे हवा में उड़ने वाला जिसके रोने-हँसने का कभी पता नहीं; यही है हवाखोर···जिन्दगी से दूर भागा हुआ कमजोर एकान्तवासी···।

अंजो : (**पीड़ा से तड़पकर**) आह ! ऐसे व्यक्ति से तो मुझे दिली नफ़रत है।

मदन : फिर सोच लो अपनी किस्मत को···तुम्हें जि

अंजो : मुझे ज़िन्दगी पसन्द है मदन बाबू ! सुबह से किसी कुएँ से बाहर निकल कर आनन्द की क्य

मदन : फिर तय कर लो, समय नहीं है, हमेशा के चलो, रंगीन दुनिया में। हम लोग सीधे यहाँ फिर हवाई जहाज़ से विदेश चलेंगे, स्विटजरल फिर फ्रांस चलेंगे, अंगूरों के देश में।

सामू : (**दरवाज़े पर आता हुआ**) अब मैं जा रहा हूं

[अंजो पागलों की स्थिति में चुप रहती है, लेकि

मदन : (**उठकर**) बोलो अंजो, वक्त बिल्कुल नहीं है

अंजो : (**चिन्ता से**) मैं बिना अपने पापा के क्या कह

मदन : (**बेफ़िक्री से आगे बढ़ता हुआ**) भई, तुम्हारी

अंजो : (**उठकर याचना से**) मदन बाबू···देखिए, स्व अभी अपने पापा से बातें करूँगी···अगर चे···

मदन : (**बीच ही में**) भई, अगर-मगर कुछ नहीं···ब लो फिर धरती अपनी आकाश अपना···!

[अंजो सिर झुकाकर चुप है।]

मदन : चुप होने से काम नहीं चलेगा···जल्दी से कुछ

[अंजो चुप है, उसका ललाट एकाएक पसीने से हैं और जैसे कुछ भी नहीं सूझ रहा है।]

मदन : (**अंजो को पकड़कर**) बोलो क्या फैसला किया

अंजो : कुछ नहीं···मेरा सर बुरी तरह चक्कर खा रहा

[घूमकर अपने कोच पर सर थामकर बैठ जाती है

मदन : (**सामने बैठकर व्यग्रता से**) फिर इस समय मेरे

अंजो : (**पीड़ा से**) मेरा सर फटा जा रहा है मदन बाबू

मदन : सब ठीक हो जाएगा, उसकी चिन्ता न करो। चुप हो···फिर कैसे काम चलेगा !

अंजो : मदन बाबू रूठिएगा नहीं···मैं आपके हाथ जोड़ समय आप मुझे अकेली छोड़ दीजिए।

मदन : (**प्यार से हँसकर**) तू कितनी भोली है मेरी अंज अगर हम लोग आज ही रात को यहाँ से नहीं निकल जाएगी। सारा नक्शा ही बदल जाएगा।

ं तो (हँसता है)
कह रहे हैं ?
ा हूँ। राजी बाबू ने तो मुझसे सैकड़ों बार कहा है कि बीच में
न होती तो मैं नीरा से विवाह कर लेता।
हो) ओह-ओ···सच !
ा···तुम्हारे हटते ही यह विवाह हो जाएगा।
ुझे इसका कभी पता तक न दिया !
ा देते ? साधु अपनी लड़की को संन्यासी बनाता है।···तुमने केवल
गर अंग्रेज़ी पढ़ी होती तो पता चलता कि अंग्रेज़ी में एक कवि शेली
ा है, यह सारा विश्व प्रेममय है। इसके अणु-अणु एक-दूसरे से प्रेम
से कोई बाहर नहीं है और इससे बाहर रहना महापाप है। तब हम

चाय के साथ सामू दिखाई पड़ता है और मदन की जबान जहाँ थी
है। सामू एक छोटे से टेबुल पर चाय रख देता है।]
ो हुई) सामू ! जा पापा को बुला ला।
रकर) देखो अभी नहीं, मैं चाय खत्म कर लूं तब ?
है, सामू, दो मिनट रुक जा।
ला जाता है।]
म्बी घूंट लेकर स्फुट स्वर से) अंजलि !···जिस बात के लिए मैं
से कह रहा हूँ, उसका कितना अच्छा मौका है। हम लोग इसी रात
।
।]
न, क्या सोच रही हो, मुझे भी बताओ !
रही हूँ कि इसकी आवश्यकता ही क्या ? पापा मेरी इच्छा क्या, मेरे
ी भी कभी नहीं टाल सकते···बस हम लोगों की शादी हो जाएगी।
त, मैं कितनी मर्तबा कहूँ, वे मेरे साथ तुम्हारी शादी कभी नहीं
हैं संन्यासी बनाएँगे···संन्यासी !

है···वे तुम्हारी शादी एक हवाखोर के साथ करेंगे।
से) हवाखोर क्या ?
हीं जानती ? (हँसता है) हवाखोर ! एक दुबला-पतला आदमी···
'सिर्फ लेटे-लेटे हवा में उड़ने वाला जिसके रोने-हँसने का कभी पता
हवाखोर···जिन्दगी से दूर भागा हुआ कमजोर एकान्तवासी···।
तड़पकर) आह ! ऐसे व्यक्ति से तो मुझे दिली नफ़रत है।

मदन : फिर सोच लो अपनी किस्मत को···तुम्हें ज़िन्दगी पसन्द है या हवा ?

अंजो : मुझे ज़िन्दगी पसन्द है मदन बाबू ! सुबह से इस समय तक मुझे लगा है कि मैं किसी कुएँ से बाहर निकल कर आनन्द की क्यारी में घूमती रही।

मदन : फिर तय कर लो, समय नहीं है, हमेशा के लिए इस अंधकूप से बाहर निकल चलो, रंगीन दुनिया में। हम लोग सीधे यहाँ से कश्मीर चलेंगे, केशर के देश में, फिर हवाई जहाज़ से विदेश चलेंगे, स्विटजरलैंड—प्यार भरे स्वप्नों के देश में, फिर फ्रांस चलेंगे, अंगूरों के देश में।

सामू : (दरवाज़े पर आता हुआ) अब मैं जा रहा हूँ अंजो बेटी !

[अंजो पागलों की स्थिति में चुप रहती है, लेकिन सामू बाहर जाता है।]

मदन : (उठकर) बोलो अंजो, वक्त बिल्कुल नहीं है।

अंजो : (चिन्ता से) मैं बिना अपने पापा के क्या कह सकती हूँ !

मदन : (बेफ़िक्री से आगे बढ़ता हुआ) भई, तुम्हारी मर्जी···मैं तो चला।

अंजो : (उठकर याचना से) मदन बाबू···देखिए, रूठिए नहीं···मेरी भी तो सुनिए, मैं अभी अपने पापा से बातें करूँगी···अगर चे···

मदन : (बीच ही में) भई, अगर-मगर कुछ नहीं···बस हिम्मत से एक बार कमर बाँध लो फिर धरती अपनी आकाश अपना···!

[अंजो सिर झुकाकर चुप है।]

मदन : चुप होने से काम नहीं चलेगा···जल्दी से कुछ फैसला कर लो···।

[अंजो चुप है, उसका ललाट एकाएक पसीने से तर हो आया है, आँखें जल रही हैं और जैसे कुछ भी नहीं सूझ रहा है।]

मदन : (अंजो को पकड़कर) बोलो क्या फैसला किया ?

अंजो : कुछ नहीं···मेरा सर बुरी तरह चक्कर खा रहा है···

[घूमकर अपने कोच पर सर थामकर बैठ जाती है।]

मदन : (सामने बैठकर व्यग्रता से) फिर इस समय मेरे दिमाग से काम लो।

अंजो : (पीड़ा से) मेरा सर फटा जा रहा है मदन बाबू !

मदन : सब ठीक हो जाएगा, उसकी चिन्ता न करो। बोलो···अरे, तुम तो एकदम से चुप हो···फिर कैसे काम चलेगा !

अंजो : मदन बाबू रूठिएगा नहीं···मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ, आप कल आइएगा, इस समय आप मुझे अकेली छोड़ दीजिए।

मदन : (प्यार से हँसकर) तू कितनी भोली है मेरी अंजो ! तुझे शायद पता नहीं कि अगर हम लोग आज ही रात को यहाँ से नहीं निकल जाते तो परिस्थिति उल्टी हो जाएगी। सारा नक्शा ही बदल जाएगा।

अंजो : (**पीड़ा से**) नहीं मदन बाबू ! (**रुककर**) आह, मेरे अच्छे पापा, अब मैं क्या करूँ ?

मदन : (**स्थिरता से**) अगर तुम्हें इस अंधकूप से निकलना है, किसी हवाखोर के हाथ से बचना है, तो तुम्हें मेरे प्यार की सौगन्ध मेरी बात मानो।

[अंजो चुप है।]

मदन : तुमने खाना-वाना खा ही लिया है, बस तुम्हें अपने पापा से मिलना है। मिल लेना, लेकिन उन्हें इस तरह की कोई भी आशंका न होने पाए। अभी थोड़ी ही देर में मैं बाहर ढलान पर चढ़ता हुआ अपनी वायलिन बजाऊँगा और तुम्हारी राह देखूँगा···बस···।

[जाता है।]

अंजो : (**तेजी से उसकी ओर बढ़कर**) मदन ! ऐसा न करो···मेरे पापा···आह !

[अंजो दौड़कर खिड़की के बाहर देखती है और लौटकर आह भरती हुई कोच पर औंधी गिर पड़ती है और कुछ क्षणों तक स्फुट स्वर में 'मदन तू क्या कहता है ?··· मेरे पापा' आदि कहती हुई सिसकती रहती है। सहसा राजीव, नीरा और सामू के आने की आहट होती है। अंजो शंका और लज्जा से सिमट कर बैठ जाती है और अपने को छिपाती हुई मुस्कराने का प्रयत्न करती है। राजीव और नीरा प्रवेश करते हैं। अंजो मुकराती हुई चुपचाप उन्हें देखते ही खड़ी हो जाती है।]

राजीव : (**देखते ही दौड़कर अंजो को स्नेह से अपने अंक में लेकर**) अंजो ! मेरी बेटी···!

[अंजो चुप है, यद्यपि उसने मुस्कराकर कुछ बोलने का असफल प्रयत्न किया है।]

नीरा : अंजो ! भई वाह···सुबह से इतनी देर तक कहीं घूमा जाता है !

राजीव : (**अंजो को छोड़ता हुआ**) कुछ नहीं नीरा, सब ठीक है (**दुलार से**) आ बेटी चल, तुझे बहुत भूख लगी होगी।

अंजो : (**पापा के साथ कोच पर बैठती हुई**) मैंने पापा जी, खाना खा लिया है।

[राजीव अपलक अंजो को देखने लगता है।]

राजीव : (**एकाएक चौंककर**) बेटी !

अंजो : क्या पापा जी !

राजीव : तू रो रही थी बेटी ?

अंजो : (**छिपाती हुई**) नहीं तो पापा जी, बिल्कुल नहीं।

राजीव : लेकिन मेरा दिल तो कह रहा है···खैर, (**उठता हुआ अंजो को साथ लेकर**) अच्छा चल, कुछ खा लें।

[अंजो चुप है।]

राजीव : (**दुलार से**) पगली कहीं की, चल मेरे साथ भी खाऊँगा ?

नीरा : तुम्हें आज क्या हो गया है···अंजो !

राजीव : (**बीच ही में**) कुछ नहीं नीरा, मेरी बेटी को इ बेटी रूठी थोड़े ही है, अभी मेरे साथ खाएगी।(हँ पहले इसी तरह बचपना दिखाती है।

अंजो : नहीं पापा जी, सच मेरा पेट बिल्कुल भरा है।

[सामू एक थाली में खाना ले आता है और बीच के

राजीव : ले बेटी, खाना आ गया, चल खा लें···फिर बातें

[नीरा खड़ी रहती है, राजीव अंजो को लेकर नीचे उनके बीच रखता है।]

राजीव : (**आग्रह से अंजो के मुंह में डालता हुआ**) ले बे बेटी !

[और स्वयं खाने लगता है।]

राजीव : आज मदन के साथ तू कहाँ-कहाँ टहल आई ?

[अंजो चुप है।]

राजीव : अरी पगली ! बोलती क्यों नहीं ! बोल, मुझे न

अंजो : इस पहाड़ की सब अच्छी-अच्छी जगहें।

राजीव : अरे वाह, खूब !

अंजो : पापा, आपने तो मुझे अंधकूप में रख छोड़ा था।

राजीव : (**खाना बंद करके**) अच्छा, तो आज पागल मद दुनिया के काँटों में उलझा ही दिया !

अंजो : काँटों में···!

राजीव : हूँ !

अंजो : लेकिन पापा जी, आप ही तो कहते थे कि बिना क क्या ?

राजीव : (**हँसता हुआ**) लेकिन बेटी ये ऐसे काँटे हैं कि नहीं। इन काँटों में विष होते हैं···विष; और जिस प्राकृतिक सत्य है।

अंजो : (**बीच ही में**) मदन बाबू सच कहते हैं पापा, आप तो

राजीव : तो मदन की सारी बातों पर तुझे विश्वास है ?

[अंजो चुप है।]

हीं मदन बाबू ! (रुककर) आह, मेरे अच्छे पापा, अब मैं क्या

अगर तुम्हें इस अंधकूप से निकलना है, किसी हवाखोर के हाथ
तुम्हें मेरे प्यार की सौगन्ध मेरी बात मानो।

ाना खा ही लिया है, बस तुम्हें अपने पापा से मिलना है। मिल
हें इस तरह की कोई भी आशंका न होने पाए। अभी थोड़ी ही देर
न पर चढ़ता हुआ अपनी वायलिन बजाऊँगा और तुम्हारी राह
।

ी ओर बढ़कर) मदन ! ऐसा न करो···मेरे पापा···आह !
खिड़की के बाहर देखती है और लौटकर आह भरती हुई कोच पर
है और कुछ क्षणों तक स्फुट स्वर में 'मदन तू क्या कहता है ?···
कहती हुई सिसकती रहती है। सहसा राजीव, नीरा और सामू के
होती है। अंजो शंका और लज्जा से सिमट कर बैठ जाती है और
ाती हुई मुस्कराने का प्रयत्न करती है। राजीव और नीरा प्रवेश
मुकराती हुई चुपचाप उन्हें देखते ही खड़ी हो जाती है।]

दौड़कर अंजो को स्नेह से अपने अंक में लेकर) अंजो ! मेरी

यद्यपि उसने मुस्कराकर कुछ बोलने का असफल प्रयत्न किया है।]
वाह···सुबह से इतनी देर तक कहीं घूमा जाता है !
छोड़ता हुआ) कुछ नहीं नीरा, सब ठीक है (दुलार से) आ बेटी
भूख लगी होगी।
ाथ कोच पर बैठती हुई) मैंने पापा जी, खाना खा लिया है।
क अंजो को देखने लगता है।]
चौंककर) बेटी !
ी !
ा थी बेटी ?
ई) नहीं तो पापा जी, बिल्कुल नहीं।
रा दिल तो कह रहा है···खैर, (उठता हुआ अंजो को साथ लेकर)
कुछ खा लें।
।]

राजीव : (दुलार से) पगली कहीं की, चल मेरे साथ भी खा ले। नहीं तो मैं अकेले कैसे खाऊँगा ?

नीरा : तुम्हें आज क्या हो गया है···अंजो !

राजीव : (बीच ही में) कुछ नहीं नीरा, मेरी बेटी को इतना न डाँट (दुलार से) मेरी बेटी रूठी थोड़े ही है, अभी मेरे साथ खाएगी।(हँसकर) यह तो हमेशा खाने के पहले इसी तरह बचपना दिखाती है।

अंजो : नहीं पापा जी, सच मेरा पेट बिल्कुल भरा है।

[सामू एक थाली में खाना ले आता है और बीच के टेबुल पर रख देता है।]

राजीव : ले बेटी, खाना आ गया, चल खा लें···फिर बातें करेंगे।

[नीरा खड़ी रहती है, राजीव अंजो को लेकर नीचे बैठ जाता है, सामू थाली को उनके बीच रखता है।]

राजीव : (आग्रह से अंजो के मुँह में डालता हुआ) ले बेटी खा ले, बहुत अच्छी है मेरी बेटी !

[और स्वयं खाने लगता है।]

राजीव : आज मदन के साथ तू कहाँ-कहाँ टहल आई ?

[अंजो चुप है।]

राजीव : अरी पगली ! बोलती क्यों नहीं ! बोल, मुझे नहीं बताएगी क्या ?

अंजो : इस पहाड़ की सब अच्छी-अच्छी जगहें।

राजीव : अरे वाह, खूब !

अंजो : पापा, आपने तो मुझे अंधकूप में रख छोड़ा था।

राजीव : (खाना बंद करके) अच्छा, तो आज पागल मदन ने मेरी भोली हिरनी को दुनिया के काँटों में उलझा ही दिया !

अंजो : काँटों में···!

राजीव : हूँ !

अंजो : लेकिन पापा जी, आप ही तो कहते थे कि बिना काँटों के फूल की अनुभूति ही क्या ?

राजीव : (हँसता हुआ) लेकिन बेटी ये ऐसे काँटे हैं कि इनके बीच फूल खिलते ही नहीं। इन काँटों में विष होते हैं···विष; और जिसको मैं कह रहा था वह तो प्राकृतिक सत्य है।

अंजो : (बीच ही में) मदन बाबू सच कहते हैं पापा, आप तो हरदम ऊँची बातें करते हैं।

राजीव : तो मदन की सारी बातों पर तुझे विश्वास है ?

[अंजो चुप है।]

नीरा : इसलिए कि अंजलि अभी निरी बच्ची है। खैर, (**जाती हुई**) अच्छा राजी बाबू ! अब मैं चली, सुबह फिर भेंट होगी (**जाती हुई**) अच्छा नमस्ते।

[नीरा का प्रस्थान, राजीव खाने की थाली को एक किनारे रख देता है और अंजो के साथ आमने-सामने कोच पर बैठ जाता है।]

अंजो : मदन बाबू के प्रति आपके क्या विचार हैं पापा जी ?

राजीव : मदन के व्यक्तित्व में मुझसे अधिक प्रभाव डालने की क्षमता है।

अंजो : आपसे भी अधिक ?

राजीव : हूँ···क्योंकि जो अंजो जन्म से आज तक मेरी गोद में पली, मेरे प्राणों से जिसके साँस बँधे थे, आज मैं देख रहा हूँ कि उस पर मेरे दृष्टिकोण और मान्यताओं का प्रभाव मदन के प्रभाव के आगे कुछ नहीं है। (**रुककर**) लेकिन वह अच्छा नहीं है बेटी !

अंजो : यह कैसे ?

राजीव : क्योंकि वह जो कुछ है, वह बाहरी है, वह नीति जानता है इसलिए वह झूठा है, उसमें चरित्र नहीं इसीलिए वह आकर्षक है।

अंजो : लेकिन मदन बाबू की धारणा है कि इस दुनिया में प्रभुत्व पाने के लिए व्यावहारिकता आवश्यक है।

राजीव : तो झूठ बोलना व्यावहारिकता के अन्तर्गत है ?

अंजो : लेकिन वे हम लोगों के साथ कभी झूठ नहीं बोल सकते !

राजीव : क्यों नहीं ! हम तुम भी तो उसकी दुनिया में हैं···। बेटी, मैं सच कहता हूँ वह झूठा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देख ले कि मदन ने आज सुबह तेरे चित्र पर यह पुष्पहार चढ़ाया है, लेकिन पूछने पर किस सफ़ाई के साथ झूठ बोल गया कि यह मेरा नहीं है।

अंजो : वे आपसे डरते हैं।

राजीव : पूजा में डर का स्थान कहाँ ? (**रुककर कड़े स्वर में**) बेटी, खबरदार मदन शैतान है, उसके पास जादू के पंजे हैं, जादू के ! वह कमीना है, इस खूनी पंजे को मेरी मासूम अंजो पर नहीं चला सकता। (**रुककर**) अरे ! नहीं···नहीं, बेटी मुझे माफ़ कर दे···मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए। मुझे अपनी बेटी पर विश्वास है··· मुझे माफ़ करना बेटी !

अंजो : (**चीखकर**) पापा !

राजीव : (**भावोन्मेष से**) बेटी, आज तू क्या सोच रही है, मुझे बता !

अंजो : कुछ नहीं।

राजीव : नहीं बताएगी ? (**प्यार से**) अरे बता दे बेटी !

[अंजो चुप है।]

राजीव : मुझे मालूम हो रहा है बेटी, तू मुझसे कुछ छिपा रही है। मैंने अपनी साँसों से तुझे जिलाया है। मैं तेरी महान् आत्मा में पैठा हूँ। में अन्तर्द्वन्द्व के शोले काँप रहे हैं, तेरे पवित्र पैरों में पर रही है···लेकिन फिर भी मुझे तुझ पर अटूट विश्वास

[चिंता से बढ़कर खिड़की से बाहर देखने लगता है।

अंजो : (**रुँधे स्वर में**) पापा जी।

राजीव : (**घूमकर**) हाँ-हाँ, बोल बेटी !

[अंजो दुस्साहस से रुक जाती है और क्षण-भर के अ वायलिन बजने की मीठी आवाज़ आती है और एकाए भय और पीड़ा से काँपने लगती है।]

राजीव : (**आश्चर्य से अंजो को सम्हालता हुआ**) बेटी, क्य काँपने क्यों लगी ?

अंजो : (**स्फुट स्वर से**) पापा, मुझे सम्हालिए।

राजीव : (**कोच पर बिठाता हुआ आश्चर्य से**) क्या हो गय

अंजो : (**अपने को सम्हालती हुई**) कोई बात नहीं पापा, कु

राजीव : (**बहुत परेशानी से**) नहीं···नहीं···तू मुझसे कु सौगन्ध, तू बता···मदन ने आज तुझे कुछ खिला-पिला

अंजो : नहीं, कुछ नहीं ?

राजीव : (**पागल-सा**) मैं मान नहीं सकता···बेटी, तू साफ़ इसी खिड़की से कूदकर अपनी जान दे दूंगा।

अंजो : (**पीड़ा से चीखकर पापा को पकड़ती हुई**) नहीं पापा

राजीव : फिर क्या बात है बेटी ?

अंजो : (**फूलती हुई साँसों के बीच**) मुझे इस बजती हुई वा रहा है पापा ! मैं डर रही हूँ !

राजीव : (**चिंता से खिड़की की ओर घूमकर**) अरे···यह बीन बजा रहा है (**पुकारकर**) सामू !

अंजो : (**उठती हुई आग्रहपूर्ण विनय से**) नहीं पापा, कुछ नहीं मुझे इससे नहीं डर लग रहा है, मैं स्वयं अपने से डर कर बात बदलती हुई) पापा जी, आपने अब तक मुझसे

राजीव : क्या कह रही है तू बेटी ? क्या कह रही है तू ?

अंजो : (**काँपती रहती है**) मदन ने मुझे बताया है कि नी और नीरा ··!

राजीव : हाँ-हाँ, बोल बेटी (**आश्चर्य से**) लेकिन बेटी, तू इ

अंजो : (**छिपाती हुई**) कुछ नहीं पापा जी···आज आपका

राजीव : (**कड़े स्वर से**) बातें न बदल बेटी ! यही कहना

अंजलि अभी निरी बच्ची है। खैर, (**जाती हुई**) अच्छा राजी बाबू !
सुबह फिर भेंट होगी (**जाती हुई**) अच्छा नमस्ते।

ध्यान, राजीव खाने की थाली को एक किनारे रख देता है और अंजो
ने-सामने कोच पर बैठ जाता है।]

के प्रति आपके क्या विचार हैं पापा जी ?
व्यक्तित्व में मुझसे अधिक प्रभाव डालने की क्षमता है।
अधिक ?
कि जो अंजो जन्म से आज तक मेरी गोद में पली, मेरे प्राणों से जिसके
आज मैं देख रहा हूँ कि उस पर मेरे दृष्टिकोण और मान्यताओं का
के प्रभाव के आगे कुछ नहीं है। (**रुककर**) लेकिन वह अच्छा नहीं है

वह जो कुछ है, वह बाहरी है, वह नीति जानता है इसलिए वह झूठा
रित्र नहीं इसीलिए वह आकर्षक है।
न बाबू की धारणा है कि इस दुनिया में प्रभुत्व पाने के लिए
ता आवश्यक है।
बोलना व्यावहारिकता के अन्तर्गत है ?
हम लोगों के साथ कभी झूठ नहीं बोल सकते !
हीं ! हम तुम भी तो उसकी दुनिया में हैं···। बेटी, मैं सच कहता हूँ
। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देख ले कि मदन ने आज सुबह तेरे चित्र पर यह
ाया है, लेकिन पूछने पर किस सफ़ाई के साथ झूठ बोल गया कि यह
।
डरते हैं।
डर का स्थान कहाँ ? (**रुककर कड़े स्वर में**) बेटी, खबरदार मदन
सके पास जादू के पंजे हैं, जादू के ! वह कमीना है, इस खूनी पंजे को
अंजो पर नहीं चला सकता।(**रुककर**) अरे ! नहीं···नहीं, बेटी मुझे
···मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए। मुझे अपनी बेटी पर विश्वास है···
करना बेटी !
र) पापा !
न्मेष से) बेटी, आज तू क्या सोच रही है, मुझे बता !
।
ताएगी ? (**प्यार से**) अरे बता दे बेटी !
है।]
लूम हो रहा है बेटी, तू मुझसे कुछ छिपा रही है। मैंने अपनी साँसों से

तुझे जिलाया है। मैं तेरी महान् आत्मा में पैठा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि तेरी आँखों में अन्तर्द्वन्द्व के शोले काँप रहे हैं, तेरे पवित्र पैरों में पराजय की कुछ थकान-सी लग रही है···लेकिन फिर भी मुझे तुझ पर अटूट विश्वास है।

[चिंता से बढ़कर खिड़की से बाहर देखने लगता है।]

अंजो : (**रुँधे स्वर में**) पापा जी।

राजीव : (**घूमकर**) हाँ-हाँ, बोल बेटी !

[अंजो दुस्साहस से रुक जाती है और क्षण-भर के अन्तराल के बाद कहीं दूर से वायलिन बजने की मीठी आवाज़ आती है और एकाएक अंजो न जाने किस अज्ञात भय और पीड़ा से काँपने लगती है।]

राजीव : (**आश्चर्य से अंजो को सम्हालता हुआ**) बेटी, क्या हो गया तुझे···तू इस तरह काँपने क्यों लगी ?

अंजो : (**स्फुट स्वर से**) पापा, मुझे सम्हालिए।

राजीव : (**कोच पर बिठाता हुआ आश्चर्य से**) क्या हो गया बेटी तुझे ?

अंजो : (**अपने को सम्हालती हुई**) कोई बात नहीं पापा, कुछ नहीं ?

राजीव : (**बहुत परेशानी से**) नहीं···नहीं···तू मुझसे कुछ छिपा रही है बेटी। मेरी सौगन्ध, तू बता···मदन ने आज तुझे कुछ खिला-पिला तो नहीं दिया ?

अंजो : नहीं, कुछ नहीं ?

राजीव : (**पागल-सा**) मैं मान नहीं सकता···बेटी, तू साफ़-साफ़ बता, नहीं तो मैं अभी इसी खिड़की से कूदकर अपनी जान दे दूँगा।

अंजो :(**पीड़ा से चीखकर पापा को पकड़ती हुई**) नहीं पापा जी, नहीं !

राजीव : फिर क्या बात है बेटी ?

अंजो : (**फूलती हुई साँसों के बीच**) मुझे इस बजती हुई वायलिन की आवाज़ से डर लग रहा है पापा ! मैं डर रही हूँ !

राजीव : (**चिंता से खिड़की की ओर घूमकर**) अरे···यह तो जैसे कोई सपेरा अपनी बीन बजा रहा है (**पुकारकर**) सामू !

अंजो : (**उठती हुई आग्रहपूर्ण विनय से**)नहीं पापा, कुछ नहीं, बजने दीजिए वायलिन··· मुझे इससे नहीं डर लग रहा है, मैं स्वयं अपने से डर रही हूँ (**राजीव को पकड़कर बात बदलती हुई**) पापा जी, आपने अब तक मुझसे एक बात छिपाई है।

राजीव : क्या कह रही है तू बेटी ? क्या कह रही है तू ?

अंजो : (**काँपती रहती है**) मदन ने मुझे बताया है कि नीरा देवी और आप···आप और नीरा ··!

राजीव : हाँ-हाँ, बोल बेटी (**आश्चर्य से**) लेकिन बेटी, तू इस तरह काँप क्यों रही है ?

अंजो : (**छिपाती हुई**) कुछ नहीं पापा जी···आज आपका चित्र न आरम्भ हो सका।

राजीव : (**कड़े स्वर से**) बातें न बदल बेटी ! यही कहना चाहती है न, कि नीरा और

मुझमें प्रेम है···हम दोनों विवाह करने के लिए सोचते हैं !

अंजो : जी···!

राजीव : (**क्रोध से पागल हो जाता है**) झूठा···शैतान कहीं का, झूठा···मेरी तपस्या की हत्या करने वाला मदन; मैं तेरा गला घोंट दूंगा···शैतान···!

[राजीव आवेश में बाहर बढ़ता है, अंजो चीखती हुई उसे जाने से रोकती है लेकिन राजीव उसे दूर कर बाहर अँधेरे में निकल जाता है, वायलिन की आवाज़ टूट जाती है। अंजो कुछ क्षणों तक पागल-सी सिसकती हुई खड़ी रहती है फिर सामने की ओर अँधेरे में बढ़ती हुई न जाने क्या देखकर ज़ोर से चीखती हुई वापस आकर कोच पर गिरने लगती है, सहसा दौड़ते हुए मदन का प्रवेश।]

मदन : (**तेजी से अंजो को पकड़कर**) अंजो ! मेरी अंजो ! चलो, बाहर निकल चलो।

अंजो : नहीं मदन, नहीं···जाओ मुझे मेरे अंधकूप में ही रहने दो···जाओ।

मदन : यह क्या कहती हो तुम ? इतनी ही देर में बदल गई ?

अंजो : तुम यहाँ से चले जाओ मदन, नहीं तो पापा···!

मदन : (**बरबस अंजो को अपनी बाहुओं में कसकर उठाने के प्रयत्न में**) नहीं, मैं तुम्हारा जीवन बरबाद नहीं होने दूंगा। मैं तुझे इस अंधकूप से निकालकर सितारों की उस दुनिया में ले जा रहा हूँ जहाँ तू चाँदनी की तरह···

[अंजो चीखती हुई मदन की बाहुओं में तड़पने लगती है, अंजो की आवाज़, 'नहीं मदन, अच्छा रुक जाओ मदन', 'नहीं नहीं' आदि वातावरण में गूंजने लगती है लेकिन मदन की आवाज़, 'कमर कसकर भी इतना कमज़ोर बनती हो, अपनी बात को भूलती हो, उसकी आवाज़ में मिलती हुई बाहर अँधेरे में फैल जाती है। सामू, पकड़ो, पकड़ो' चिल्लाता हुआ अँधेरे में पीछा करता है, लेकिन बस कुछ करुणा-भरी चीखें वातावरण में गूंजकर और पहाड़ों में टकराकर रह जाती हैं और धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

[दूसरे और तीसरे दृश्य के बीच प्रायः एक वर्ष का समय बीत गया है। स्थान वही है—राजीव के बँगले का वही कमरा, लेकिन यह दृश्य लगभग एप्रिल के पहले सप्ताह का है। मैदान के लोगों से पहाड़ अभी प्रायः सूना ही है क्योंकि अभी पहाड़ पर हिमवर्षा होती रहती है फिर ठंडक की बात ही क्या !

पर्दा राजीव के उसी कमरे में उठता है लेकिन कमरे की परिस्थिति में काफ़ी परिवर्तन है। फ़र्श पर केवल क़ालीन है और कु
की तरह न अंजो और शकुन के चित्र हैं, न किसी
समूचा वातावरण वीरान-सा लग रहा है जैसे इ
उठ गई हो।

दिन डूब चुका है, बाहर बर्फ़ीली हवा बहुत
चारों ओर इसकी सनसनाती हुई आवाज़ इस तर
श्मशान के किसी ठूंठे पीपर के वृक्ष से टकरा रही
लिए स्टेज इसी स्थिति में सूना रहता है। सहसा
टकराने की आवाज़ होती है और क्षण-भर के बा
जलती हुई मोमबत्ती लिए और दाएँ हाथ से दीवा
धीरे-धीरे प्रवेश करता है। इस दृश्य का राजीव
के राजीव से सर्वथा भिन्न है। पागलों की भाँति मूँ
गए हैं और रूख कर बिखर गए हैं। अवस्था से ल
से 15 वर्ष वृद्ध हो गया है। हाथ में मोमबत्ती लिए
जैसे स्टेज पर आता है, धीरे-धीरे स्फुट स्वर में न
बंद खिड़की तक जाते-जाते इसकी आवाज़ तेज़ हो ज

राजीव : इस तूफ़ानी ठंडक में मेरी अंजो न जाने कहाँ
रास्ता न दीखता होगा !···(**बंद खिड़की को टटोल
से पुकारता हूँ अंजो ! चली आ मेरी बेटी···लौट
रहा हूँ ! तू इस घुप अँधेरे को चीरती हुई चली आ

[बाएँ दरवाजे से दौड़ता हुआ सामू आता है।]

सामू : यह आप क्या कर रहे हैं बाबू जी ! यहाँ कैसे चले
राजीव : (**जैसे जगकर**) अरे सामू ! देख आज इसी वक्त
लग रही है ?

सामू : (**पास आकर**) इन दिनों पहाड़ की रातें इसी तर
चलिए, भीतर चलिए अँगीठी के पास···बाहर बहुत ते
राजीव : लेकिन सामू ! यह तेज़ बर्फ़ीली हवा मुझसे क्यों नहीं
जलता रहता है !

सामू : और यह रोशनी लेकर आप यहाँ कैसे आए ? आप
किसी चीज़ से टकरा जाए तो···!

[रोशनी ले लेता है।]

राजीव : मुझे जैसे अभी लगा कि अंजो इस कमरे में आई है,
कर दूं ! (**रुककर तेज़ी से**) सामू ! बिजली जलाक
तो ले।

म दोनों विवाह करने के लिए सोचते हैं !

गल हो जाता है) झूठा···शैतान कहीं का, झूठा···मेरी तपस्या
ाला मदन; मैं तेरा गला घोंट दूंगा···शैतान···!

में बाहर बढ़ता है, अंजो चीखती हुई उसे जाने से रोकती है लेकिन
कर बाहर अँधेरे में निकल जाता है, वायलिन की आवाज़ टूट
कुछ क्षणों तक पागल-सी सिसकती हुई खड़ी रहती है फिर सामने
में बढ़ती हुई न जाने क्या देखकर ज़ोर से चीखती हुई वापस
गिरने लगती है, सहसा दौड़ते हुए मदन का प्रवेश ।]

ी को पकड़कर) अंजो ! मेरी अंजो ! चलो, बाहर निकल

हीं···जाओ मुझे मेरे अंधकूप में ही रहने दो···जाओ ।
ी हो तुम ? इतनी ही देर में बदल गई ?
ले जाओ मदन, नहीं तो पापा···!
जो को अपनी बाहुओं में कसकर उठाने के प्रयत्न में) नहीं, मैं
बरबाद नहीं होने दूंगा । मैं तुझे इस अंधकूप से निकालकर सितारों
में ले जा रहा हूँ जहाँ तू चाँदनी की तरह···

हुई मदन की बाहुओं में तड़पने लगती है, अंजो की आवाज़, 'नहीं
क जाओ मदन', 'नहीं नहीं' आदि वातावरण में गूंजने लगती है
ी आवाज़, 'कमर कसकर भी इतना कमज़ोर बनती हो, अपनी बात
उसकी आवाज़ में मिलती हुई बाहर अँधेरे में फैल जाती है।
कड़ो' चिल्लाता हुआ अँधेरे में पीछा करता है, लेकिन बस कुछ
खें वातावरण में गूंजकर और पहाड़ों में टकराकर रह जाती हैं और
गिरता है ।]

तीसरा दृश्य

सरे दृश्य के बीच प्रायः एक वर्ष का समय बीत गया है । स्थान वही
बँगले का वही कमरा, लेकिन यह दृश्य लगभग एप्रिल के पहले
। मैदान के लोगों मे पहाड़ अभी प्रायः सूना ही है क्योंकि अभी
वर्षा होती रहती है फिर ठंडक की बात ही क्या !
जीव के उसी कमरे में उठता है लेकिन कमरे की परिस्थिति में काफ़ी

परिवर्तन है । फ़र्श पर केवल क़ालीन है और कुछ नहीं। कमरे में पिछले दृश्यों की तरह न अंजो और शकुन के चित्र हैं, न किसी और प्रकार की कलात्मकता। समूचा वातावरण वीरान-सा लग रहा है जैसे इस बंगले की मूल आत्मा ही कहीं उठ गई हो ।

दिन डूब चुका है, बाहर बर्फ़ीली हवा बहुत तेज़ चल रही है और बँगले के चारों ओर इसकी सनसनाती हुई आवाज़ इस तरह भयानक लग रही है जैसे यह श्मशान के किसी ठूँठे पीपर के वृक्ष से टकरा रही हो। पर्दा उठने पर क्षण-भर के लिए स्टेज इसी स्थिति में सूना रहता है। सहसा बाएँ दरवाज़े पर धीरे से कुछ टकराने की आवाज़ होती है और क्षण-भर के बाद राजीव अपने बाएँ हाथ में जलती हुई मोमबत्ती लिए और दाएँ हाथ से दीवार टटोलता हुआ उसी के सहारे धीरे-धीरे प्रवेश करता है। इस दृश्य का राजीव आज के प्रायः दस महीने पहले के राजीव से सर्वथा भिन्न है। पागलों की भाँति मूँछ, दाढ़ी और सर के बाल बढ़ गए हैं और रूख कर बिखर गए हैं। अवस्था से लगता है कि यह पहले के राजीव से 15 वर्ष वृद्ध हो गया है। हाथ में मोमबत्ती लिए हुए दीवार के सहारे वह जैसे-जैसे स्टेज पर आता है, धीरे-धीरे स्फुट स्वर में न जाने क्या कहता रहता है और बंद खिड़की तक जाते-जाते इसकी आवाज़ तेज़ हो जाती है।]

राजीव : इस तूफ़ानी ठंडक में मेरी अंजो न जाने कहाँ होगी ? इस धूप-अँधेरे में उसे रास्ता न दीखता होगा !··· (**बंद खिड़की को टटोलता हुआ**) मैं तुझे इस खिड़की से पुकारता हूँ अंजो ! चली आ मेरी बेटी···लौट आ···मैं तुझे रोशनी दिखा रहा हूँ ! तू इस घुप अँधेरे को चीरती हुई चली आ···बेटी; चली आ···!

[बाएँ दरवाजे से दौड़ता हुआ सामू आता है।]

सामू : यह आप क्या कर रहे हैं बाबू जी ! यहाँ कैसे चले आए ?

राजीव : (**जैसे जगकर**) अरे सामू ! देख आज इसी वक्त से यह रात कितनी भयानक लग रही है ?

सामू : (**पास आकर**) इन दिनों पहाड़ की रातें इसी तरह हुआ करती हैं बाबूजी ! चलिए, भीतर चलिए अँगीठी के पास···बाहर बहुत तेज़ बर्फ़ीली हवा चल रही है।

राजीव : लेकिन सामू ! यह तेज़ बर्फ़ीली हवा मुझसे क्यों नहीं टकराती···मेरा तो शरीर जलता रहता है !

सामू : और यह रोशनी लेकर आप यहाँ कैसे आए ? आप जानते नहीं, कहीं हाथ-पैर किसी चीज से टकरा जाए तो···!

[रोशनी ले लेता है ।]

राजीव : मुझे जैसे अभी लगा कि अंजो इस कमरे में आई है, मैंने सोचा कि यहाँ रोशनी कर दूं ! (**रुककर तेज़ी से**) सामू ! बिजली जलाकर चारों ओर जरा देख तो ले ।

सामू : (**मोमबत्ती बुझाकर बिजली ऑन करता हुआ**) आप कैसी बातें करते हैं ? हम लोगों पर ईश्वर जो नाखुश है।

राजीव : (**चिन्ता-स्वर में**) अच्छा, खिड़की तो खोल दे, मैं ज़रा बाहर देखूंगा।

सामू : ओह, कैसे देखिएगा बाबूजी···देखना ही होता तो ईश्वर आपकी आँखों की रोशनी···।

राजीव : (**बीच ही में क्रोध से**) सामू ! बार-बार तू मेरे बीच में ईश्वर को न लाया कर, नहीं तो मैं तेरे ईश्वर का खून कर दूंगा !

सामू : (**वश में करता हुआ**) शान्त हो जाइए बाबू जी !

राजीव : लेकिन इस खिड़की को खोल दे।

सामू : इससे क्या होगा ?

राजीव : तू मुझे अंधा समझता है, इसीलिए न ! लेकिन सामू ! याद रख···मैं सब चीज़ें देख रहा हूँ···यह पूरा पर्वत, इसकी सारी विशालता, पेंगोरा फ़ाल, सिंघा ग्लेशियर, सब सड़कें और सब पहाड़ की जगहें···बदसूरत और रंगीन सब ! क्या समझे···?

[सामू चुप रहता है।]

राजीव : (**रूखी हँसी के बाद**) अच्छा, तू इन्हें पागलों की बातें समझ रहा होगा, तभी तू चुप है। (**गिरी हुई वाणी से अपने हाथों को देखता हुआ**) सच, मैं अंधा हो गया हूँ, सामू ! लेकिन इसकी चिंता क्या ? इन आँखों की रोशनी अंजो के पास है न ! देख लेना उसके आते ही मेरी आँखें ठीक हो जाएँगी।

सामू : ईश्वर करे···(सँभल जाता है) नहीं, नहीं, क्षमा कीजिएगा बाबू जी !

राजीव : (**लम्बी हँसी के बाद**) ईश्वर, ईश्वर और भी कुछ ! (**हँसकर**) पागल··· जन्म से तो यही सुनते आए और इसी विश्वास की कमज़ोरी हमारी आत्मा की वह नींद है जहाँ हम हारकर संतोष ढूंढ़ते हैं।

[सहसा बाहर ढलान पर कोई 'सामू-सामू' पुकारता है।]

राजीव : (**आश्चर्य से**) देख तुझे कोई पुकार रहा है, सामू ?

[सामू बढ़कर जैसे ही खिड़की खोलता है, तेज़ बर्फ़ीली हवा की आवाज़ कमरे में टकराने लगती है।]

राजीव : (**खुशी से चीखता हुआ**) मेरी अंजो है सामू !

सामू : (**खिड़की बंद करता हुआ**) जी हाँ···मैं बाहर देखता हूँ !

[सामू तेजी से बाहर निकल जाता है और क्षण-भर के बाद ही पृष्ठभूमि से नीरा की आवाज़ सुनाई पड़ती है।]

आवाज़ : मैं तुम लोगों को ढूंढ़ती हुई हार गई, सामू !

[घबड़ाकर आश्चर्य में डूबी हुई नीरा सामू के साथ प्र
जिज्ञासा से शून्य में न जाने क्या देखता है।]

नीरा : (**राजीव बाबू को देखते ही करुणा से चीख उठती**
राजीव : ओह ! नीरा···तुम, अरे···!

[नीरा सिसकने लगती है।]

राजीव : अरे ! रोने लगी तुम !

नीरा : (**चीखकर दीवार में अपना मुँह छिपा लेती है**) मे

राजीव : नीरा, मुझसे डरकर चीख रही हो क्या ? सामू ! लग रहा हूँ ?

सामू : आप कैसी बातें कर रहे हैं बाबू जी ! कोई भी व्यक्ति पहले आपको देखा होगा, आज आपको देखकर रो प

राजीव : सच ! (**पुकारकर**) अरे नीरा !

नीरा : (**करुणा से**) मैं कितनी बड़ी अभागिन हूँ !

राजीव : क्यों, यह क्या कह रही हो ?

नीरा : (**भरे कंठ से**) आपने मुझे अपने साथ न रहने दिया पर तड़पते हुए···अपने को···!

राजीव : (**बीच ही में**) ओह, यह बात (**रुककर**) खैर, अ तुम्हें ज़रूर कुछ खबर मिली होगी !

नीरा : यही तो और रोना है. मुझे भी खबर नहीं, अंजो के भर आपके साथ रही। लेकिन आपके इस आश्वासन में मैदान लौट आऊँगा ! मैं अकेली घर आकर आप आपके पास तार भेजे, खत दिए, लेकिन आपने मुझे खबर न दी। (**सिसकने लगती है**) मैं कितनी बड़ी अ

राजीव : कहीं किसी का अपराध नहीं होना नीरा ! (**रुककर**) सामू !

सामू : जी।

राजीव : खड़े क्या हो ? जल्दी नीरा को चाय पिलाओ··· होगी ! (**सामू चला जाता है**) सीधे घर से आ रही

नीरा : मेरी न पूछिए···जब आपका किसी तरह पता न रही हूँ, और क्या करती, मुझे कहीं शान्ति न थी !

राजीव : लेकिन मैं तो यहीं बन्द पड़ा रहा···!

नीरा : (**फिर रोती है**) जभी आपने अपनी यह दशा कर ड की रोशनी ! (**सिसकने लगती है।**)

राजीव : (**हँसता हुआ**) तो तुम्हें इसकी चिन्ता है···!

…ाकर बिजली ऑन करता हुआ) आप कैसी बातें करते हैं ? हम
…जो नाखुश है।
…र में) अच्छा, खिड़की तो खोल दे, मैं ज़रा बाहर देखूंगा।
…इएगा बाबूजी·· देखना ही होता तो ईश्वर आपकी आँखों की

…ई क्रोध से) सामू ! बार-बार तू मेरे बीच में ईश्वर को न लाया
…तेरे ईश्वर का ख़ून कर दूंगा !
…ा हुआ) शान्त हो जाइए बाबू जी !
…खिड़की को खोल दे।
…गा ?
…समझता है, इसीलिए न ! लेकिन सामू ! याद रख···मैं सब
…हूँ···यह पूरा पर्वत, इसकी सारी विशालता, पेशोरा फ़ाल, सिघा
…ड़कें और सब पहाड़ की जगहें···बदसूरत और रंगीन सब ! क्या

…ा है।]

…ी के बाद) अच्छा, तू इन्हें पागलों की बातें समझ रहा होगा, तभी
…री हुई वाणी से अपने हाथों को देखता हुआ) सच, मैं अंधा हो
…! लेकिन इसकी चिंता क्या ? इन आँखों की रोशनी अंजो के पास
…ना उसके आते ही मेरी आँखें ठीक हो जाएँगी।
…(सँभल जाता है) नहीं, नहीं, क्षमा कीजिएगा बाबू जी !
…ँसी के बाद) ईश्वर, ईश्वर और भी कुछ ! (हँसकर) पागल···
…ी सुनते आए और इसी विश्वास की कमज़ोरी हमारी आत्मा की
…ाँ हम हारकर संतोष ढूंढ़ते हैं।

…ढलान पर कोई 'सामू-सामू' पुकारता है।]

…से) देख तुझे कोई पुकार रहा है, सामू ?

…जैसे ही खिड़की खोलता है, तेज़ बर्फ़ीली हवा की आवाज़ कमरे में
…है।]

…चीखता हुआ) मेरी अंजो है सामू !
…द करता हुआ) जी हाँ···मैं बाहर देखता हूँ !

…बाहर निकल जाता है और क्षण-भर के बाद ही पृष्ठभूमि से नीरा
…नाई पड़ती है।]

…ागों को ढूंढ़ती हुई हार गई, सामू !

[घबड़ाकर आश्चर्य में डूबी हुई नीरा सामू के साथ प्रवेश करती है। राजीव असीम जिज्ञासा से शून्य में न जाने क्या देखता है।]

नीरा : (**राजीव बाबू को देखते ही करुणा से चीख उठती है**) आह ! राजी बाबू !

राजीव : ओह ! नीरा···तुम, अरे···!

[नीरा सिसकने लगती है।]

राजीव : अरे ! रोने लगी तुम !

नीरा : (**चीखकर दीवार में अपना मुँह छिपा लेती है**) मेरे राजी बाबू !

राजीव : नीरा, मुझसे डरकर चीख रही हो क्या ? सामू ! सामू ! मैं भयानक तो नहीं लग रहा हूँ ?

सामू : आप कैसी बातें कर रहे हैं बाबू जी ! कोई भी व्यक्ति जिसने आज से दस महीने पहले आपको देखा होगा, आज आपको देखकर रो पड़ेगा।

राजीव : सच ! (**पुकारकर**) अरे नीरा !

नीरा : (**करुणा से**) मैं कितनी बड़ी अभागिन हूँ !

राजीव : क्यों, यह क्या कह रही हो ?

नीरा : (**भरे कंठ से**) आपने मुझे अपने साथ न रहने दिया और आप अकेले इस पहाड़ पर तड़पते हुए···अपने को···!

राजीव : (**बीच ही में**) ओह, यह बात (**रुककर**) ख़ैर, अब मेरी अंजो के बारे में बता, तुम्हें ज़रूर कुछ ख़बर मिली होगी !

नीरा : यही तो और रोना है, मुझे भी ख़बर नहीं, अंजो के ग़ायब होने के बाद मैं महीने भर आपके साथ रही। लेकिन आपके इस आश्वासन पर कि मैं भी दो-एक दिन में मैदान लौट आऊँगा ! मैं अकेली घर आकर आपका रास्ता देखने लगी, फिर आपके पास तार भेजे, ख़त दिए, लेकिन आपने मुझे अपनी स्थिति की कुछ भी ख़बर न दी। (**सिसकने लगती है**) मैं कितनी बड़ी अपराधिनी हूँ राजी बाबू !

राजीव : कहीं किसी का अपराध नहीं होता नीरा ! भूल जाओ उन बातों को (**रुककर**) सामू !

सामू : जी।

राजीव : खड़े क्या हो ? जल्दी नीरा को चाय पिलाओ···बेचारी ठंडक से काँप रही होगी ! (**सामू चला जाता है**) सीधे घर से आ रही हो ?

नीरा : मेरी न पूछिए···जब आपका किसी तरह पता न लगा···तब मैं स्वयं यहाँ आ रही हूँ, और क्या करती, मुझे कहीं शान्ति न थी !

राजीव : लेकिन मैं तो यहीं बन्द पड़ा रहा···!

नीरा : (**फिर रोती है**) जभी आपने अपनी यह दशा कर डाली है···आह, अपनी आँखों की रोशनी ! (**सिसकने लगती है।**)

राजीव : (**हँसता हुआ**) तो तुम्हें इसकी चिन्ता है···!

[हँसता है, सामू इसी बीच में चाय लाता है और रखकर चला जाता है।]

राजीव : अच्छा लो, पहले चाय पी लो···!

नीरा : (**चाय लेकर**) आप भी पीजिए !

राजीव : तुम पियो···अब मैं चाय नहीं पीता !

नीरा : इस बर्फ़ीले पहाड़ पर भी ?

राजीव : मुझे अब बर्फ़ बहुत प्यारा लगता है नीरा !···मेरी आँखों में जब तक रोशनी थी, मैं बराबर जाड़ों में सामू से छिपकर नंगे पैर बर्फ़ पर टहलता था, और तबीयत तो यह होती थी कि यह बर्फ़ का पहाड़ फट जाता और मैं उसमें समाकर इस विशाल पर्वत के नीचे युगों से दबी हुई धरती के सीने के घाव को अपने बर्फ़ीले दामन में छिपा लेता !···लेकिन अब तो पगला सामू मुझे बंगले से बाहर नहीं निकलने देता।

नीरा : ठीक ही करता है !

राजीव : ठीक तो करता है···लेकिन नीरा, एक बार मेरी तबीयत होती है कि मैं बहुत जोर से इस पर्वत पर दौड़ूँ और एक बहुत बड़े शिलाखंड से टकराकर इस समूचे पर्वत को अपनी बाँहों में कस लूँ !

[सामू भीतर से दरवाजे पर जाता है]

सामू : चलिए बाबू जी, भीतर आराम कीजिए···अँगीठी दहक रही है !

राजीव : मुझे नहीं चाहिए सामू ! (**रुककर**) लेकिन···हाँ अँगीठी लाकर नीरा के पास रख दो···। जाओ···।

[सामू भीतर से दहकती हुई अँगीठी लाकर एक स्टूल पर रख कर चला जाता है।]

राजीव : नीरा, तुम घर कब वापस जा रही हो ?

नीरा : मैं अब अपने घर वापस जाने के लिए नहीं आई हूँ !

राजीव : क्या बचपना दिखाती हो ! मेरे साथ तुम कैसे रह सकोगी ?

नीरा : जैसे शरीर के साथ आत्मा है !

राजीव : यह आत्मा वगैरह सब भूल है नीरा ! आज तक इसको किसी ने देखा भी है ? इसकी बातें मत करो।

नीरा : अरे ! आप और ऐसी बातें !

राजीव : (**हँसता हुआ**) मैं अंधा राजीव ! (**हँसता है**) आज से दस महीने पूर्व का राजीव दूसरा था। वह चित्रकार था, वह हर वर्ष इस पर्वत पर आकर एक नया चित्र बनाता था। वह सरस्वती की पूजा करता था—'या कुन्देन्दु तुषार हार धवला' वह और राजीव था समझी ! जिसे आत्मा, ईश्वर, माया-वाया न जानो कितनी अदृश्य चीजों पर विश्वास था, लेकिन (**गिरी हुई वाणी से**) वह राजीव

मर गया···जिससे तुम प्रेम करती थीं,···जि
थीं···!

नीरा : (**चीखकर राजीव से लिपट जाती है**) राजी

राजीव : (**उसे समझाता हुआ**) भूलो नहीं, वह कोई

नीरा : ऐसा न कहिए मेरे राजीव बाबू ! ऐसा न कि

राजीव : क्यों न कहूँ···मैं कोई व्यक्ति थोड़े ही हूँ··
हूँ !

नीरा : नहीं आप मेरे सब कुछ हैं !

राजीव : और सब कुछ मैं जरूर हो सकता हूँ···लेि
व्यक्ति से होता है, छाया से नहीं !

[यह कह कर राजीव अपने दोनों हाथों को सामने
वह किसी बड़ी चीज को स्पर्श कर रहा हो।]

नीरा : यह शून्य में आप बराबर अपना हाथ क्यों फैल

राजीव : (**बच्चों की तरह हँसकर**) लेकिन नीरा मुझे ल
पर्वत है और इस पर्वत के पीछे मेरी अंजो खड़ी
देखना चाहता हूँ लेकिन जितनी ही बार मैं इसे छ
शैतान उतना ही पीछे हटता जाता है। (**व्यंग्य स**
एक बार भी छू पाता !

नीरा : (**आशंका से**) मैं अब आपको यहाँ एक दिन भी
आपको मैदान—अपने देश ले चलूँगी !···मुर्दई

राजीव : और जब यहाँ मुझे ढूँढ़ती हुई मेरी अंजो आए

नीरा : खैर, वह यहाँ आए तो सही···फिर वह स्वयं मै

राजीव : नहीं, अब मैं और भूल नहीं करूँगा !

नीरा : इसके लिए यहाँ सामू अकेले रह सकता है···ले
भी रहना ठीक नहीं।

राजीव : तुमसे मैंने कहा, मैं छाया हूँ। मेरे लिए ठीक-बे
पर अकेले छोड़ दो नीरा ! मैं अंजो के साथ इस प
यहीं पिघल कर इस पहाड़ से नीचे बहता हुआ
जमकर पत्थर हो जाऊँगा।

नीरा : (**करुणा से**) नहीं राजी बाबू ! ऐसा न कहिए··
आप मेरे हैं, मेरे !

राजीव : नहीं, नीरा ! ऐसा न कहो···मैं तुमसे हाथ जोड़
से मुझे लगता है कि यह मेरे सामने का काला पहाड़
मुँह में कालिख लगा रहा है (**रुककर**) नीरा एक ब

नीरा (**जिज्ञासा से**) जी पूछिए !

इसी बीच में चाय लाता है और रखकर चला जाता है।]

पहले चाय पी लो···!

आप भी पीजिए !

'अब मैं चाय नहीं पीता !

हाड़ पर भी ?

ै बहुत प्यारा लगता है नीरा !···मेरी आँखों में जब तक रोशनी
ाड़ों में सामू से छिपकर नंगे पैर बर्फ़ पर टहलता था, और तबीयत
कि यह बर्फ़ का पहाड़ फट जाता और मैं उसमें समाकर इस
नीचे युगों से दबी हुई धरती के सीने के घाव को अपने बर्फ़ीले
लेता !···लेकिन अब तो पगला सामू मुझे बंगले से बाहर नहीं

ता है !

रता है···लेकिन नीरा, एक बार मेरी तबीयत होती है कि मैं बहुत
न पर दौड़ूँ और एक बहुत बड़े शिलाखंड से टकराकर इस समूचे
बाँहों में कस लूँ !

दरवाजे पर जाता है]

ी, भीतर आराम कीजिए···अँगीठी दहक रही है !

हिए सामू ! (**रुककर**) लेकिन···हाँ अँगीठी लाकर नीरा के पास
ो···।

से दहकती हुई अँगीठी लाकर एक स्टूल पर रख कर चला जाता

घर कब वापस जा रही हो ?

घर वापस जाने के लिए नहीं आई हूँ !

ा दिखाती हो ! मेरे साथ तुम कैसे रह सकोगी ?

साथ आत्मा है !

वगैरह सब भूल है नीरा ! आज तक इसको किसी ने देखा भी
तें मत करो।

और ऐसी बातें !

ा) मैं अंधा राजीव ! (**हँसता है**) आज से दस महीने पूर्व का
ा। वह चित्रकार था, वह हर वर्ष इस पर्वत पर आकर एक नया
। वह सरस्वती की पूजा करता था—'या कुन्देन्दु तुषार हार
राजीव था समझी ! जिसे आत्मा, ईश्वर, माया-वाया न जानो
चीजों पर विश्वास था, लेकिन (**गिरी हुई वाणी से**) वह राजीव

मर गया···जिससे तुम प्रेम करती थीं,···जिससे तुम विवाह करना चाहती थीं···!

नीरा : (**चीखकर राजीव से लिपट जाती है**) राजी···!

राजीव : (**उसे समझाता हुआ**) भूलो नहीं, वह कोई और राजीव था···मैं नहीं।

नीरा : ऐसा न कहिए मेरे राजीव बाबू ! ऐसा न कहिए !

राजीव : क्यों न कहूँ···मैं कोई व्यक्ति थोड़े ही हूँ···मैं केवल अपनी अंजो की छाया हूँ !

नीरा : नहीं आप मेरे सब कुछ हैं !

राजीव : और सब कुछ मैं जरूर हो सकता हूँ···लेकिन मैं व्यक्ति नहीं हूँ और प्रेम व्यक्ति से होता है, छाया से नहीं !

[यह कह कर राजीव अपने दोनों हाथों को सामने शून्य में फैलाने लगता है जैसे वह किसी बड़ी चीज को स्पर्श कर रहा हो।]

नीरा : यह शून्य में आप बराबर अपना हाथ क्यों फैला रहे हैं ?

राजीव : (**बच्चों की तरह हँसकर**) लेकिन नीरा मुझे तो यह लगता है; यह कोई काला पर्वत है और इस पर्वत के पीछे मेरी अंजो खड़ी है। मैं इस काले पर्वत को छूकर देखना चाहता हूँ लेकिन जितनी ही बार मैं इसे छूने के लिए हाथ फैलाता हूँ यह शैतान उतना ही पीछे हटता जाता है। (**व्यंग्य से मुस्कराता है**) काश, मैं इसको एक बार भी छू पाता !

नीरा : (**आशंका से**) मैं अब आपको यहाँ एक दिन भी और नहीं रहने दूँगी, कल ही आपको मैदान—अपने देश ले चलूँगी !···मुई पहाड़ पर !

राजीव : और जब यहाँ मुझे ढूँढ़ती हुई मेरी अजो आएगी तब ?

नीरा : खैर, वह यहाँ आए तो सही···फिर वह स्वयं मैदान भी जा सकती है।

राजीव : नहीं, अब मैं और भूल नहीं करूँगा !

नीरा : इसके लिए यहाँ सामू अकेले रह सकता है···लेकिन अब आपका यहाँ एक क्षण भी रहना ठीक नहीं।

राजीव : तुमसे मैंने कहा, मैं छाया हूँ। मेरे लिए ठीक-बेठीक कुछ नहीं, मुझे मेरे नाम पर अकेले छोड़ दो नीरा ! मैं अंजो के साथ इस पहाड़ से मैदान लौटूँगा नहीं तो यहीं पिघल कर इस पहाड़ से नीचे बहता हुआ किसी शिलाखंड की सतह पर जमकर पत्थर हो जाऊँगा।

नीरा : (**करुणा से**) नहीं राजी बाबू ! ऐसा न कहिए···मैं आपसे हाथ जोड़ती हूँ, अब आप मेरे हैं, मेरे !

राजीव : नहीं, नीरा !ऐसा न कहो···मैं तुमसे हाथ जोड़ता हूँ, ऐसा न कहो। इस बात से मुझे लगता है कि यह मेरे सामने का काला पहाड़ अपने हाथों को फैला कर मेरे मुँह में कालिख लगा रहा है (रुककर) नीरा एक बात तो बताओ !

नीरा (**जिज्ञासा से**) जी पूछिए !

राजीव : तुम्हें फूल प्यारा है या पत्थर ?

नीरा : जी मुझे फूल प्यारा है !

राजीव : (खुलकर हँसता हुआ) ओह ! तुम्हें फूल प्यारा है···फूल (हँसता है।)

नीरा : (आश्चर्य से) लेकिन राजी बाबू, यह फूल और पत्थर की बात कहाँ से आ गई ? ···बोलिए···!

राजीव : (साँस भरकर) तुम्हें याद होगा कि पिछले वर्ष मैंने एक फूल और पत्थर का चित्र बनाने का व्रत लिया था।

नीरा : जी, मुझे खूब याद है।

राजीव : और मैंने तुम्हें इस चित्र-रूपक की पृष्ठभूमि की कहानी भी बताई थी···

नीरा : जी हाँ, आपने बताया था कि आज से पाँच वर्ष पूर्व इस पर्वत पर दो प्रेमी आए थे···और···।

राजीव : (बीच ही में) हाँ···वे पति और पत्नी थे। पति इस पहाड़ की घाटियों में घूम-घूम कर फूल चुनता था और हर सुबह वह फूलों का ढेर अपने प्रेम के सौरभ में बाँध कर पत्नी को भेंट करता था और पत्नी हर शाम को चाय के प्याले में अपनी लाल मुस्कराहटों के साथ पति को 'स्लोप्वाइज़निंग' करती थी —शायद यहीं तक मैंने कहानी बताई थी।

नीरा : जी हाँ, फिर क्या हुआ ?

राजीव : (तेज ठंडी साँस लेकर) फिर क्या होता···एक ही माह के अन्दर प्रेमी पति मर गया और मरने के बाद तीसरे ही दिन वह प्रेमिका यहीं के एक कैप्टन के साथ बालडांस करती हुई एकाएक हृदयगति रुक जाने से मर गई !

नीरा : (आश्चर्य से) अरे ! ···तब ?

राजीव : फिर इसी पहाड़ की एक हरी घाटी में पति की क़ब्र के साथ उसकी भी क़ब्र बनी। और दूसरे वर्ष जब मैं पहाड़ फिर लौटा और अचानक घूमता-घूमता एक दिन मैं उनकी क़ब्र पर जा पहुँचा तो वहाँ देखता क्या हूँ कि पति की क़ब्र के किनारे एक फूल का पौधा उगा है···और उसमें सिर्फ़ एक खिला हुआ फूल अपनी समूची डालियों के साथ पत्नी की क़ब्र पर झुका है (रुककर) तब से मुझे फूल से घृणा है और पत्थर से प्यार !

[नीरा चुप है।]

राजीव : काश, वह चित्र मैं बना पाता···ख़ैर···(रुककर) लेकिन अब मैं सोचता हूँ कि अंजो के आने पर मैं उसी से यह चित्र बनवाऊँगा।

[नीरा चुप है।]

राजीव : नीरा, तुम इस तरह चुप क्यों हो ?

नीरा : नहीं तो !

राजीव : अच्छा नीरा, ज़रा इस खिड़की को तो खोल रहा है !

नीरा : नहीं, अब आप अन्दर चलिए, खिड़की के बाह

राजीव : (कड़े स्वर से) नहीं, मैं चाहता हूँ कि यह ब

[नीरा बढ़कर जैसे ही खिड़की खोलती है बर्फ़ील लगता है।]

राजीव : (हवा की ओर मुँह कर) कितनी प्यारी ह की ख़ुशबू है···इसमें उसके मासूम पैरों की आह

[सहसा भीतर से बिगड़ता हुआ सामू आता है औ देता है।]

सामू : चलिए आप लोग भीतर चलिए···खाना तैयार

राजीव : नहीं, थोड़ी देर मैं यहाँ और बैठूँगा !

[सामू अन्दर चला जाता है।]

नीरा : इस तरह आप यहाँ कब तक रहिएगा ?

राजीव : अगर यही प्रश्न मैं तुमसे करूँ तो तुम क्या उत्त

नीरा : इसके उत्तर में मेरे पास सिर्फ़ आँसू हैं !

राजीव : तुम भूल रही हो नीरा ! ···विश्वास करो, मैं क़ीमती आँसुओं को इस तरह न लुटाओ !

नीरा : (करुणा से) आप मेरे व्रत को न तोड़िए राजी हूँ !

राजीव : ओह, व्रत···तुमने भी व्रत लिया था···पगली करते हैं और व्रत टूटने पर रो-रो कर अंधे हो जाते

[नीरा चुप है।]

राजीव : नीरा, मेरे जीवन की केवल एक जीत है, मैं शकु रहा हूँ बस, और कुछ नहीं···(चीखकर) नीरा ! की तरह फिर हँस रहा है !

नीरा : (परेशान होकर) बताइए मैं इसके लिए क्या करूँ

राजीव : सच, तुम कुछ नहीं कर सकतीं, यह मेरा व्यक्तिग

[राजीव की अंधी आँखों से आँसू गिरने लगते हैं।]

नीरा : (दर्द से) आह ! यह आपकी आँखों से आँसू गिर

राजीव : (रुक कर)···लगता है मेरी अंजो आएगी···!

[नीरा सिसकने लगती है।]

रा है या पत्थर ?
ारा है !
ता हुआ) ओह ! तुम्हें फूल प्यारा है···फूल (हँसता है।)
किन राजी बाबू, यह फूल और पत्थर की बात कहाँ से आ गई ?

) तुम्हें याद होगा कि पिछले वर्ष मैंने एक फूल और पत्थर का
त लिया था।
ाद है।
ई इस चित्र-रूपक की पृष्ठभूमि की कहानी भी बताई थी···
बताया था कि आज से पाँच वर्ष पूर्व इस पर्वत पर दो प्रेमी
।
) हाँ···वे पति और पत्नी थे। पति इस पहाड़ की घाटियों में
चुनता था और हर सुबह वह फूलों का ढेर अपने प्रेम के सौरभ
को भेंट करता था और पत्नी हर शाम को चाय के प्याले में
राहटों के साथ पति को 'स्लोप्वाइज़निंग' करती थी —शायद यहीं
बताई थी।
या हुआ ?
साँस लेकर) फिर क्या होता···एक ही माह के अन्दर प्रेमी पति
रने के बाद तीसरे ही दिन वह प्रेमिका यहीं के एक कैप्टन के साथ
हुई एकाएक हृदयगति रुक जाने से मर गई !
अरे !···तब ?
हाड़ की एक हरी घाटी में पति की क़ब्र के साथ उसकी भी क़ब्र
वर्ष जब मैं पहाड़ फिर लौटा और अचानक घूमता-घूमता एक
र पर जा पहुँचा तो वहाँ देखता क्या हूँ कि पति की क़ब्र के किनारे
ा उगा है···और उसमें सिर्फ़ एक खिला हुआ फूल अपनी समूची
पत्नी की क़ब्र पर झुका है (रुककर) तब से मुझे फूल से घृणा है
ार !

त्र मैं बना पाता···ख़ैर··· (रुककर) लेकिन अब मैं सोचता हूँ कि
मैं उसी से यह चित्र बनवाऊँगा।

स तरह चुप क्यों हो ?

राजीव : अच्छा नीरा, ज़रा इस खिड़की को तो खोल दो···न जाने क्यों मेरा दम घुट रहा है !

नीरा : नहीं, अब आप अन्दर चलिए, खिड़की के बाहर बर्फ़ीली हवा टकरा रही है···!

राजीव : (कड़े स्वर से) नहीं, मैं चाहता हूँ कि यह बाहर की बर्फ़ीली हवा टकराये···!

[नीरा बढ़कर जैसे ही खिड़की खोलती है बर्फ़ीली हवा का झोंका कमरे में टकराने लगता है।]

राजीव : (हवा की ओर मुँह कर) कितनी प्यारी हवा है ! इसमें मेरी अंजो के सर की ख़ुशबू है···इसमें उसके मासूम पैरों की आहट है !

[सहसा भीतर से बिगड़ता हुआ सामू आता है और अधिकारपूर्वक खिड़की बंद कर देता है।]

सामू : चलिए आप लोग भीतर चलिए···खाना तैयार है !

राजीव : नहीं, थोड़ी देर मैं यहाँ और बैठूँगा !

[सामू अन्दर चला जाता है।]

नीरा : इस तरह आप यहाँ कब तक रहिएगा ?

राजीव : अगर यही प्रश्न मैं तुमसे करूँ तो तुम क्या उत्तर दोगी ?

नीरा : इसके उत्तर में मेरे पास सिर्फ़ आँसू हैं !

राजीव : तुम भूल रही हो नीरा !···विश्वास करो, मैं सिर्फ़ छाया हूँ और तुम अपने क़ीमती आँसुओं को इस तरह न लुटाओ !

नीरा : (करुणा से) आप मेरे व्रत को न तोड़िए राजीव बाबू, मैं आपके पाँव पड़ती हूँ !

राजीव : ओह, व्रत···तुमने भी व्रत लिया था···पगली कहीं की···व्रत नादान लिया करते हैं और व्रत टूटने पर रो-रो कर अंधे हो जाते हैं···मुझे देख लो···!

[नीरा चुप है।]

राजीव : नीरा, मेरे जीवन की केवल एक जीत है, मैं शकुन और अंजो के प्रति ईमानदार रहा हूँ बस, और कुछ नहीं··· (चीख़कर) नीरा ! देख यह काला पहाड़ शैतानों की तरह फिर हँस रहा है !

नीरा : (परेशान होकर) बताइए मैं इसके लिए क्या करूँ···बोलिए···!

राजीव : सच, तुम कुछ नहीं कर सकतीं, यह मेरा व्यक्तिगत अभिशाप है !

[राजीव की अंधी आँखों से आँसू गिरने लगते हैं।]

नीरा : (दर्द से) आह ! यह आपकी आँखों से आँसू गिर रहे हैं !

राजीव : (रुक कर)···लगता है मेरी अंजो आएगी···!

[नीरा सिसकने लगती है।]

राजीव : (**समझाता हुआ**) शान्त हो जा नीरा···साधारण जीवन से ऊपर उठ कर सोचने और रहने की यही सज़ा होती है···आँसू और तड़पन !···मैं तो तुमसे फिर कहूँगा कि तुम उसी साधारण जीवन में लौट जाओ···वहाँ तुम्हें संतोष और सुख मिलेगा···!

[नीरा चुप है]

राजीव : नीरा, नीरा !···कमज़ोर मत बन···नीरा !···एक बार उस खिड़की को चुपके से और खोल दे—मैं हर रात इस बर्फ़ीली हवा में अंजो के आने की आहट ढूँढ़ता हूँ···ज़रा देर के लिए खोल दे···!

[नीरा खिड़की खोल देती है और हवा की आवाज़ कमरे में टकराने लगती है।]

राजीव : आह ! कितनी ताज़ी हवा है, लेकिन मैं अपने सामने के इस काले पहाड़ को क्या करूँ ! मैं एक बार भी इसे पकड़ पाता तो इसे पार करके अपनी अंजो को···!

नीरा : (**घबड़ा कर**) बस राजी बाबू ! बस···अब मैं खिड़की बंद कर दे रही हूँ··· नहीं तो···!

राजीव : नहीं तो क्या···मैं पागल हो जाऊँगा ?

[सहसा बाहर ढलान पर किसी की दर्दभरी आह उठती है।]

राजीव : (**आश्चर्य से एकाएक**) सुनो···नीरा, सुनो···बाहर ढलान पर कोई कराह रहा है जैसे किसी के पेट में बंदूक की गोली लग गई हो !

[कराह और नज़दीक आने लगती है।]

नीरा : (भयभीत स्वर में) जी हाँ, सच कोई कराह रहा है !

राजीव : (**तेज़ी से सामू को पुकारता हुआ**) सामू ! सामू ! !

सामू : (**भीतर से दौड़ कर आता हुआ**) जी, बाबू जी !

राजीव : दौड़ के जल्दी देख···बाहर ढलान पर कोई बुरी तरह कराह रहा है !

[सामू बाहर दौड़ता है, कराह बहुत नज़दीक आ जाती है, राजीव पागलों की तरह चिल्ला उठता है—]

राजीव : यह मेरी अंजो है !···नीरा तू भी दौड़···यह मेरी अंजो है ! संभाल ले उसे (**नीरा बाहर दौड़ती है**) यह कोई स्वप्न नहीं हो सकता !···यह सच है !··· सच···! !

[क्षणभर के बाद ही नीरा और सामू, ज़िन्दगी और विश्वासघात से बुरी तरह टूटी हुई अंजो को सँभाल कर लाते हैं। कमरे में आते-आते अतुल पीड़ा से उसकी आँखें बंद हो जाती हैं और केवल उसका कराहना शेष रह जाता है। उसे फ़र्श पर लिटाते-लिटाते राजीव 'अंजो', 'अंजो' चीखता हुआ उससे लिपट जाता है।

खिड़की से बर्फ़ीली हवा का झोंका कमरे में ट
खिड़की बंद करने का ध्यान नहीं है।]

राजीव : (**दर्द से चीख़ता हुआ**) लोगो !···लोगो !
है ?···बोलो, उसे किसने गोली मारी है ?

नीरा : (**दुख से देखती हुई**) आह !···यह तो प्र
सामू !···जल्दी जाओ···दौड़ते हुए···डाक्टर

[बीच ही में राजीव नीरा का नाम लेकर चीख़
रोकने लगता है, लेकिन सामू पहले ही डाक्टर क

राजीव : नहीं सामू···ख़बरदार यह किसी ने जान
सोचता हुआ) प्रसव पीड़ा···और यह (**क्रोध से**)
नहीं हो सकती।···यह कोई वहम है···यह कोई
मुझे पापा कहकर ज़रूर पुकारती···यह कोई औ

नीरा : (**रोकती हुई**) यह आप क्या कह रहे हैं ?···
देखिए···।

राजीव : (**गम्भीरता से**) चुप रहो जी !···मुझे बहला
हूँ; लेकिन मुझे अपनी अंजो के प्रति कोई धोख
देख रहा हूँ (**टटोलता हुआ**) मेरी मासूम अंजो
यह कराहती हुई मेरी अंजो नहीं है···वह होती
कहती···मैं उसकी आवाज़ पहचानता हूँ।

अंजो : (**कराहती हुई क्षीण स्वर में**) पा···पा···

राजीव : (**करुणा से लिपट कर**) आह ! तो अंजो तू
हुआ) बेटी !···बोल···फिर मुझे पुकार, मुझे रो
मेरी बेटी,···तुझे क्या तकलीफ़ है···मत कराह बे

[अंजो कराहती रहती है।]

राजीव : नीरा !···बचा मेरी बेटी को···जल्दी डाक्टर

नीरा : (**अंजो को सम्हालती हुई**) घबड़ाइए नहीं···डा

राजीव : तब तक तू ही सँभाल नीरा !···और देख मे
नहीं लगी है···बहुत कराह रही है मेरी बेटी !··
कराह···नहीं तो मेरी साँसें टूट जाएँगी···।

नीरा : (**सम्हालती हुई**) आप शान्त रहिए राजी बाबू

राजीव : कैसे शान्त रहूँ !···आह (**उठता हुआ**) यह काल
के सामने है, नीरा···आह···मैं अब क्या करूँ ?

[सहसा सामू के साथ डाक्टर का प्रवेश]

हुआ) शान्त हो जा नीरा···साधारण जीवन से ऊपर उठ कर
की यही सज़ा होती है···आँसू और तड़पन !···मैं तो तुमसे
तुम उसी साधारण जीवन में लौट जाओ···वहाँ तुम्हें संतोष
···!

!···कमज़ोर मत बन···नीरा !···एक बार उस खिड़की को
ोल दे—मैं हर रात इस बर्फ़ीली हवा में अंजो के आने की आहट
देर के लिए खोल दे···!

खोल देती है और हवा की आवाज़ कमरे में टकराने लगती है।]

ी ताज़ी हवा है, लेकिन मैं अपने सामने के इस काले पहाड़ को
क बार भी इसे पकड़ पाता तो इसे पार करके अपनी अंजो

) बस राजी बाबू ! बस···अब मैं खिड़की बंद कर दे रही हूँ···

···मैं पागल हो जाऊँगा ?

लान पर किसी की दर्दभरी आह उठती है।]

एकाएक) सुनो···नीरा, सुनो···बाहर ढलान पर कोई कराह
ो के पेट में बंदूक की गोली लग गई हो !

दोक आने लगती है।]

श में) जी हाँ, सच कोई कराह रहा है !
ामू को पुकारता हुआ) सामू ! सामू !!
ड़ कर आता हुआ) जी, बाबू जी !
दी देख···बाहर ढलान पर कोई बुरी तरह कराह रहा है !

ता है, कराह बहुत नज़दीक आ जाती है, राजीव पागलों की तरह
—]

ो है !···नीरा तू भी दौड़···यह मेरी अंजो है ! संभाल ले उसे
ौड़ती है) यह कोई स्वप्न नहीं हो सकता !···यह सच है !···

द ही नीरा और सामू, ज़िन्दगी और विश्वासघात से बुरी तरह
को संभाल कर लाते हैं। कमरे में आते-आते अतुल पीड़ा से उसकी
ती हैं और केवल उसका कराहना शेष रह जाता है। उसे फ़र्श पर
राजीव 'अंजो', 'अंजो' चीख़ता हुआ उससे लिपट जाता है।

खिड़की से बर्फ़ीली हवा का झोंका कमरे में टकरा रहा है लेकिन किसी को भी खिड़की बंद करने का ध्यान नहीं है।]

राजीव : (दर्द से चीख़ता हुआ) लोगो !···लोगो ! बताओ मेरी अंजो कराह क्यों रही है ?···बोलो, उसे किसने गोली मारी है ?

नीरा : (दुख से देखती हुई) आह !···यह तो प्रसव की पीड़ा है !···(डर से) सामू !···जल्दी जाओ···दौड़ते हुए···डाक्टर को बुला लाओ।

[बीच ही में राजीव नीरा का नाम लेकर चीख़ पड़ता है और उठकर सामू को रोकने लगता है, लेकिन सामू पहले ही डाक्टर को बुलाने भाग जाता है।]

राजीव : नहीं सामू···ख़बरदार यह किसी ने जाल बिछाया है···होशियार (रुककर सोचता हुआ) प्रसव पीड़ा···और यह (क्रोध से) नहीं, सब झूठ है, यह मेरी अंजो नहीं हो सकती।···यह कोई वहम है···यह कोई जाल है।···मेरी अंजो होती तो मुझे पापा कहकर ज़रूर पुकारती···यह कोई और है !

नीरा : (रोकती हुई) यह आप क्या कह रहे हैं ?···यह आपकी अंजो ही तो है ! देखिए···।

राजीव : (गम्भीरता से) चुप रहो जी !···मुझे बहलाओ नहीं···मैं अंधा ज़रूर हो गया हूँ; लेकिन मुझे अपनी अंजो के प्रति कोई धोखा नहीं दे सकता। नीरा !···मैं देख रहा हूँ (टटोलता हुआ) मेरी मासूम अंजो इस काले पर्वत के पीछे बैठी है। यह कराहती हुई मेरी अंजो नहीं है···वह होती तो मुझे ज़रूर एक बार पापा कहती···मैं उसकी आवाज़ पहचानता हूँ।

अंजो : (कराहती हुई क्षीण स्वर में) पा···पा···

राजीव : (करुणा से लिपटकर) आह ! तो अंजो तू ही है···मेरी अंजो (पुकारता हुआ) बेटी !···बोल···फिर मुझे पुकार, मुझे रोशनी दे···मैं भी तुझे देखूँ···बता मेरी बेटी,···तुझे क्या तकलीफ़ है···मत कराह बेटी !

[अंजो कराहती रहती है।]

राजीव : नीरा !···बचा मेरी बेटी को···जल्दी डाक्टर को बुला···बुला डाक्टर को···।

नीरा : (अंजो को सम्हालती हुई) घबड़ाइए नहीं···डाक्टर आ ही रहे होंगे।

राजीव : तब तक तू ही सँभाल नीरा !···और देख मेरी अंजो को कहीं और तो चोट नहीं लगी है···बहुत कराह रही है मेरी बेटी !···मत इतना कराह बेटी···मत कराह···नहीं तो मेरी साँसें टूट जाएँगी···।

नीरा : (सम्हालती हुई) आप शान्त रहिए राजी बाबू !

राजीव : कैसे शान्त रहूँ !···आह (उठता हुआ) यह काला पहाड़ तो अब भी मेरी आँखों के सामने है, नीरा···आह···मैं अब क्या करूँ ?

[सहसा सामू के साथ डाक्टर का प्रवेश]

राजीव : (चौंककर) कौन !···यह कौन आया !

डाक्टर : जी, मैं हूँ डाक्टर !

राजीव : डाक्टर !

डाक्टर : (अंजो के पास आता हुआ) जी हाँ, आप शान्त रहिए (आज्ञा से) लड़की को इधर पर्दे में लिटाओ···और यह खिड़की क्यों खुली है ?···इसे बंद करो ।

[सामू शीघ्रता से खिड़की बंद करता है । स्टेज पर वैसे देखने की दृष्टि से केवल राजीव शेष है; लेकिन पर्दे के पीछे से अंजो की कराह तथा नीरा डाक्टर की आवाज़ पूर्णतः स्पष्ट है ।]

राजीव : (पागलों की भांति टटोलता हुआ) डाक्टर ! डाक्टर !···डाक्टर, तू बोलता क्यों नहीं !

डाक्टर : (पर्दे के पीछे से) जी, फ़र्माइए···क्या बात है ?

राजीव : इधर मेरे पास आ जाओ···पास आ जाओ !

डाक्टर : (आता हुआ) जी, कहिए···!

राजीव : और पास आ जाओ···मेरे नज़दीक आ जाओ, नहीं तो···मेरी आँखों के सामने यह काला पहाड़ है और तुम मेरी बात नहीं सुन सकोगे···आ जाओ···पास आ जाओ···!

डाक्टर : (पास आकर) जी, कहिए !

राजीव : (मज़बूती से डाक्टर के कंधों को पकड़कर) डाक्टर ! मैं तेरे पाँव पड़ता हूँ··· मेरी बेटी को बचा ले···और उसकी गोद में एक नया इंसान आने वाला है···उस पर भी आँच न आने पाए, उसे भी बचा ले···दोनों मेरी अमानतें हैं, दोनों को बचा ले···। बेटी की ज़िन्दगी में मेरा प्राण बँधा है और उसकी गोद में आने वाले नए इंसान से मेरा विश्वास बँधा है, कहीं खोने न पाए···(पैर पर गिरने लगता है) दोनों को बचा ले डाक्टर ।···दोनों को···कहीं एक भी न खोने पाए··· ।

डाक्टर (सँभालता हुआ) आप शान्त रहिए, मैं कोशिश कर रहा हूँ !

[पर्दे में चला जाता है ।]

राजीव : (आकर टटोलता हुआ) यह काला पहाड़ तो मेरी ओर बढ़ता आ रहा है !··· (पुकारता हुआ) डाक्टर ! (हाथ पसार कर) मेरी बेटी को मेरे हाथों में दे दे !···मेरी बेटी का नया इंसान रोशनी लेकर आगे चलेगा और मैं, मेरी बेटी— इस नए इंसान की माँ, हम दोनों इस काले पहाड़ पर चढ़ जाएँगे···(चीखकर) जल्दी दे मेरी बेटी दे, डाक्टर !···नहीं तो यह मेरे सामने का काला पहाड़ मेरी ओर बढ़ता आ रहा है !

[सहसा अंजो का कराहना बन्द हो जाता है । नीरा और डाक्टर की फुसफुसाहट पर्दे के पीछे से आ रही है । राजीव टटोलता हुआ दायीं खिड़की के पास जाता है और बन्द खिड़की को खोल देता है । बर्फ़ीली हव कमरे का वातावरण तूफ़ानी हो जाता है ।]

राजीव : (पुकारता हुआ) डाक्टर !···जल्दी से मेरी मेरे इस फैले हुए हाथ में उसके नये इंसान को दे मेरी बेटी को राहत देगा और हम दोनों उसके सहा जाएँगे ।

[एकाएक नीरा के रोने की आवाज़ आने लगती है

राजीव : (चौंककर) नीरा ! अरे !···तू रोने क्यों लगी

[नीरा रोती हुई बाहर आती है···लेकिन राजीव को जाती है । डाक्टर बाहर आकर मौन खड़ा हो जाता है

राजीव : (टटोलता हुआ) डाक्टर !···ओ डाक्टर ! तू तो खैरियत से है न !···

[डाक्टर चुप है ।]

राजीव : और वह नया इंसान···!

डाक्टर : वह जीवित है, राजीव बाबू ! सिर्फ़ बच्चा ही बच

राजीव : डाक्टर !

डाक्टर : मुझे अफ़सोस है कि आपकी बेटी न बच सकी···।

राजीव : (लड़खड़ाता हुआ) मेरी बेटी !···मेरी बेटी नन्हा-सा ज़िन्दा इंसान मुझे रोशनी दे देगा और आवाज़ इन पहाड़ियों में गूँजती रहेगी···और हम दो ढूँढ़ लेंगे !

[एकाएक लड़खड़ाता हुआ गिर पड़ता है और खिड़की की आवाज़ में रोते हुए नवजात शिशु की आवाज़ धीरे-ध भूमि में कोई 'या कुन्देन्दु तुषार हार धवला···' इन प ऊँची चोटी से नीचे वादी में उतर रहा हो ।]

[पर्दा गिरता है ।]

, कौन !···यह कौन आया !
डाक्टर !

पास आता हुआ) जी हाँ, आप शान्त रहिए (**आज्ञा से**) लड़की को
नटाओ···और यह खिड़की क्यों खुली है ?···इसे बंद करो ।

से खिड़की बंद करता है । स्टेज पर वैसे देखने की दृष्टि से केवल
; लेकिन पर्दे के पीछे से अंजो की कराह तथा नीरा डाक्टर की
स्पष्ट है ।]

की भाँति टटोलता हुआ) डाक्टर ! डाक्टर !···डाक्टर, तू बोलता

पीछे से) जी, फ़र्माइए···क्या बात है ?
पास आ जाओ···पास आ जाओ !
हुआ) जी, कहिए···!
आ जाओ···मेरे नज़दीक आ जाओ, नहीं तो···मेरी आँखों के सामने
ाड़ है और तुम मेरी बात नहीं सुन सकोगे···आ जाओ···पास आ

ाकर) जी, कहिए !
से डाक्टर के कंधों को पकड़कर) डाक्टर ! मैं तेरे पाँव पड़ता हूँ···
बचा ले···और उसकी गोद में एक नया इंसान आने वाला है···उस
न आने पाए, उसे भी बचा ले···दोनों मेरी अमानतें हैं, दोनों को बचा
की ज़िन्दगी में मेरा प्राण बँधा है और उसकी गोद में आने वाले नए
ा विश्वास बँधा है, कहीं खोने न पाए···(**पैर पर गिरने लगता है**)
ा ले डाक्टर !···दोनों को···कहीं एक भी न खोने पाए··· ।
ा हुआ) आप शान्त रहिए, मैं कोशिश कर रहा हूँ !
ा जाता है ।]

टटोलता हुआ) यह काला पहाड़ तो मेरी ओर बढ़ता आ रहा है !···
आ) डाक्टर ! (**हाथ पसार कर**) मेरी बेटी को मेरे हाथों में दे
बेटी का नया इंसान रोशनी लेकर आगे चलेगा और मैं, मेरी बेटी—
न की माँ, हम दोनों इस काले पहाड़ पर चढ़ जाएँगे···(**चीखकर**)
री बेटी दे, डाक्टर !···नहीं तो यह मेरे सामने का काला पहाड़ मेरी
आ रहा है !

ो का कराहना बन्द हो जाता है । नीरा और डाक्टर की फुसफुसाहट
से आ रही है । राजीव टटोलता हुआ दायीं खिड़की के पास जाता है

और बन्द खिड़की को खोल देता है । बर्फ़ीली हवा की चीख़ती हुई आवाज़ से पूरे कमरे का वातावरण तूफ़ानी हो जाता है ।]

राजीव : (**पुकारता हुआ**) डाक्टर !···जल्दी से मेरी बेटी को मेरे पास कर दे और मेरे इस फैले हुए हाथ में उसके नये इंसान को दे दे···। वह मुझे रोशनी देगा··· मेरी बेटी को राहत देगा और हम दोनों उसके सहारे इस ख़ौफ़नाक पहाड़ पर चढ़ जाएँगे ।

[एकाएक नीरा के रोने की आवाज़ आने लगती है ।]

राजीव : (**चौंककर**) नीरा ! अरे !···तू रोने क्यों लगी !

[नीरा रोती हुई बाहर आती है···लेकिन राजीव को देखकर डर से भीतर चली जाती है । डाक्टर बाहर आकर मौन खड़ा हो जाता है ।]

राजीव : (**टटोलता हुआ**) डाक्टर !···ओ डाक्टर ! तू बोलता क्यों नहीं···मेरी बेटी तो ख़ैरियत से है न !···

[डाक्टर चुप है ।]

राजीव : और वह नया इंसान···।

डाक्टर : वह जीवित है, राजीव बाबू ! सिर्फ़ बच्चा ही बच सका···।

राजीव : डाक्टर !

डाक्टर : मुझे अफ़सोस है कि आपकी बेटी न बच सकी···।

राजीव : (**लड़खड़ाता हुआ**) मेरी बेटी !···मेरी बेटी भी ज़िन्दा है डाक्टर ! यह नन्हा-सा ज़िन्दा इंसान मुझे रोशनी दे देगा और उसकी माँ—मेरी बेटी की आवाज़ इन पहाड़ियों में गूँजती रहेगी···और हम दोनों उसे ढूँढ़ते रहेंगे ! और ढूँढ़ लेंगे !

[एकाएक लड़खड़ाता हुआ गिर पड़ता है और खिड़की से आती हुई बर्फ़ीली हवा की आवाज़ में रोते हुए नवजात शिशु की आवाज़ धीरे-धीरे खो जाती है और पृष्ठ-भूमि में कोई 'या कुन्देन्दु तुषार हार धवला···' इन पंक्तियों को गाता हुआ जैसे ऊँची चोटी से नीचे वादी में उतर रहा हो ।]

[पर्दा गिरता है ।]

सुबह होगी

पात्र

आनन्द	:	युवक उम्र 25 वर्ष
औरत	:	उम्र 40 वर्ष
गोपी	:	चरवाहा, उम्र 30 वर्ष
चेतन	:	आनन्द का मित्र, उम्र 24 वर्ष
लड़की	:	उम्र 20 वर्ष
समय	:	13 एप्रिल, 1949 की एक शाम

[शहर के किनारे की तितर-बितर बस्ती और उस
दोनों ओर झाड़ियाँ हैं। इधर-उधर झाड़ियों में,
मकान बने हैं। दायीं ओर झाड़ी के आगे रेवती नदी

पर्दा उठते ही स्टेज पर सुनसान अँधेरा रहता
बीच से एक रास्ता स्पष्ट है। इसके पीछे ही रेवती
दृश्य दूर से दिखाई दे रहा है।

थोड़ी देर स्टेज सूना पड़ा रहता है और क्षण
सिमटी हुई किसी रहस्य की छाया-सी उसी रास्ते प
की भाँति कातर दृष्टि से इधर-उधर देखती है, फि
अपने आँचल से निकालकर झाड़ी में छिपा देती है
रास्ते पर आकर अजीब डरावनी दृष्टि से इधर-उधर
जाती है। थोड़ी देर के लिए स्टेज फिर सूना रहत
हँसते हुए युवक बायीं ओर से प्रवेश करते हैं, एक
चेतन। दोनों बहुत अच्छे व्यक्तित्व के हैं। आनन्द अ
जीवनपूर्ण तथा ढीला पैजामा, कुर्ता और जवाहर
एक समेटा हुआ दैनिक पत्र लिए है। चेतन पेंट और
कैमरा लटक रहा है।

दोनों हँसते हुए रास्ते पर आते हैं। सहसा झा
है।]

आनन्द : (रुककर झाड़ी की ओर देखकर) चेतन !

चेतन : (आश्चर्य से) क्या है भाई, झाड़ी में क्या देख रहे

आनन्द : (संकेत कर) वहाँ से कुछ अजीब-सी आवाज़ आ

चेतन : (आगे बढ़ता हुआ) अमें चलो यार, (अपनी पिछल
मैं कह रहा था कि अभी घर पहुँचते ही फ़ादर को स्ट

आनन्द : (बीच ही में उसे रोककर पीछे मुड़ जाता है) रुको
लेने दो, झाड़ी से फिर कुछ आवाज़ आई है।

[चेतन देखता ही रह जाता है।]

आनन्द : (आगे बढ़ता हुआ) मैं देखता हूँ, झाड़ी से फिर कु

[आनन्द बढ़कर झाड़ी में झुक जाता है। सहसा आश्च